श्री भागवत-दर्शन

भागवती कथा

(द्वितीय ख

व्यासशास्त्रोपवनतः सुमनांसि विचिन्वता ।
कृता वै प्रभुदत्तेन माला 'भागवती कथा' ॥

लेखक—
श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारी

प्रकाशक—
सङ्कीर्तन-भवन, प्रतिष्ठानपुर झूसी (प्रयाग)

संशोधित मूल्य २-० रुपए
पञ्चम संस्करण १०००] कार्तिक,सम्वत् २०२३ वि० [मूल्य १।)

मुद्रक—सङ्कीर्तन प्रेस, वंशीवट वृन्दावन (मथुरा)

भागवती कथा

पर

हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक, सम्पादक, समालोचक

ज्योतिषी, कवि

श्री पं० गिरिजादत्तजी शुक्ल बी० ए० "गिरीश"

की

शुभ-सम्मति

(१)

परम भागवत रसिक व्रजेश्वर रूप उपासक।
श्री प्रभुदत्त उदार समल कलिमानस त्रासक॥
बारम्बार प्रणाम चरण में मम स्वीकारें।
सन्त-हृदय सुकुमार कीर्ति जग मे विस्तारें॥

(२)

हे प्रभु लीलाधाम ! आप की कृति जो आई।
भागवती अति रुचिर कथा हरि-जन मन भाई॥
मैंने भी माना मञ्जु नाव प्रभु ने भिजवाई।
मैं भी हो लूँ पार दया उर में लहराई॥

(३)

काँटो में यह फूल खिला है मैंने देखा।
सौरभ इसको दिव्य मिला है मैंने देखा॥
पायेंगे आमोद प्रेम-रत अगणित भौंरे।
गायेंगे रसगान मधुव्रत गुञ्जित भौंरें॥

(४)

और कहूँ कुछ बात अन्यथा आप न मानें।
यह प्रयास तो धर्म आपका यह ध्रुव जानें॥
तरणि ताप की मूर्ति बने अविराम तपस्वी।
उनके तप से लोक बना अभिराम मनस्वी॥

(५)

नहीं कहीं भी पतन, प्रखर उत्थान निराला।
कहाँ हलाहल बूँद ? वहाँ पावन रस-प्याला॥
काँटों को भी फूल बनाना जिनको आया।
जाकर उनकी शरण कहाँ किसने श्रम पाया॥

(६)

यह भागवती कथा निरन्तर ही विकसित हो।
बालचन्द्र की भाँति पूत दृग कारिणि नित हो॥
हृदय-तिमिर के हेतु तरणि किरणावलि सी हो।
गङ्गा ही की भाँति तारिणी जगती की हो॥

—'गिरीश'

विषय-सूची

श्री मुरली मनोहर

सन्त-वियोग

(२१)

ज्ञानं गुह्यतमं यत् तत् साक्षाद् भगवतादितम् ।
अन्वोचन् गमिष्यन्तः कृपया दीनवत्सलाः ॥१

(श्री भा० १ स्क० ५ अ० ३० श्लोक)

छप्पय

चातुर्मास्य समाप्त भयो, मुनि चालन लागे ।
रोयो, ह्वै अति दीन, दयालु मुनिन के आगे ॥
करुणा कीन्ह कृपालु, प्रेम तें पास बुलायो ।
प्रेम प्रकाशक मधुर, कृष्ण कीर्तन करवायो ॥
कृष्ण कीर्तन करत ई, भव को भय जागन लग्यो ।
प्रेम हृदय जागन लग्यो, गृह-बन्धन भागन लग्यो ॥

दैव की कैसी कुत्सित क्रीड़ा है, प्रारब्ध की कैसी विचित्र विडम्बना है ! जिनसे हम एक क्षण भी पृथक होना नहीं चाहते, वे हमें हठात् छोड़कर सदा के लिए चले जाते हैं।

---

१ उन दीन वत्सल मुनियों ने जाते समय मेरे ऊपर कृपा करके उस गुह्यतम ज्ञान का मुझे उपदेश दिया, जो साक्षात् श्रीभगवान का ही हुआ।

जिनके पास हम पल भर भी रहना नहीं चाहते, उनके साथ आयु भर रहना पड़ता है। जिनको समीप रखना चाहते हैं वे हजारो कोस दूर पर रहते हैं। जिनसे सदा दूर रहना चाहते हैं, वे हमारी छाती पर ही दाल दलते रहते हैं। प्रिय संयोग मे ही दुःखद वियोग छिपा हुआ रहता है। वह कही से आता नही। जैसे ज्वर शरीर मे ही रहता है, वह बाहर से नही आता। समय आने पर आहार-विहार में व्यतिक्रम होने से अवसर पाकर प्रकट हो जाता है। इसी प्रकार संयोग से सटा हुआ उसके साथ ही वियोग भी रहता है। पहिले तो वह भोला-भाला बना, कछुए की भाँति चुपचाप बैठा रहता है। जहाँ संयोग की अवधि समाप्त हुई संयोग सुख देकर निवृत्त हुआ, कि वियोग अपने पैर फैलाता है।

नारदजी के समाधिस्थ-से हो जाने पर व्यास जी समझ गये, कि अब वियोग की कथा आरम्भ होगी। अतः अपने को सम्भाल कर बड़ी सावधानी से, बड़ी उत्सुकता के साथ व्यास जी पूछने लगे—"हाँ, तो भगवन् फिर क्या हुआ ?"

निराशा के स्वर में नारद जी कहने लगे—"फिर क्या हुआ व्यास जी ! जो होना था वही हुआ। 'राजा किसके पाहुने, जोगी किसके मीत ?' ये वैरागी किन्ही के होते थोड़े ही है। जब ये अपने सगे सम्बन्धियो को छोड़ आये, तो अन्य लोगो की मोह ममता तो इन्हें होने ही क्यों लगी ? ऐसे लोगो से प्रीति करके पीछे मनुष्य के हाथो पश्चाताप ही लगता है। जैसे गेहूँ जौ के फूस मे आग जलाकर तापें, थोड़ी देर तो उसमे बड़ा ही सुख मिलता है, किन्तु क्षण भर मे ही वह अग्नि बुझ जाती है। उसके कोयले तो होते नही, जैसे नीम बबूल या लकड़ी के होते हैं। तनिक देर जला और समाप्त। इसी

तरह का प्रेम इन परदेशियों के साथ का है। सुख तो क्षण भर ही देते है, किन्तु दुःख में जीवन भर जलाते रहते हैं।

परदेशी की प्रीति फूँस को तापनो।
दियो कलेजो काढ़ हुयो नहिं आपनो॥

चार मास समाप्त हो गये। शरद की पूर्णिमा का निर्मल प्रकाश फैला गया। क्वार बीतने पर कार्तिक लगा। अब महात्माओं के डेरे उठने का समय आ गया। साधु-मण्डली में चलने की चर्चा आरम्भ हुई। सभी का चित्त चञ्चल हो उठा आनन्द के सागर में एक वियोग की हिलोर ही आ गई। उसने समस्त आश्रम मे एक निराशा की सी घटा घेर दी। अब कथा कीर्तन में पहले जैसा आनन्द न आता। जब मैंने सुना कि ये महात्मा तो अब जाने वाले है, तब तो मेरे दुःख का ठिकाना न रहा। मैं किंकर्तव्य विमूढ़ हो गया। मैं समझे बैठा था अब ये सब महात्मा यहीं रहेंगे। अब क्या करूँ ? हाय! मेरे भाग्य फूट गये। मेरे ही दुर्भाग्य के कारण ये महात्मा यहां से जा रहे है। अब जब भी उन महात्माओ को देखता, मेरा हृदय भर आता। आँखों मे अपने आप ही आँसू आने लगते। हृदय की विचित्र दशा थी, जैसे कोई गीले कपड़े को निचोड़ता है, वैसे ही भीतर ही भीतर मेरा मन ऐंठने लगा। हृदय में धड़कन सी होती, सम्पूर्ण संसार सूना-सूना सा प्रतीत होने लगा। अब भगवान् की चिन्ता तो मैं भूल गया। रात्रि दिन मुझे यही चिन्ता रहती, कि अब मेरा क्या होगा ? मेरी बिना मल्लाह की नाव अब बीच मझधार मे डगमगा कर डूब ही जायगी क्या ? अब मैं उन महात्माओ से दृष्टि बचाने लगा, क्योंकि उन्हें देखते ही हृदय पिघलने लगता। बहुत रोकने पर भी आँसू नहीं रुकते। मेरी

आँख बचाकर वे महात्मा भी मेरी ऐसी दशा देखते, किन्तु वे भी कुछ कहते नहीं थे। अब निश्चय हो गया कि कल यहाँ से डेरा उठ जायगा।

आज मेरी व्याकुलता पराकाष्ठा पर पहुंच गई थी। मैं एकान्त मे जाकर खूब रोया, रोता ही रहा। रोते-रोते जब कुछ हृदय हलका हुआ तो आश्रम मे आया। आज मेरा वहाँ मन ही नहीं लगता था। प्रत्येक वस्तु जो मुझे पहिले सुख देती थी अब काटने को दौड़ने लगी। मैंने निश्चय कर लिया—चाहे जो हो, मैं इन महात्माओं के साथ-साथ जाऊँगा। यहाँ मेरा है ही कौन ? माँ है, सो किसी तरह अपने दिन बिता ही लेगी। ऐसा निश्चय करने पर मुझे कुछ शांति मिली। चित्त में कुछ स्वस्थता प्राप्त हुई। किन्तु फिर एक चिन्ता ने आकर धर दबाया। यदि आचार्य महाराज ने साथ चलने की आज्ञा न दी, तब क्या होगा ? इस विचार के आते ही हृदय फिर धड़कने लगा। इतने में ही आशा ने आकर ढाँढ़स बँधाया। अरे, वे महात्मा बड़े दयालु है। जब मैं रोकर उनके चरणों मे लिपट जाऊँगा, तो मुझे दीन-हीन बालक समझ कर अवश्य ही वे अपने चरणों की शरण प्रदान करेगे। इसी घुना बुनी में सायंकाल हो गया। सायं आरती के घन्टे बजने लगे। चारो ओर से अपनी-अपनी कुटियों में से महात्मा गण निकल-निकल कर पूजा स्थल पर जाने लगे। मैं भी सब की दृष्टि बचाकर एक ओर कोने मे खड़ा हो गया। उस दिन मुझे पता ही न चला कि कब आरती शुरू हुई, कब समाप्त हुई ? मुझे पता तब चला जब प्रसाद देने वाले महात्मा ने कहा—"अरे, हरिदास ! तू सो गया क्या रे ? ले चरणामृत प्रसाद ले।" तब मेरा ध्यान भङ्ग हुआ। चरणामृत प्रसाद लेकर

मैं बाहर चला गया। आज महात्माओं की चरण वन्दना भी न कर सका।

मेरे मन में द्वन्द युद्ध हो रहा था। इच्छा नहीं होती थी आज महात्माओं की चरण सेवा के लिये चलूँ, क्योंकि मैं अपना साहस खो चुका था। बच्चा ही ठहरा, मैं सोचने लगा महाराज जी के सामने मैं अपने को रोक न सकूँगा। फिर भी मन नहीं मानता था। आज ही तो अन्तिम दिन है, पता नहीं कल क्या हो, वे मुझे चरणों में रखें या पृथक् करदें। यही सोचता रहा। अन्त में मैंने महाराजजी के समीप जाना ही स्थिर किया।

आज कुछ अन्य दिनों की अपेक्षा विलम्ब हो गया था। मैं पैर दबाकर धीरे-धीरे महात्मा जी के आसन के समीप गया। वे कुछ झपकी सी ले रहे थे। धीरे से जाकर मैं तलुओं में घी मलने लगा। उन्होंने कुछ चौकते हुए कहा--"कौन है,हरिदास? अरे बेटा! तू अभी सोया नहीं?"

मैं कुछ भी न बोला और चरणों में घृत मलता ही रहा। चरणों के स्पर्श मात्र से मेरा हृदय भर आया और आँखों से अश्रु बहने लगे। जब गरम-गरम आँसुओं के विन्दु उनके चरणारविन्दों पर पड़े,तो वे फिर चौके और बोले--"हरिदास! तू रो रहा है क्या?"

बस, महाराज का इतना कहना था, कि मेरी हिचकियाँ बँध गईं। मैं उच्च स्वर में फूट-फूट कर रोने लगा। मुझे इस भाँति रोते देख कर वे दयालु मुनि उठ कर बैठ गये। मेरे सिर पर अपना सुखद शीतल कर कमल फेरते हुए बोले--'अरे,

हरिदास ! तू तो भैया, बड़ा पागल लड़का है। क्यों रोता है, बेटा (फिर चपकारी) बता क्या बात है ?"

मेरा तो गला भरा हुआ था, मुझसे कुछ बोला ही नहीं जाता था। रोने के सिवाय और कुछ कहने में मैं नितान्त असमर्थ था। मेरा रुदन सुनकर और भी १०।२० महात्मा आ गये। कोई कहने लगा—"महाराज जी, बड़ा सुशील लड़का है। इसे ले चलिये। कोई कहता, महाराजजी, यह आप से बड़ा स्नेह करता है, आप के बिना यह रह नहीं सकता।"

महाराज जी कुछ भी न बोले। वे बार-बार मेरे शरीर पर हाथ फेर रहे थे और पूछ रहे थे—"तू बता मुझे, तुझे क्या कष्ट है ? तू रोता क्यों है। अरे, भाई ! हम तो तुझे बडा अच्छा लड़का समझते थे, तू तो ऐसा रोता है जैसे कोई लड़की हो।"

जब वे बार-बार यही प्रश्न करने लगे, तो मैंने अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा कर इतना ही कहा—"महाराज जी कल आप चले जायेंगे। फिर मैं.........।' बस इसके आगे कुछ भी न कह सका। फिर रो पड़ा।

उनका भी हृदय भरा हुआ था। अन्तर इतना ही था कि वे वृद्ध थे, अपने वेग को रोकने में समर्थ थे। मैं बच्चा था मेरा हृदय फूट पड़ता, उसे रोकने में मैं असमर्थ हो जाता।

उन्होंने बनावटी हँसी हँसते हुए कहा—"अरे भैया ! हम तो साधु है, एक स्थान पर थोड़े ही रहते है। एक दिन तो जाना ही है।"

मैंने तो रोते-रोते कहा—"तो, महाराज जी ! मुझे साथ ले चलें।"

महात्मा बड़े जोर से हँसे और बोले—"अब जो भिक्षा मिलती है तू उसे भी बन्द करावेगा। लोग कहेंगे—ये साधु गृहस्थियों के बच्चों को बहका ले जाते है। इससे साधु मात्र के प्रति लोगों के बुरे भाव हो जायँगे।"

मैंने मचल कर कहा—"नहीं महाराज जी' मैं तो आपके बिना यहाँ रह नहीं सकता। आप न ले जायँगे तो मैं गङ्गाजी में कूद पड़ूँगा।"

समस्त ममता बटोर कर वे मेरे सिर पर हाथ फेरते हुए बोले—"अरे तू बड़ा पागल लड़का है रे! देखो भैया! हठ नहीं किया करते है। तू अभी बच्चा है, अभी समझता नहीं। तेरी माँ बूढ़ी हो चली,तू ही उसका एक मात्र लड़का है। उसकी सेवा करनी चाहिये। माता पिता सबसे श्रेष्ठ तीर्थ है। तू यहीं रह, फिर हम आते ही रहेंगे। जब तू बड़ा हो जाय, तब चलना हमारे साथ।"

यद्यपि मैं बच्चा था,किन्तु सब समझता था कि ये महात्मा मुझे वैसे ही बहलाने को कह रहे हैं। अब इनका आना कहाँ होता है। रमते राम का क्या पता, गये सो गये। महात्माजी की बात का मैंने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। मैंने निश्चय कर लिया कि मैं अवश्य ही कल इनके साथ लग लूँगा, चाहे ये मारें चाहे पीटें।

मुझे नीचा सिर किये चुपचाप आँसू बहाते हुए देखकर महाराज ने फिर कहना आरम्भ किया—"बेटा देखो, मन को छोटा नहीं बनाना चाहिये। भगवान सर्वत्र हैं। यहीं रहकर भगवान् का भजन करो। वे बड़े कृपालु हैं, तुम्हारी सभी मनोकामनायें पूर्ण करेंगे। इस तरह नहीं रोते हैं। अरे भैया,

तेरी यह बात तो हमारी कुछ समझ में आई नहीं।" फिर प्रेम से पुचकारा, शरीर पर हाथ फेरा और प्यार के साथ कहा—"जा सोजा, बेटा !"

मैं चरणों में प्रणाम करके पास ही की कुटी मे चला गया। मैंने सुना, पीछे महात्मा जी सबसे कह रहे थे—"बच्चों का अन्तःकरण बड़ा ही निर्मल होता है। उसमें छल कपट नहीं रहता। साधुता और सरलता रहती है, प्रेम पाते हो अत्याधिक आकृष्ट हो जाता है। बडे होने पर पूर्व जन्मों के संस्कार हृदय पर प्रभाव जमा लेते है। मनुष्य सब स्नेह प्रेम छोड़कर उन्ही के अनुसार काम करने लगता है। यह लड़का कोई संस्कारी मालूम पड़ता है। इतने दिन साथ रहा,इसने कभी काम में प्रमाद नही किया। कभी किसी का कोई अपराध नही किया। सभी का प्रिय बना रहा। ऐसा स्वभाव पूर्व जन्म के अनेक शुभ कर्मों से मिलता है।"

सब महात्मा अपने-अपने आसनों पर चले गये। मैं भी अपनी चटाई पर लेट गया। किन्तु मेरी आँखों में नीद कहाँ? मुझे तो एक ही चिन्ता सता रही थी। कल के वियोग का दृश्य प्रत्यक्ष मेरी आँखों के सामने नाच रहा था। रोते-रोते ही सम्पूर्ण रात्रि बिताई।

प्रातःकाल सबसे पहिले उठकर मैं नित्य कर्म में निवृत्त हुआ। आज आश्रम में सर्वत्र हलचल थी, कोई चिल्ला रहा था, कोई गठरी बाँध रहा था, कोई पूछता था अमुक वस्तु कहाँ है ? दूसरा रूखा उत्तर देता—मुझे क्या पता। सब बात मुझसे ही पूछते हैं। मैं कुछ गाँठ में थोड़े ही बाँधे फिरता हूँ। वही देख लो। कोई कहता—महाराज अमुक वस्तु नही मिल

रही है। आचार्य महाराज सरलता के साथ कहते—"नहीं मिल रही है, तो जाने दो भैया, जो मिल रही है उसे ही गाड़ी में लादो।"

गौओ पर झूलें पड़ने लगी। जल्दी-जल्दी पूजा करके बालभोग बँटने लगा। रसोई और पूजा के बर्तन बांध-बांध कर गाड़ियों पर लदने लगे। आश्रम में बड़ी खटर-पटर मच गई। कोई इधर से उधर दौड़ता, कोई बैलों को लाता। सर्वत्र शीघ्रता हो रही थी। सभी साधुओ के बिस्तर बँधने लगे। कोई कहता—गौओं को और गाड़ियों को हाँक दी, जिससे धीरे-धीरे आगे चलें।" दूसरा जोर देकर कहता—"हांक दो हाँक दो, तो कह रहे हो, अभी महाराज के आसन का सब सामान तो वहीं पड़ा है।"

इस पर वह दूसरे से कहता—"अजी, तुम बातें पीछे कर लेना, पहिले महाराज जी का सामान तो गाड़ी में लादो। इस पर कई साधु दौड़ जाते। इधर-उधर के सामान को जाकर रख देते। गाँव के बाल बच्चे, स्त्री, पुरुष सब एकत्रित हो गये थे। बच्चो को साधुओं के जाने का तो कोई दुःख नहीं था, उन्हे सबसे बड़ा दुख यही था, कि अब कल से दोनों समय प्रसाद न मिला करेगा। स्त्री, पुरुष खड़े-खड़े आँसू बहा रहे थे। महाराज उन्हें कुछ ऐसे ही समझा रहे थे। मुझसे यह दृश्य नहीं देखा गया, मैं भागकर अपनी माँ के पास चला गया।

जब से महात्मा आये थे, आज ही मैं अपने झोंपड़े में गया। उन ब्राह्मण देवता के घर से थोड़ी दूर एकान्त में ही हमारा घर था। घर क्या, मिट्टी की कच्ची दिवाल पर फूँस का एक छप्पर था। उसी में माँ बेटे दोनों रहते थे। मेरा

मुझे देखते ही पूछा—"महात्मा चले गये क्या, बेटा?" मैंने मुख से कुछ नहीं कहा, केवल सिर हिलाकर संकेत कर दिया कि अभी नहीं गये है। मेरी माँ को तो महात्माओं से अन्तिम आर्शीवाद लेना था। वह मेरा हाथ पकड़ कर फिर महात्माओं के पास ले गई। गौएँ और गाड़ियाँ चल रही थीं, सभी साधु विस्तर बाँधे चलने का उपक्रम कर रहे थे। आचार्य महाराज गाँव के स्त्री, पुरुषों से घिरे हुए खड़े थे। मैंने दूर से उन्हें देखा उनकी आँखें उस भीड़ मे किसी को खोज रही थीं। आज प्रातःकाल से ही मैं उनके सामने नहीं हुआ था। माँ के साथ मुझे आते देख कर उनका चेहरा खिल उठा। मेरी माँ ने महात्मा के चरण छुए। मैं माँ के पीछे उससे सटकर उसके अञ्चल से अपना मुँह ढककर खड़ा हो गया। मेरी माँ ने ममता के साथ कहा—"बेटा महात्मा जी को प्रणाम नहीं किया?" मैंने वहीं से खड़े-खड़े दोनों हाथ जोड़ दिये। फिर माँ ने कहा "ऐसे नहीं बेटा, महात्माओं के पैर छूआ करते है। अरे, तुझे अभी तक इतनी समझ भी नहीं।" महात्माजी ने बड़ी सरलता के साथ कहा—"नहीं सब ठीक है, हो गया। कोई बात नहीं। यह तो रोज ही पैर छूता है। तुम्हारा लड़का बडा सुशील है, बड़ा होनहार है। इसे बड़े प्रेम से रखना।"

माँ ने दीनता के स्वर में कहा—"मेरा क्या है,महाराज जी। आप सबका है। आपकी दया हो तो जी जाय। यही मेरी वृद्धावस्था की लकड़ी है। इसी का सहारा है। आप ऐसा आर्शीवाद दें, कि यह जल्दी बड़ा हो जाय, इसका विवाह हो जाय। यदि नाती का मुँह देखकर मैं मरूँ तो फिर मुझे कोई चिन्ता न रहेगी।"

वा रे, ममता ! ५ वर्ष का लड़का है। अभी अच्छी तरह वोलना भी नहीं जानता। माँ नाती के स्वप्न देखती है। व्यास जी ! इसी का नाम है माया। महाराजजी ने वहू, नाती का तो आर्शीवाद दिया नही, यही कहा—"भगवान् श्रीनारायण सब मङ्गल ही करेंगे। तुम भी थोड़ा भगवान् का भजन किया करो।" किन्तु मेरी माँ का तो भगवान् मैं ही था और रुन झुन करती हुई वटुआ सी बहू घर में आ जाय, यही उसकी लक्ष्मी थी। बस, इसके अतिरिक्त उसे और किसी भगवान् को न चिन्ता थी, न आवश्यकता।

महाराज ने मुझे बुलाया। एक वस्त्र और द्रव्य मुझे दिया। द्रव्य तो लेकर मैंने उनके चरणों पर चढा दिया। वस्त्र को श्रद्धा सहित सिर पर रख मैंने माँ से कहा—"माँ चल मुझे बड़ी भूख लगी है।" माँ भी महात्मा को प्रणाम करके मुझे लिये हुए चलती बनी। घर के समीप पहुँचने पर मैंने जोर से भगवान नाम की ध्वनि सुनी। माँ ने कहा—"मालूम होता है महात्मा चल दिये। बड़े अच्छे महात्मा थे। मुझे सदा कुछ न कुछ देते रहते थे।"

मेरे हृदय में तो दूसरी ही बात बैठी थी। मैंने माँ से कहा—"मुझे कुछ खाने को दे, बड़ी भूख लगी है।" माँ ने वासी रोटी मुझे दी। कुछ खाई कुछ रखी और मैंने कहा—"माँ मैं खेल आऊँ?" माँ को स्वामी का काम करना था। उसने कोई आपत्ति नही की। मैं अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर दौड़ा। बगीचा उजाड़ हो गया था, मानों वहाँ की सम्पूर्ण श्री नष्ट हो गई हो। मैं मुट्ठी बाँधकर दौड़ रहा था, दूर जाते हुए महात्मा दिखाई दिये। मैं वृक्षों की आड़ में अपने को

छिपाता हुआ उनके पीछे-पीछे दौड़ने लगा। आगे मैदान था कोई वृक्ष नहीं था। दूर से ही किसी महात्मा ने मुझे दौड़ते हुए देख लिया। वे महात्मा जी से बोले—"देखिये, महाराज जी! वह लड़का दौड़ा आ रहा है। महाराज जी ने मुड़ कर देखा और वे खड़े हो गये। सब महात्मा भी खड़े हो गये। मैं भी खड़ा हो गया। मैं हाँफ रहा था, भागते-भागते थक गया था। मैं निर्णय न कर सका कि पीछे भाग जाऊँ या आगे बढ़ूँ" इतने मे ही महाराज ने पुकारा—"हरिदास! यहाँ आ बेटा!" मुझे साहस हुआ, प्रसन्नता हुई, मैं चला गया। महाराजजी के समीप जाने का साहस नहीं हुआ दूर ही खड़ा रहा। मुझे दूर खड़ा देखकर स्वयं महाराज ही मेरे समीप आ गये। उन्होंने मुझे बड़े स्नेहपूर्वक आलिंगन किया और बोले—"तू बड़ा पागल है रे? हमने मना किया फिर भी तू! भाग आया।"

"बालानां रोदनं बलम्" बच्चों का बल रोना है। मैं बड़े जोरों से रो पड़ा। मेरे आँसू पोंछते हुए बोले—'बेटा, रोते नहीं हैं। मङ्गलमय भगवान् तेरा मङ्गल करेंगे।

मैंने रोते हुए कहा—"महाराज,मेरा कोई अधार नही है। मुझे संसार सूना-सूना दिखाई देता है। मुझे आप अपने चरणों मे रख लें, यही मेरी भीख है।"

सब सन्तों का हृदय भर आया। सभी ने कहा—"महाराज जी, हानि क्या है? गौओं की सेवा करेगा।" किन्तु उन बूढ़े महात्मा ने पता नहीं क्या निश्चय कर लिया था। ये महात्मा जितने ही सरल, स्नेही और प्रेम की मूर्ति होते है, उतने ही नियम के कठोर और दृढ़ भी होते हैं। उन्होंने मुझे साथ ले जाना स्वीकार नही किया। हाँ, मेरे ऊपर कृपा करके मुझे

भगवान के ध्यान का उपदेश प्रदान किया। बोले—"देख, हम तुझे आधार बताते है। बैठ जा!"

उनकी आज्ञा से मैं बैठ गया। वे स्वयं मेरे सामने आसन बिछा कर, पद्मासन मार कर बैठ गये और मुझसे भी इसी आसन में बैठने को कहा। मैं उनके आज्ञानुसार दृढ़ मुक्त पद्मासन मारकर बैठ गया। उसके लगाने में मुझे तनिक भी प्रयास न हुआ। तब वे बोले—"नित्य प्रति तू जो श्याम सुन्दर की सलौनी मूर्ति के दर्शन करता था, नेत्र बन्द करके उनका ध्यान कर।" मैंने नेत्र बन्द कर लिये। थोड़ी देर के पश्चात् वे बोले बेटा, बड़ी सावधानी से भगवान् की मनोहर मूर्ति का चिन्तन कर।" मे ध्यान करने लगा। भगवान की मानसिक मूर्ति मेरे सामने चित्रित हो गई।

महाराज जी कहते जाते थे—देख, भगवान के चरणों के तलुए कितने चिकने लाल-लाल कोमल है। उनके लाल-लाल नखों से चन्द्रमा की किरणों के समान कैसी ज्योति निकल रही है · उनके चरणों के ऊपर का भाग कैसा चढाव उतार का है। भगवान के टखने कितने भरे हुए मनोहर हैं। उनकी एड़ियाँ कितनी उठी हुई रक्त वर्ण की है। टखनों के ऊपर पिड़रियाँ कितनी गोल-गोल, भरी, द्युतिमान और छोटे-छोटे रोओं से सुशोभित हैं। उनके घुटने कितने भरे सुन्दर और दर्शनीय है। उनकी दोनों जाँघें मोटी मनोहर चिकनी और उतार चढ़ाव की है। उनके जघन कितने मांसल, कटि कितनी सूक्ष्म और कर्धनी से युक्त है। गङ्गाजी के आवर्त के समान गहरा गाल कितनी सुन्दर नाभि है। भगवान का उदर न बहुत बड़ा है, न बहुत दबा हुआ। सुन्दर मांसल और पीपल

के पत्ते के समान है। ऊपर देखो, कितना विशाल वक्षस्थल है जिसमें श्रीवत्स का चिन्ह विराजमान है। हार, वनमाला, तुलसी माला, कौस्तुभमणि से शोभायमान है। भगवान कैसी ललित त्रिभङ्गी गति से तीन स्थानों से टेढ़े होकर खड़े हैं। उनके दोनो कर कमलों में कैसी मधुर मुरली विराजमान है। वे टेढ़े होकर किसी प्रकार थोड़ा ओठों को संकुचित करके बजा रहे है। भगवान के श्रीहस्तों में बाजूबन्द कंकड कैसे शोभित हो रहे हैं। पीताम्बर की फहरान कैसी अद्भुत है। बाँये कन्धे से बांसुरी बजाने के कारण थोडा पीताम्बर खिसक गया है। बेटा, हरिदास! भगवान के श्रीकन्ठ का ध्यान करो, शङ्ख के समान कैसा मनोहर उतार चढ़ाव का है। अब चिबुक का ध्यान करके मधुर मुख पर दृष्टि जमाओ। यही भक्तों का सर्वस्व है। इसी के दर्शनों को असंख्यों जन्म, योग, जप, तप किये जाते हैं। देखो, कैसो मन्द-मन्द मुस्कान है। यह जादू भरी मुस्कान ही भक्तों के हृदयों में आनन्द का श्रोत बहाती है। जिसने एक बार इसे देख लिया, उसे जगत् फीका निस्सार दिखाई देता है। व्रज की व्रजाङ्गनाये इसी मुस्कान से मोहित होकर इस पर सदा के लिये निछावर हो गई थी। दोनों ओष्ठ कितने कोमल, पतले, रसभरे, गोल, सुडौल, रसीले अमृत-भरे है। अधरामृत के स्पर्श के लिये भक्तों की सदा लालसा रहती है। अब भगवान के कमनीय गोल कपोलों को देखो, जिनमे अरुण वर्ण की आभा सदा छिटकती रहती है, जो सुडौल और भरे हैं। दोनों कपोलों के बीच मे श्वास-प्रश्वास लेती हुई नासिका का ध्यान करो कितनी मनोहर है, नथुने कभी फूल जाते हैं, कभी सकुचित हो जाते हैं, ऊपर पतली और क्रम से नीचे की ओर मोटी और गोल होती आ रही है। बीच में शुक

की चोंच की तरह कैसी नुकीलो सी हो गई है। इसके ऊपर ही दो खिले हुए कमलो के समान नेत्रों के दर्शन करो। हरिदास, सावधान! ये ही भक्तों के सर्वस्व है। ये बाँके बिशाल, लाल-लाल डोरों वाले, काली काली गोल-गोल दो पावन पुतलियों के सदन हैं। जिनकी कोरें कटोली टेढ़ी और हृदय में घुसने वाली हैं। इन नेत्रों के कटाक्षों से घायल न हो जाना। बेटा! ये अमृत के कुण्ड है, आनन्द के स्रोत है, माधुरी के सागर है। ये अनियारे, प्यारे और सुख के सदन हैं कानों तक फैले हुए है। लाल-लाल गोल, गट्ठे वाले, उठे हुए पुष्प गुच्छों से सजे कान कितने कोमल और कमनीय हैं। कमान के समान टेढ़ी ये भौहें कारी-कारी कितनी कुटिल किन्तु प्यारी लगती है। नेत्रों के द्विभाषिये का काम ये ही करती है। नेत्रों के भाव को ये ही समझाती है। इनके ऊपर विशाल, केशर कस्तूरी के तिलक से सुशोभित मनोहर मस्तक है। चन्दन की खौरि कितनी अनुपम है! काली-काली घुँघराली लटें इमी पर से लटक कर कपोलों का स्पर्श कर रही है। सटकारी, प्यारी, स्निग्धता से भीगी, ये लटें काली नागिनियों के छोटे बच्चों के समान टेढ़ी मेढी होकर, विप के स्थान में अमृत का वमन कर रही है। मस्तक के ऊपर कुञ्चित कारे-कारे घुँघराले केश है जिस पर मनोहर मोर मुकुट टेढ़ेपन से विराजमान है। यहाँ की सभी वस्तुयें टेढी ही है। हरिदास! देख, इस तिरछी मुकुट की लटकन को ध्यान से देख। फिर एक बार सम्पूर्ण अङ्ग का ध्यान कर। इतना कह कर महाराज चुप हो गये। मुझमें इतनी बुद्धि कहाँ थी, जो अपने आप ऐसा ध्यान कर सकता। *उन्होंने ही अपनी शक्ति से मुझसे ध्यान करा दिया।* मैं उसी ध्यान में मग्न हो गया। मुझे पता ही नहीं रहा मैं कहाँ

हूँ। पता तो मुझे तब चला, जब महाराज जी ने झकझोर कर मुझे उठाया। सोते हुए आदमी की तरह निद्रा में उठ कर मैं इधर-उधर देखने लगा। महाराजजी ने दृढ़ता से कहा—देखा बेटा ? यही ध्यान है। इसी के करने से तुझे परम शान्ति मिलेगी। इसका अभ्यास करने से फिर तेरा सब शोक मोह दूर हो *जायगा।*

अब मैं तुझे एक सार से सार, गोपनीय से गोपनीय मन्त्र और बताता हूँ। और जितने मन्त्र हैं कोई मुक्ति देने वाले हैं कोई किसी कामना को देने वाले है, कोई भक्ति देने वाले हैं कोई मुक्ति देने वाले है, किन्तु मैं जो तुझे मन्त्र बताता हूँ वह शुद्ध प्रेम को देने वाला है। इसका कोई नियम नहीं कि यह जपो, एकान्त में जपो, बैठ कर जपो, शुचि होकर जपो अमुक समय में जपो, शनैः शनैः जपो, माला से ही जपो गिन कर ही जपो, अकेले ही जपो। इसे कैसे भी जपो, धीरे धीरे जपने की अपेक्षा जोर जोर से कीर्तन करने का इसका और भी अधिक फल है। अकेले की अपेक्षा सब मिल कर कीर्तन करें, तो और भी सुन्दर है। इसके लिये यह भी नियम नहीं कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या यज्ञोपवीतधारी ही इसे जपें या कीर्तन करे। शूद्र, अन्त्यज, म्लेच्छ, स्त्री पुरुष, बालक उपनीत, अनुपनीत सभी समान रूप से इसे जप कर, कीर्तन करके परम प्रेम के अधिकारी बन सकते हैं। तुम इसी का निरन्तर कीर्तन करते रहना और मैंने जो ध्यान बताया है, उसे भी अवसर मिलने पर किया करना। वह मन्त्र यह है—

श्री कृष्ण गोविन्द हरे मुरारे !
हे नाथ ! नारायण वासुदेव !

कैसे रही ? हम लोग तो इसी जन्म की बहुत सी बातों को भूल जाते है। इसी जन्म की क्या, कल रात्रि का देखा स्वप्न तक याद नही रहता।'

व्यासजी के प्रश्नों को सुनकर नारदजी हँसे और बोले—"व्यासजी ! भगवत् स्मृति के समाने कोई बात असम्भव नही रह जाती। भगवान् के भजन से सभी सम्भव हो सकता है। भक्त की कोई भी इच्छा ऐसी शेष नहीं रह जाती, जिसे भगवान् पूरी न कर दें। वे चाहें इस लोक के भोग, चाहे स्वर्ग, चाहे मुक्ति. भगवान सभी कुछ देते हैं, किन्तु अभक्तों के कोई भी सङ्कल्प सिद्ध नहीं होते। प्रारब्ध कर्मो के अनुसार, तप आदि के प्रभाव से यदि उन्हें ऐश्वर्य की प्राप्ति हो भी जाय, तो उससे उन्हें शान्ति नही मिलती और अशान्ति बढ़ जाती है। सच्चे हृदय से भगवान् की शरण लेकर, मनुष्यों से कुछ भी आशा न रखकर, जो भगवत् चिन्तन में लगा रहता है, उसकी सभी चिन्तायें प्रभु अपने ऊपर ले लेते हैं। उसके सभी कामों को वे स्वयं अपने हाथों से करते है।

"अच्छा, तो सुनिए अब आगे की कहानी। वे ज्ञानोपदेश करने वाले कृपालु सन्त तो चले गये, अब अपने राम रह गये। मैं और मेरी माता एक घर में पास रहते हुए भी हम दोनों विचारों में एक दूसरे से बहुत दूर थे। एक तो वह मेरी माँ कुछ पढ़ी लिखी नहीं थी, दूसरे अन्य के अधीन थी, तीसरे परिवार की दासी थी और फिर स्त्री ही ठहरी।"

व्यासजी बोले—"क्यों महाराज ! स्त्रियाँ भजन नहीं करती हैं क्या ?"

नारदजी ने कहा—"ऐसी बात नहीं है, स्त्रियों में भी बहुत सी भक्ता और भजन परायणा होती हैं, किन्तु उनमे संसारी आसक्ति—बेटा बहू की ममता—पुरुषों की अपेक्षा अधिक होती है। फिर मैं तो अपनी माँ का इकलौता ही बेटा था। अभी देखने मे सुन्दर—मुनमुना सा बच्चा—था। वह मुझे बड़े ही प्यार से उठा लेती, गोद में बिठा लेती। मुँह चूमते-चूमते मेरे मुँह को लाल बना देती। मेरा बेटा ! मेरा मुन्ना ! मेरा सुग्गा और न जाने क्या-क्या कहती। मुझे यह मोह विष के समान प्रतीत होता। किन्तु करूँ क्या, मेरी गति माँ ही थी। माँ का आधार मैं था। अन्धे लूले के समान हम एक दूसरे से अनिच्छा पूर्वक बँधे हुए थे।

मुझे बस, एक ही चिन्ता थी कि इस माता रूपी मोह जाल से छूटकर कब स्वच्छन्दता से विचरण करूँ। किन्तु कुछ करने मे समर्थ नहीं था। एक तो मैं बालक था, ५ वर्ष की मेरी अवस्था थी, मुझे यह भी पता भी नहीं था, किधर जाना होगा? किस समय किस जगह जाना होगा और किस दिशा में कौनसा देश है किधर अरण्य है, कहाँ जाने से साधु संग मिलेगा ? इसी चिन्ता में मेरा शरीर सूखने लगा। मुझे घर अच्छा नहीं लगता था, रोटी खाकर गङ्गा किनारे उसी बगीचे में जा बैठता। उन सन्तों की वे सब स्मृतियाँ मेरे हृदय पटल पर नाचने लगतीं। यहाँ कीर्तन होता था, यहाँ सेवा पूजा थी, यहाँ महाराज जी की कुटिया थी, यहाँ भगवान् का प्रसाद बनता था, यहाँ गौएँ बँधती थीं, यहाँ कथा होती थी कितनी चहल पहल रहती थी उन दिनों। काल की कैसी कुटिल गति है। अब पता नहीं वे सन्त किस देश को अलंकृत कर रहे होंगे ? अब वहाँ धूम धाम मची होगी, यहाँ की सब श्री उठ कर वहाँ चली गई। वे

हापुरुष उत्सव रूप थे। जहाँ वे जाते है, वहीं उत्सव हो जाता। वे नित्य उत्सव—तीर्थ स्वरूप—है।

व्यास जी! इस प्रकार उन सन्तों की स्मृति से भी मेरे अंतः-रण मे सुख का संचार होने लगा। उनकी स्मृति भी सुखद तीत होने लगी। यही नहीं इस स्मृति में मिलन से एक अपूर्व। मीठे मीठे दर्द के समान विचित्र अनिर्वचनीय सुख था। हाँ बैठकर मैं तन्मय होकर—

> 'श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे!
> हे नाथ नारायण वासुदेव'!

स मङ्गलमय मधुर मन्त्र का लय के साथ कीर्तन करता। मुझे तीत होता था, दिशाये मेरे स्वर में स्वर मिला कर मेरे मन्त्र का अनुसरण कर रही है। आकाश ताल दे रहा है, वायु स्वर लाप रहा है, प्रकृति नृत्य कर रही है और स्वर्गीय देवता जय-जय घोष कर रहे है।

जब सङ्कीर्तन से निवृत्त होता, तो ध्यान करता। अँधेरा होने लगता, तो घर आता। घर आते ही माँ पूछती—"बेटा, अब तक कहाँ था? जङ्गल में इतनी रात्रि तक रहा बेटा! नहीं रहते। रीछ बाघ आते है, सबेरे ही लौट आया कर। तू वहाँ अकेला क्या करता रहता है?"

मैं कह देता—माँ, मेरा मन यहाँ नही लगता। गंगा किनारे जाता हूँ। पके-पके बेर तोड़ कर खाता हूँ। वहीं खेलता रहता हूँ। गङ्गा किनारे मुझे बड़ा अच्छा लगता है।"

उसे तो मेरी प्रसन्नता अभीष्ट थी। जब उसे मालूम हुआ कि मेरा बच्चा बेर खाता है इसका मन लगता है, तो फिर

वह कुछ न बोलती। इतना ही कह देती कि दिन छिपे से पहिले ही लौट आया कर। वह मुझे बहुत ठाठ बाट से रखना चाहती थी, अच्छा-अच्छा पदार्थ खिलाना चाहती थी, किन्तु वह ऐसा कर नहीं सकती थी। दूसरो की दासी ही ठहरी; परतन्त्रा थी। फिर भी भरसक मुझे सुखी रखने की चेष्टा करती।

भगवान् तो भक्तों के सभी मनोरथों को पूर्ण करने वाले हैं। उन्होंने मेरी भी इच्छा पूर्ण की। एक दिन सायंकाल को अपने स्वामी की गौ दुहने के लिये दोहनी लेकर मेरी माँ गोशाला में गई। कृष्ण पक्ष था, सूर्य अस्त हो चुके थे। कुछ झुटपुटा सा हो रहा था। अँधेरे में उसे दिखाई तो दिया नहीं। वहाँ एक काला भुजङ्ग फन उठाये पड़ा था। मेरी माँ का उसके ऊपर पैर पड़ गया। ज्यों ही उसका पैर पड़ा त्यों ही उसे गुदगुदी सी कोई वस्तु प्रतीत हुई। उसने चट से पैर उठाना चाहा ही था कि क्रुद्ध सर्प ने फुफकारते हुये पट से पैर में काट लिया। माता कटे केले की भाँति व्याकुल होकर खट से पृथ्वी पर गिर पडी और उसके प्राण पखेरू झट से परलोक के लिये प्रयाण कर गये। केवल माँ का निर्जीव शरीर ही वहाँ पड़ा रह गया।

मैं तो उस समय उसी बगीचे में बैठा ध्यान कर रहा था। हल्ला करते हुए लड़कों ने आकर मेरा ध्यान भङ्ग किया और हाँफते हुए आकर कहने लगे—"अरे हरी ! तू यार, यहाँ बैठा है तेरी तो महतारी मर गई।"

मैंने जोर देकर पूछा—"क्या कहा, सचमुच मर गई ?"

लड़कों ने बात पर बल देते हुए कहा—"नहीं तो क्या हम झूठ बोलते हैं ? तू जाकर अभी देख ले। वही गोशाला में पड़ी है। करियल साँप ने उसे डस लिया।"

"बस, यही तुम्हारे लिये परम मन्त्र है–महाराज ने इतना कहा और वे आसन उठाकर चल दिये। मैं हक्का बक्का सा रह गया। दौडकर मैंने उनके दोनो चरण कसकर पकड़ लिये और रोते रोते उन दोनो धूलि भरे चरणो को अपने अश्रुओ से भिगो दिया। उन्होंने मुझे बलपूर्वक उठाया, मेरी धूलि झाडी, मुझे प्रेम से पुचकारा, सिर पर हाथ फेरा और बिना कुछ कहे चल दिये।

"मैं पत्थर की मूर्ति के समान खड़ा अश्रु बहाता रहा। मेरे पलक नही गिरते थे, आँखें पथरा गई थी, मुझे पृथ्वी घूमती सी दिखाई देती थी, मानां वह मेरी दृष्टि से महात्माओं को अलग ले जा रही हो। जब तक महात्मा दीखते रहे, मैं एक टक भाव से उन्हें ही देखता रहा। जब वे मेरी दृष्टि से ओझल हो गये, तब हृदय पर पत्थर रख कर मैं उस धूलि में लोट गया। सम्पूर्ण शरीर में वह पावन रज मली। फिर खड़े होकर देखा--गाड़ियों की, गौओ की उड़ती हुई धूलि दिखाई दी। बड़ी देर तक उसी धूलि को देखता रहा। मेरे दुर्भाग्य से उस दिन भगवान् भुवन भास्कर भी बड़ी ही शीघ्रता से पश्चिम दिशा की ओर दौडे जा रहे थे। उन्हें इतनी शीघ्रता करते देख कर मुझे कुछ भय भी होने लगा। बालक ही ठहरा, गाँव से दूर आ गया था महात्मा भी दिखाई नही देते थे। अतः उस दिशा को प्रणाम करके, रोते-रोते 'श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेव!' इसी प्रेम दाता महामन्त्र का कीर्तन करते-करते गाँव को लौटा। अब मेरे जीवन का आधार यही एक मन्त्र बन गया—

श्री कृष्ण गोविन्द हरे मुरारे,
हे नाथ नारायण वासुदेव!

छप्पय

निर्मोही ये सन्त प्यार करिके अपनावें।
किन्तु अन्त मे वधिक सरिस हिय छूरी चलावें ॥
गहकि मिले जब तलक रहें रस नित बरसावें।
कसकि हिये मे छोड़ि निठुर बनिकें भगि जावें ॥
साधुन सँग अति प्रेम करि, जगसुख काहू नहिं लह्यो।
तलफत ई जीवन गयो, रुदन शेष ई रहि गयो ॥

शूद्रा माता की मृत्यु

(२२)

एकदा निर्गता गेहाद् दुहतीं निशि गां पथि।
सर्पोऽदशत्पदा स्पृष्टः कृपणां कालचोदिता ॥१

(श्री भा० १ स्क० ११ अ० ३२ श्लोक)

छप्पय

छीन दीन कुल हीन, कृष्ण कूँ कैसे पाऊँ।
करुणा सिन्धु कृपालु मिलें केहि मारग जाऊँ॥
हौं सोचूँ नित जिही, गीत माता कछु गावे।
होवे बेटा बड़ो बहू बढुआसी आवे॥
माँ के मनकी नहिँ भई, मृत्यु फाँस में फँसि गई।
दूध दुहन घरते गई, काल नाग ने डसि लई॥

मनुष्य कुछ और सङ्कल्प करता है, काल उसके विपरीत सङ्कल्प करता है, तो इसमें विजय काल की होती है क्योंकि काल का सङ्कल्प अमोघ है। काल सदा घात में बैठा रहता है।

---

१ नारद जी अपनी पूर्व जन्म की कथा कहते हुए बता रहे हैं– "व्यास जी! एक दिन मेरी शूद्रा माता रात्रि के समय स्वामी की गौओं को दुहने के निमित्त घर से बाहर निकली, उसी समय विचारी

हम असावधान भले ही हो जायँ, किन्तु काल सदा सावधान रहता है। वह किसी की बात नही मानता, वह किसी का शील सङ्कोच नही करता, वह दया करना, क्षमा करना, आलस्य करना सीखा ही नही। वह एक क्षण भी नही रुकता, उसकी गति अव्याहत है। आपका कितना भी बड़ा काम पड़ा हो, कितना भी मनोहर मनोरथ हो, वह आपकी एक भी नहीं सुनता, अपने समय से नही चूकता।

व्यासजी की उत्सुकता नारद जी के पूर्वजन्म के वृत्तांत के श्रवण से बहुत बढ़ गई थी। उन्होने बड़ी उत्सुकता के साथ नारदजी से पूछा—"हाँ, तो भगवन् ! फिर क्या हुआ ? वे महात्मा तो चले गये, बड़े निर्मोही थे। मुझे ऐसा लगता है उन्होने आपके साथ अन्याय किया। किन्तु यह भी कैसे कहूँ ? यदि उनके स्थान पर मैं होता, तो मैं ऐसा ही करने को विवश हो जाता। हम दूसरों की स्थिति बिना समझे ही उन पर दोषारोपण करते हैं। हाँ, तो बताइए फिर आपके ऊपर क्या-क्या बीती क्या हाल चाल रहा, कैसे आगे गाडी चली ? फिर वह शूद्रयोनि का शरीर कहाँ छोड़ा, कैसे छोड़ा, आपकी वह मोहमयी माता क्या हुई ? उसका मनोरथ पूर्ण हुआ कि नहीं आपका विवाह हुआ या नहीं ? माता ने बहुआ सी बहू का मुख देख कर स्वर्गलाभ किया या नही ? इन सब बातों को बताइये। मेरे सन्देहों को मिटाइये। आगे का अपना पूर्व जन्म का वृत्त सुनाइये और यह भी समझाइये, कि आपको यह इतनी पुरानी पूर्व जन्म की कहानी अब तक याद

था रास्ते में किसी सर्प के ऊपर पैर पड़ गया। काल प्रेरित उस सर्प ने उसे डस लिया। वह मर गई।

मैंने सन्तोष की साँस ली। भगवान् को बार-बार धन्यवाद दिया, कि फोड़ा फूटा पीर गई। अब न रहा बाँस न बजेगी बाँसुरी। माया मोह को श्यामसुन्दर ने स्वयं ही हर लिया।

लड़कों के साथ मैं गोशाला में गया। वहाँ माँ मरी हुई पड़ी थी। उसके सभी मनोरथ विफल हो गये। उसे डर था कि मैं कहीं उसे छोडकर चला न जाऊँ। मेरे जाने के पहिले वही मुझे सदा के लिये छोड़कर चली गई। मैं रोया नही, आँसू नही बहाये। लड़कों ने कहा तेरा हृदय बडा पत्थर का है रे! तेरी माँ मर गई और तू रोया तक नहीं।'

मैंने कहा भाई इसमें रोने की क्या बात है। मेरी माँ मरी थोड़े ही है। वह तो स्वर्ग को गई है। यहाँ तो उसे दिन भर काम करना पड़ता था. वहाँ सुख से रहेगी। भैया! तुम एक काम करो, इसे घर ले चलो।

लड़को के लिये एक नया खेल हो गया। किसी ने पैर पकड़े,किसी ने सिर पकड़ा,किसी ने बाल पकड़े, सब उसे खीचते घसीटते घर लाये और १०-५ आदमी भी आकर मेरे साथ सहानुभूति प्रकट करने लगे। कुछ लोगों ने कहा—अब रात्रि में तो क्या होगा। प्रातः इसे श्मसान में जलाने को ले चलेंगे।

मैंने यह कहा मेरी माँ श्मशान में न जलेगी। उसे यह घर बहुत प्रिय था। मैं तो इसी में उसे जलाऊँगा। लोगों ने लड़कपन समझा। हमारे स्वामी ने मुझसे घर चलने को कहा मैं नहीं गया। मैंने कहा—मैं तो माँ का दाह संस्कार करके ही कहीं जाऊँगा, सब लोग अपने-अपने घर चले गये। मैं कहीं से ४-५ उपले ले आया। आग माँग लाया। फूँस लेकर आग जलाई और छप्पर में दे दी। और कहा—'माँ'

अब तू अपने घर रह। मैं अपने घर जा रहा हूँ।' यह कह कर मैं बगीचे मे गङ्गा किनारे चला गया। मन कहता था—'चल!' मैं पूछता था—'कहाँ ?'

इसका वह कुछ भी उत्तर न देता। मैं बिना सोचे समझे ही अलक्षित मार्ग की ओर चल पड़ा। अनुमान से वह उत्तर दिशा थी। मेरा कोई निर्दिष्ट लक्ष्य नहीं था, कोई निश्चित गन्तव्य स्थान नहीं था। कहाँ जा रहा हूँ? इसका कोई निर्णय नहीं। मन कहता था—चलाचल! मैं आँखें मूँदे चला जा रहा था। कुछ नींद सी आने लगी। एक गहन वृक्ष के नीचे पड़ गया, किन्तु नैनों में नींद कहाँ? वैसे ही पड़ रहा। जब अरुणोदय का समय हुआ, वृक्षों पर अपने घोसलों मे बैठे पक्षी कलरव करने लगे, तो मैं उठ पड़ा और फिर चल दिया। बड़ा मनोरम था वह देश। कभी तो अहीरों के गाँव के बाहर झोंपड़े आ जाते, पास में ही उनकी गोशालायें होतीं जिनमें हजारों लाखों गौएँ बैठी जुगार कर रहीं थीं कहीं उनके बच्चे किलोल कर रहे थे, कहीं दूध दुहा जा रहा था, कहीं दही मथा जा रहा था, कहीं मक्खन तपाकर घी बनाया जा रहा था, कहीं कुछ लड़के बैठे मठा ही पी रहे थे, मैं रुका नहीं, चलता ही गया। कभी छोटे छोटे ग्राम दिखाई देते जिनके बाहर गोबर की कंडियों के बड़े-बड़े बिटौरे खड़े थे, कहीं भूसे की बुरजियें खड़ी थीं, कहीं कूओं पर स्त्रियाँ पानी भर रही थी। स्त्रियाँ मुझे देखतीं और आपस में कहने लगतीं—'पता नहीं, यह किसका बच्चा भटक गया है। इसके कोई साथ भी नहीं है।' कोई बड़ी बूढ़ी बुलाकर प्यार से पूछतीं—'बेटा, तू किसका लड़का है? कहाँ जा रहा है? तेरे

साथी कहाँ बिछुड गये ?' मैं कुछ भी न कहता, आगे चल देता। कोई बड़ा सा नगर मिलता जिसमें १०-२० दूकानें भी होतीं। कोई बड़ी भारी राजधानी दिखाइ देती। जिसमें राजा के महल, बाग, बगीचे, फुलवारी सड़कें स्वच्छ सुन्दर रणमीक मार्ग बने हुये दिखाई देते। शुभ्र स्वच्छ बस्त्र पहिने नागरिक नरनारी इधर से उधर जाते हुए दीख पड़ते। बहुत से नदियों में स्नान करते हुए दीखते. बहुत से देव मन्दिरों में पूजा करते हुए दृष्टिगोचर होते। मैं किसी की ओर नहीं देखता और आगे बढ़ता ही जाता। कभी-कभी किसी बड़ी बस्ती के बाहर सुन्दर फला फूला बगीचा दिखाई देता। समीप ही साफ सुन्दर सुस्वादु जल से भरा हुआ पक्के घाटों वाला विमल सरोवर होता। मेरा मन किसी भी प्रलोभन में नहीं फँसता, वह कहता—बस, कहीं रुको मत, आगे चले ही चलो। मैं भी मन की बात मानकर यन्त्र के समान चला ही जाता।

अब शनैः शनैः बस्तियों की शृङ्खला समाप्त हुई। अब आगे गहन वन के लक्षण दिखाई देने लगे। मैंने उस गहन वन में प्रवेश किया। वह इतना सघन था कि कहीं-कहीं तो मुझे झुक कर किसी झाड़ी के भीतर से जाना पड़ता। बड़े-बड़े बाँसों के वृक्ष थे, जो एक दूसरे से वायु के द्वारा हिलाये जाने पर रगड़ खा रहे थे। कहीं सरकन्डों के पेड़ थे तो कहीं कटीली कुशायें ही मेरे कोमल पैरों में गड़ कर पीड़ा पहुँचा रही थी। काँटेदार बहुत से सघन और पक्ति की पंक्ति पेड़ खड़े थे। उनका कोई क्रम नहीं था। किसी ने उन्हें नापकर श्रेणी बद्ध नहीं लगाया था। वह इतना सघन था, कि साधारण साहस

के पुरुष का उसमें प्रवेश करना अत्यन्त कठिन था। मनुष्य के तो उसमे दर्शन ही दुर्लभ थे। जङ्गली और विषैले जानवरों का ही वहाँ प्रावल्य था। कभी सामने से सर्र से साँप निकल गया, कहीं पास ही डंक उठाये बड़े-बड़े विष वाले बिच्छू विचरण कर रहे थे, कहीं सियार रो रहे थे, कहीं ऊदबिला भाग रहे थे, कहीं उल्लू घू-घू कर रहे थे। कभी सिंह के गर्जन सुनाई देती, कभी पास ही चिंघाड़ता हुआ हाथी दिखाई देता, कहीं चीते की खोह दिखाई देती, कहीं रीछ दोनों हाथों उठाये किसी पेड़ से फल खाता हुआ दीखता अब मुझे कुछ-कुछ भय सा प्रतीत होने लगा। चारों ओर दृष्टि उठाकर देखूँ तो जङ्गल ही जङ्गल दिखाई दे। कहीं बस्ती का नाम नहीं। न मनुष्य, न मनुष्य को परछाईं पैरों ने भी अब जवाब दे दिया। इन्द्रियाँ भी सभी शिथिल पड़ गईं। भूख प्यास ने भी आकर अपना राग अलापना आरम्भ किया। पेट कुलबुलाने लगा। उसमें चूहे से फुदकते प्रतीत हुए। प्यास से कन्ठ भी सूखा जा रहा था। चारों ओर दृष्टि डालूँ तो पेड़ों के अतिरिक्त कुछ दिखाई ही न दे। तब मैं एक पेड़ पर चढ़ गया। ऊपर से मैंने देखा—पास ही एक नदी का तट है। मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। पेड़ से उतर कर मैं उसी ओर चढ़ा। थोड़े ही समय मे मैं सरिता के समीप पहुँच गया।

उस नदी का जल कितना स्वच्छ, सुन्दर, निर्मल और शीतल था। उसकी व्यास जी ! मैं प्रशंसा नहीं कर सकता। या यों कह लीजिये, कि उस समय मैं बहुत थका, भूखा, प्यासा पानी की ही प्रतिक्षा में था। भूख प्यास मे ही अन्न जल

का यथार्थ स्वाद आता है नदी मे ही कुण्ड सा था। नदी बहुत बड़ी नही थी; किन्तु पहाड़ी होने से बड़ी वेगवती थी। मैंने घुसकर उसमें स्नान किया। स्नान करते ही शरीर फूल की तरह हलका हो गया। सभी श्रत ग्लानि मिट गई, चित्त में प्रसन्नता आ गई। इन्द्रियाँ सभी स्वस्थ हुईं। मैंने खूब भर पेट पानी पिया। उस पानी में मुझे अमृत के समान स्वाद प्रतीत हुआ। पानी के पीते ही भूख प्यास सभी भाग गई।

पास में एक अत्यन्त ही घना पीपल का पेड़ था। उसके नीचे मैं आसन मारकर बैठ गया। अब मुझे उन्ही मुनि के बताये हुए ध्यान की स्मृति आई। हृदय माँ के मरने से आर्द्र हो गया था। अरण्य को देख कर वैराग्य बढ़ गया था। मैं उसी प्रकार प्रेम पूर्वक श्रद्धा के साथ भगवत् ध्यान में प्रवृत्त हुआ। इतना कहते-कहते नारद जी का गला भर आया। वे चुप हो गये।

इस पर थोड़ी देर ठहर कर व्यासजी ने पूछा—"हाँ, भगवन्! फिर क्या हुआ! आपने तो मेरी उत्सुकता आवश्यकता से अधिक बढ़ा दी।

नारदजी ने अपने बहाते हुए प्रेमाश्रुओं को पोंछा, कमंडलु के जल से अवसान किया और फिर कहने लगे—"व्यासजी! आगे की बात कहने की नहीं, अनुभव की है। उसे मैं आपके

सम्मुख कहूँगा। थोड़ा मुझे ध्यान कर लेने दीजिये। इतना कह कर नारदजी नेत्र बन्द करके ध्यान में मग्न हो गये।

छप्पय

मोहमयी मम मातु मरी मैं घरतें भाग्यो।
जरी जगत की आस,कृष्ण चरननि चित लाग्यो॥
देश, नगर, नद, नदी,लाँघि निरजन वन आयो।
न्हायो सरिता सलिल पान करि ध्यान लगायो॥
ध्यान करत ई चित्त की चिन्ता सबरी नस गई।
मनमोहन की माधुरी, मन मेरे में बसि गई॥

पुनः नारद शरीर की प्राप्ति

(२३)

देव दत्तामिमां वीणां स्वरब्रह्मविभूषिताम् ।
मूर्च्छयित्वा हरिकथां गायमानश्चराम्यहम् ।।१

(श्री भा० १ स्क० ६ अ० ३३ श्लोक)

छप्पय

भक्ति भाव तें भरित हृदय में हरिजी आये ।
करत दरश तनु पुलक, अश्रु नयननि में छाये ।।
अति उत्कण्ठा बढ़ी, शान्ति सरिता पथ पूरयो ।
प्रेम बाढ़ में बह्यो, चित्त आनन्द में डूब्यो ।।
ध्यान ध्येय ध्याता सभी, ध्येय वस्तु में मिलि गये ।
दर्शन देके दयानिधि, तुरत चित्त में चलि गये ।।

एक बार जिसने जिस वस्तु का रसास्वादन कर लिया है उसका स्मरण आते ही उसके रस का चित्र अङ्कित हो जाता है। स्मरण आते ही उसके रस का अनुभव मन से होने लगता है। अन्तःकरण उसके स्पर्श का अनुभव करने लगता है।

---

१ श्री दयानिधि की दी हुई इस स्वरब्रह्मविभूषिता वीणा को बजाता हुआ, हरि गुण गाता हुआ, हे व्यास जी ! मैं चौदह भुवनों में भ्रमण करता रहता हूँ।

संसारी सुखों की स्मृति तो साधन वैराग्य द्वारा किसी तरह भुलाई भी जा सकती है, किन्तु अनिर्वचनीय सुख का—जहाँ जाकर मन आनन्द के सागर में मग्न हो जाता है—गोता लगाने लगता है—उसे भुलाना असम्भव है, आवश्यकता भी नहीं, क्योंकि वही तो एक मात्र स्मरणीय वस्तु है।

नारदजी को पूर्व जन्म में जिस प्रकार हृदय मे भगवत् कृपा का साक्षात्कार हुआ, जिस प्रकार उनके शुद्ध अन्तःकरण में परम प्रेमास्पद प्रभु का प्रादुर्भाव हुआ, उसी की स्मृति मात्र से ही उनका हृदय भर आया। शरीर रोमांचित हो गया। कण्ठ गद्‌गद् होने से आगे कुछ कह न सके। नेत्रों में अश्रुओं की बाढ़ सी आ गई। अश्रु पोछ कर फिर उन्होंने ध्यान किया। उस रस का ध्यानावस्था में पुनः आस्वादन किया। ध्यान के अनन्तर फिर बड़े कष्ट से उन्होने अपनी वृत्ति को बाहर की ओर किया। बाह्य वृत्ति होने पर भी चित्त का कुछ भाग उसी आनन्द में विभोर हो रहा था। उसी आवेग में वे कहने लगे।

नारदजी ने कहा—"व्यासजी! आगे की बात आपसे कैसे कहूँ। उस समय बढ़े हुए प्रेम के वेग से मेरा सम्पूर्ण शरीर रोमांचित हो उठा। हृदय में शांति की हिलोर उठने लगीं। मन आनन्द सागर में निमग्न हो गया। यह दृश्यमान जगत् एक दम विलीन हो गया। मैं अपने आपको भी भूल गया। श्यामसुन्दर के हृदयहारी सौन्दर्य लावण्य में चित्त विलीन हो गया। थोड़े ही समय के पश्चात् क्या देखता हूँ कि भगवान् की वह बाँकी झाँकी अब हृदय में नहीं होती। सहसा वह छटा आकाश में बिजली की भाँति विलीन हो गई। आनन्द सागर में से उछलकर चित्त चिन्ता के पङ्क में फंस गया। सर्वस्व

गँवाये हुए व्यापारी की भाँति व्याकुल होकर मन इधर उधर भटकने लगा। जिस संसार को भूल गया था, उसका पुनः प्रादुर्भाव होने लगा। मैं जलहीन मछली की भाँति तड़फड़ाने लगा, फिर सावधान होकर आसन बाँध कर बैठा. नेत्रों को बन्द किया पुनः ध्यान किया, किन्तु वह सुखद शांति, वह कमनीय कान्ति अब कहाँ? उससे मेरी उत्कन्ठा और भी बढ़ी। जैसे अत्यन्त बुभुक्षित पुरुष को एक अत्यन्त ही मधुर रसगुल्ला देकर, फिर उसके सामने से सभी सुन्दर सामानों से सजे सजाये पात्र को सहसा हटा लिया जाय, उसे उस समय जैसा दुख होता है, उससे भी अधिक दुःख मुझे हुआ। मैं अभी अत्यन्त ही अतृप्त था, जो रूप मेरी तृप्ति कर सकता था, वह क्षण भर में ही विलीन हो गया। मैं जब बार-बार प्रयत्न करने पर भी उसे पुनः प्राप्त न कर सका, तो उसी दुख से दुखी होकर रोने लगा। व्याकुलता के कारण मैं किंकर्तव्य विमूढ़ बन गया। क्या करूँ कहाँ जाऊँ, किससे पूछूँ, कौन मेरे दुःख को मिटावेगा कौन मुझे पुनः उस सुख की प्राप्ति का मार्ग बतावेगा? यह सब सोच ही रहा था कि मुझे एक गम्भीर वाणी सुनाई दी। मैं चौंक कर चारों ओर नेत्र फैला कर देखने लगा कि यह वाणी कहाँ से आती है कौन कहता है, कहने वाला कैसा है, कहाँ है, किससे कह रहा है? उस वाणी को आकाश से ही आते देखकर और उसके कहने वाले को न देख कर, मैं समझ गया, कि यह अशरीरा आकाशवाणी ही है और मेरे ही उद्देश्य से कही जा रही है।

आकाशवाणी ने कहा—'बच्चा! अब तुम्हारा प्रयत्न सफल न होगा। अब तुम्हें मेरे पुनः इस रूप में—इस शरीर से—दर्शन होने दुर्लभ हैं।'

मैंने हाथ जोड़कर कहा—"जिसने मेरे ऊपर इतनी कृपा की है, वह देववाणी मुझे यह भी बतावे कि मुझे इस शरीर से अब ऐसे दर्शन क्यो न होंगे ?"

आकाशवाणी ने कहा—"अभी तुम्हारे मन के कषाय दूर नही हुए। अभी संयम की अपेक्षा है। अभी साधन की कमी है और अधिक अभ्यास से हर समय दर्शन हुआ करेंगे। जिनकी सम्पूर्ण वासनाये पूर्णतया शांत नहीं हो जाती, उन कुयोगियों को मेरा दर्शन अत्यन्त ही दुर्लभ है।"

हाथ जोड़े हुए मैंने फिर कहा—"तब फिर एक बार यह दर्शन क्यों हुआ ? मैं तो सर्वथा साधनहीन, मतिमलीन, हीन कुल में उत्पन्न बालक हूँ। मुझे यह देवदुर्लभ सुख एक बार क्यों मिला ?"

आकाशवाणी ने कहा—"यह दर्शन तुम्हारे उत्कण्ठा को बढ़ाने के लिये हुआ। तुम्हारी इच्छा को बलवती बनाने को ही तुम्हारे अन्तःकरण में मैं प्रादुर्भूत हुआ। दीर्घकाल तक तुमने श्रद्धा से साधु सेवा की है, उसी के परिणाम स्वरूप तुम्हारा अन्तकरण शुद्ध हुआ है। उसी से तुम्हें मेरे दर्शनों का यह एक बार सुख प्राप्त हुआ है। अब जब तुम इस अधम शरीर को त्याग कर फिर दिव्य शरीर प्राप्त करोगे, तो तुम्हें पुनः ऐसा सुयोग्य प्राप्त होगा।"

मैंने आकाशवाणी से पूछा—मैं फिर तो माया जाल में न फँस जाऊँगा ? मुझे पुनः इस अलौकिक रूप की विस्मृति तो न हो जायेगी ?"

आकाशवाणी ने कहा—"मुझ में लगी तुम्हारी बुद्धि कभी नष्ट न होगी। अब तुम कभी संसारी चक्कर मे नहीं फँस सकते

माया तुम्हारा कुछ भी बिगाड़ नहीं सकती। अगले जन्म में तुम मेरे अत्यन्त प्रिय पार्षद निजी जन होगे, मेरे अभिन्न रूप ही होगे मेरा दूसरा अवतार स्वरूप ही तुम माने जाओगे और पूर्व जन्म की ये सब स्मृतियाँ तुम्हें ज्यों की त्यों बनी रहेंग।"

वह नभ वाणी क्या थी, अव्यक्त रूप से भगवान् वासुदेव ही बोल रहे थे। मेरे ऊपर कृपा करके वे मुझे आगे का कर्तव्य सुझा रहे थे,हरि के नाम और गुणों में मेरी उत्कण्डा बढ़ा रहे थे, काल के भय से मुझे निर्भय बना रहे थे, शरीर को प्रारब्ध पर छोड़ दो, यह पाठ पढ़ा रहे थे। मुझे मन से प्रसन्नता हुई, उस महान् से महान् भूमा पुरुष को जो दिखाई नहीं देते थे किन्तु उनकी सत्ता वहाँ विद्यमान थी, उन सर्वत्र व्यापक अच्युत को श्रद्धा-भक्ति से मैंने प्रणाम किया। अब तो मुझे निश्चय हो गया, कि इस शरीर से भगवान् के अब उस प्रकार के दर्शन दुर्लभ हैं, अब दूसरे जन्म में भगवत् कृपा का परम पात्र बन सकूँगा। अतः प्रारब्धों को भोगता हुआ शरीर-पात की प्रतीक्षा करने लगा।

मनुष्य को तभी तक भय रहता है, जब तक वह मरने से डरता है। जिसने मृत्यु को अवश्यम्भावी समझ कर उसके भय का परित्याग कर दिया है। जिसने अपने सिर को हथेली पर रख लिया है, जिसे जीने का व्यर्थ मोह नहीं है, वह मृत्यु से न डरने वाला—हर समय उनके लिये तैयार बैठा रहने वाला पुरुष—संसार में सब कुछ कर सकता है। सो व्यासजी! अब मुझे शरीर का मोह तो रहा नहीं। यही नहीं, यह शरीर मुझे भार सा प्रतीत होने लगा। भगवत् दर्शन में अन्तराय दिखाई देने लगा। मैं मृत्यु की प्रतीक्षा करने लगा। कब काल आवे और कब मैं उसका स्वागत-सत्कार करके उसके कण्ठ में जयमाल पहिनाऊँ

और उसके साथ ही साथ उसके निर्दिष्ट लोक में जाऊँ। काल की शंका निवृत्त हो गई, जीवन का एल मात्र कर्तव्य परम मधुर भगवान् के नामों का गान करना, उनकी दिव्य ललित लीलाओं का चिंतन करना और उनके परम माधुर्य मय, आनन्दमय लोकोत्तर गुणों का स्मरण करना ही है। इस बात का निश्चय हो गया। अब तो मद, मत्सर से शून्य, प्रसन्न चित्त तथा निस्पृह होकर पृथ्वी पर इधर से उधर भ्रमण करने लगा। मैंने संसारी लोक लाज को तिलांजलि दे दी। परमार्थ साधन में—संसारी लोग हमें क्या कहेंगे, हमारे इस भजन पूजन का देख कर हँसेंगे-इस प्रकार की लज्जा होना बड़ा भारी विघ्न है। ससारी लोग तो अपने व्यवहार में निर्लज्ज होकर लगे रहते है। वे इन क्षुद्र सुखों के पीछे सच्चिदानन्द स्वरूप श्रीहरि को सदा भूले रहते हैं। सौंदर्य माधुर्य के एकमात्र स्थान भगवान वासुदेव की उपेक्षा करके इन ईंट, पत्थर चमकती हुई पृथ्वी की विकार भूत इन धातुओं और मांस मज्जा के इन पिंडो के पीछे सर्वान्तर्यामी, जगत्पति, विश्वनाथ को भूल जाना, इन विषयों के लिये भाँति-भाँति के छल छिद्र कपट, धूर्तता करना, झूठ सच व्यवहार करना क्य यह लज्जा की बात नहीं है। ? जब वे भगवान् से भी लज्जा नहीं करते, तो हम परमार्थ के साधन इन क्षुद्र संसारी लोगों के सकोच से अपने सुखद साधन के करने मे क्यों संकुचित हों? हमें निर्भय होकर, अपने प्राणवल्लभ को रिझाना चाहिये। अपना साधन अपने प्रेम लिये करना चहिये, न कि किसी को दिखाने और बताने के लिये।

मैंने भी संसार की उपेक्षा कर दी। संसारी लोग क्या समझेंगे, इसकी चिन्ता करना मैंने छोड़ दिया। उनकी समझ

अपनी है, वे जो चाहें समझें, हमने किसी की समझ का ठेका थोड़े ही लिया है। मैं पागलों की तरह जोर-जोर से 'श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे,हे नाथ नारायण वासुदेव!'मङ्गलमय भगवान् के नामों का गान करता। उनका स्वर के सहित कीर्तन करता। नाम गान करते-करते नृत्य भी करने लगता। कभी-कभी गाँव के बालक आकर मुझे घेर लेते और पागल समझ कर वे भी मेरे साथ हँसी में कीर्तन करने लगते।

भय मेरा भाग गया था। इसलिये निर्भय होकर जङ्गली जानवरों के पास चला जाता। बाघ,सिंह जो भी आ जाता उससे लिपट जाता,उसके मुखमें अपना हाथ दे देता। वह सूँघकर चला जाता कुछ भी न बोलता। रीछ भालू दिखाई देता, तो मैं उसके बाल पकड़ लेता, और उसकी पीठ पर चढ़ जाता, उनके दोनों आगे के हाथों को पकड कर नाम गायन करता हुआ उसके साथ नाचने लगता, वह कुछ भी न बोलता। इससे हे महाभाग व्यास जी! मुझे निश्चय हो गया, कि मनुष्य मृत्यु से व्यर्थ ही डरता है, जब तक मृत्यु का समय नहीं, तब तक लाख प्रयत्न करने पर भी मृत्यु नही आ सकती। जिस क्षण समय पूरा हो जायगा उस क्षण करोड़ों प्रयत्न करने पर भी काल से कोई बचा नही सकता। हम चाहें न जानें, किन्तु मृत्यु का समय निश्चित है, वह उसी समय आ जाती है और अप्रमत्त होकर प्रमत्तप्राणी को पकड़ ले जाती है। मेरी मृत्यु का अभी समय नहीं था। इसलिये व्याघ्र सिंह, सर्प, सरभ, सूकर, रीछ, भालू कोई भी मुझसे न बोलता इस प्रकार नाम गान करता हुआ मैं पृथ्वी की प्रदक्षिणा करने लगा।

जिसने जन्म धारण किया है, उसकी मृत्यु अवश्यम्भावी है। उसे कोई टाल नहीं सकता, अन्यथा नहीं कर सकता प्रारब्ध की समाप्ति तक यह शरीर अवश्य रहेगा। प्रारब्ध के अन्त होते ही, यह निष्प्राण हो जायगा। समय आने पर मेरे शरीर का प्रारब्ध समाप्त हुआ। जैसे आकाश मे बिजली चमक कर विलीन हो जाती है। जैसे कूल के दुर्बल वृक्ष बाढ़ आते ही उसमे बह जाते है, उसी प्रकार मृत्यु ने आकर मेरे शरीर से प्राणों को पृथक् कर दिया। उस मानुषी शरीर को त्याग कर मैं ब्रह्माजी की श्वांस के साथ, उनके शरीर में घुस कर—उनके साथ ही—शेषशैया पर शयन करते हुए सर्वेश्वर के साथ सो गया।

व्यासजी ने कहा–"महाराज,यह क्या कह दिया। ब्रह्माजी कहाँ, शेषशायी हरि कहाँ, आप कहाँ ? कैसे आप उनके शरीर मे प्रवेश कर गये ?"

नारदजी ने कहा—"व्यासजी ! संयोग की बात कि उसी समय कल्प के अन्त का समय उपस्थित हुआ था। ब्रह्माजी सम्पूर्ण दृश्य प्रपञ्च को अपने में विलीन करके क्षीरशायी भगवान् के शरीर के भीतर सोने के लिये उत्सुक थे। उसी समय उनकी स्वास के साथ मेरा भी जीवात्मा उन्ही में प्रवेश कर गया अब एक हजार युगों की चौकड़ी तक तो ब्रह्माजी सृष्टि कर ही नहीं सकते थे। वह तो उनके शयन का—विश्राम का—समय था। मैंने भी उनके साथ ही लेट लगाई और इन संसारी नारकीय शरीरों से मुक्ति पाई।

जैसे मनुष्यों के दिन रात्रि होते है, वैसे ही सतयुग, त्रेता द्वापर और कलियुग ये चारों युग हजार-हजार बार बीत जाते है, तो ब्रह्माजी का एक दिन होता है, उतनी ही बड़ी एक रात्रि। इसे कल्प या परिवर्तन कहते हैं। जब ब्रह्माजी की रात्रि व्यतीत

हुई और उठते ही फिर वे सृष्टि की प्रपञ्च रचना में प्रवृत्ति हुए। उनकी इन्द्रियों से मानसिक सङ्कल्प के द्वारा मरीच, अत्रि, अङ्गिरा आदि बहुत से पुत्र उत्पन्न हुए। उसी समय उनकी गोद से मैं भी उत्पन्न हो गया। हम लोगों से पूर्व हमारे चार बड़े भाई सनक, सनन्दन, सनातन, और सनतकुमार उत्पन्न हुये थे। उन्होंने लोक पितामह भगवान ब्रह्मा के कहने पर भी सृष्टि रचना में योग नहीं दिया। उनसे पीछे जो ऋषि हुए, उन्होने प्रजा सृजन रूपी कार्य किया। इसी से वे सब प्रजापति कहलाये। मैं भी सृष्टि रचना के झन्झट में नहीं पड़ा, मैंने भी अपने पूर्वजों के पथ का अनुसरण किया। उन जगतप्रभु, महाविष्णु भगवान् वासुदेव की कृपा से मैं अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करता हूँ।

भगवान् ने प्रसन्न होकर मुझसे पूछा—"नारद! तुम क्या चाहते हो? तुम्हें कौन सी बात अधिक रुचिकर है। तुम मुझसे कोई सर्वश्रेष्ठ वरदान माँग लो।'

मैंने विनीत भाव से कहा—"प्रभो! कोई आपको तप से, संयम से, सद्गुणों से ही प्रसन्न करना चाहें, तो असम्भव है। आप इतने महान् हैं, कि आपके अनुरूप उत्तम आचरण, तपस्या आदि कोई कर ही नहीं सकता। आपकी प्रसन्नता अहैतुकी है। आप अपनी ही कृपा के द्वारा प्रसन्न भले ही हो जायँ, आपका अनुग्रह साधन-साध्य नहीं, कृपा-साध्य है। जब आप ही मुझ पर प्रसन्न हैं, तब फिर मुझे अन्य वर की क्या आवश्यकता? आपकी प्रसन्नता ही मेरे लिये महान् वरदान है। फिर भी आपकी आज्ञा है, तो मैं यही वरदान माँगता हूँ, कि मैं सदा आपका गुणगान करता रहूँ। एक क्षण भी ऐसा न व्यतीत हो, कि जिस समय आपके मङ्गल नामों का मुख से उच्चारण न हो।

भगवान बड़े प्रसन्न हुए और बोले—"नारद ! मैं तुम्हा
भक्ति से बहुत प्रसन्न हूँ। लो, तुम इस वीणा को सम्हा
यह षट्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषा
इन सात स्वरों से संयुक्ता है, बड़ी मनोरमा है। इसे बजाक
तुम मेरे गुण गाया करो। अब तुम्हें मेरे दर्शनों के लिये प्रया
न करना पड़ेगा। जहाँ तुम प्रेम से गावोगे कि मैं क्षीरसाग
वैकुण्ठ, लक्ष्मी सभी को छोड़ छोड़कर—उसी क्षण—तुम्हारे पा
दौड़ा चला आऊँगा। तुमने मुझे मोल ले लिया।" व्यासजी
तुम जो इस वीणा को देख रहे हो, सो यह वही भगवान् क
दी हुई वीणा है। इसी को बजाता हुआ, हरिगुन गाता हुअ
मैं चौदहों भुवनों में बिना रोक-टोक घूमता रहता हूँ। सभ
मेरा आदर करते हैं सभी को मैं प्रिय हूँ, मुझे इधर की उध
बात सुनाने में बड़ा आनन्द आता है। इसी वीणा के कार
कोई मुझे तुमड़िया कहता है, कोई कलह प्रिय कह कर पुकारत
है। सुनकर हँस जाता हूँ और फिर हरि गुणगान में र
हो जाता हूँ।

छप्पय

हूँ अतृप्ति तब गिरयो मोहि मूर्छा सी आई।
यह तनु दर्शन होयँ, दई नभ गिरा सुनाई॥
कृष्ण कीर्तन करत, काल की करूँ प्रतिक्षा।
तनु तजि नारद भयो, भई भगवत की इच्छा॥
वीणा की झंकार सुनि, हरि हिय में प्रकटे तुरत।
दौड़ी आवे धेनु ज्यों, मोहन की मुरली सुनत॥

शान्ति का सरल मार्ग

(२४)

एतद्ध्यातुरचित्तानां मात्रास्पर्शेच्छया मुहुः।
भवसिन्धुप्लवो दृष्टो हरिचर्यानुवर्णनम् ॥

(श्री भा० १ स्क० ६ अ० ३५ श्लोक०)

छप्पय

करि नारद उपदेश व्यास तें बोले बानी।
कृष्ण कथा—सत्संग जनित निज कही कहानी ॥
तुम हू संशय त्याग भक्त भगवत गुन गाओ।
कृष्ण कथा के कहत शान्ति सुख सागर न्हाओ ॥
यों कहि ले वीणा चले, राम कृष्ण गुन गावते।
व्यास विचारें धन्य मुनि, ये सबके मन भावते ॥

जिस बात में अपना अनुभव नहीं, उसके उपदेश का कोई प्रभाव भी नहीं। जिस पथ से हम गये नहीं, उसका सुना सुनाया वर्णन प्रामाणिक नहीं समझा जाता। जिसने शब्द को

जिन लोगों के हृदय को विषयों की वासनायें बार-बार व्याकुल बनाती रहती है, उनके लिये श्रीकृष्ण चरणारविन्द की कमनीय कथा ही अगाध संसार सागर से पार करने वाली दृढ़ और सुनिश्चित नौका है। वे उसी के द्वारा बिना प्रयास पार जा सकते हैं।

ही रटा है, अर्थ को नहीं समझा है, वह अर्थ जानने वाले की अपेक्षा कम आदरणीय माना जाता है। अनुभूत औषधि पथ्यपूर्वक सेवन सर्वथा सुखदायक ही होता है। नारदजी ने व्यासजी के सम्मुख अपना अनुभव ही बताया। जिसका श्री व्यासजी के हृदय पर बड़ा प्रभाव पड़ा जब नारदजी अपने जन्म का पूर्व चरित कह कर चुप हो गये, तब व्यासजी ने फिर पूछा—"ब्रह्मन्! आपने बड़ी ही सुखद कथा सुनाई। इसे सुन कर मैं इसी परिणाम पर पहुँचा, कि जैसे श्रीगंगाजी सदा सर्वदा पापी प्राणियों के पापों को धोती रहती है, उसी प्रकार सत्-संगति से सभी प्रकार के संताप दूर होते हैं। यही नहीं सत्-संगति रूपी सरिता तो सर्वत्र प्राप्त हो सकती है। वह चलती फिरती नदी है। श्रीगंगाजी भी चलती फिरती हैं। किन्तु उनकी चाल एक सीमा में आवद्ध है। उसी सीमा में उन्हीं के कमनीय कूल पर जाकर जो जलपान, स्नान आदि करेगा उसी के पाप दूर होंगे। नाम लेने से भी कुछ दूर होते हैं किन्तु सत्संगति तो सर्वत्र सुलभ है। इस संसार को सन्त ही अपनी शक्ति से धारण किये हुए हैं। पृथ्वी और आकाश को ज्यों का त्यों स्थित रखने को सन्त ही स्तम्भ हैं। आप जैसे संत इस धराधाम पर विचरण करके हम जैसे संशय ग्रस्त जीवों के सशयों का छेदन न करें, तो ये सभी प्राणी सदा सशय सागर में डूबते हुए तड़फते रहें। यह पृथ्वी फिर कर्मभूमि न होकर निरय भूमि बन जाय। अब कृपा करके आप मुझे मेरा कर्तव्य बतावें।

व्यासजी की विनीत वाणी सुनकर नारदजी हँसते हुए बोले—"ब्रह्मन्! मैंने मायापति भगवान् की अचिन्त्य माया का प्रभाव भली भाँति समझ लिया है। इससे मेरे ऊपर माया

का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। मैं आनन्द से वीणा बजाते हुए विचरता हूँ। ये जो आदिभौतिक आधिदैविक और आध्यात्मिक तीन प्रकार के ताप हैं, ये ही मनुष्य को सदा पीड़ा पहुँचाते रहते हैं। ये ही जीवों को दुःख देते है। इनके ही संताप से संतापित हुआ पुरुष सदा जलता रहता है। जब तक इन भीषण रोगों की सावधानी से, लग कर चिकित्सा न की जाय तब तक ये रोग दूर नहीं हो सकते।"

व्यासजी ने पूछा—"महाभाग ! इन तीनों रोगों की आप औषधि बतावें।"

नारदजी बोले—"व्यासजी ! इन तीनों की *अलग-अलग* औषधि नहीं है। तीनों की एक ही अचूक अव्यर्थ औषधि है। उसका नाम है। 'सर्व कर्म समर्पण'। इसका भली भांति सेवन करने से सभी प्रकार के सन्ताप निश्चय ही दूर हो सकते हैं।"

व्यासजी ने पूछा—"भगवन् ! औषधि तो आपने बता दी, किन्तु बिना पथ्य के औषधि का उतना प्रभाव नहीं होता। अतः कृपा करके इस औषधि का पथ्य भी बतावें।"

नारदजी बोले—"पराशर नन्दन ! आप पहिले रोग का कारण समझें। वात, पित्त और कफ ही तीन धातुयें जब विकार को प्राप्त होती हैं, तो ये ही दोष के नाम से पुकारी जाती हैं, जिन चीजों में इनके भाग अधिक रहते है उनसे ये धातुयें बढ़ती हैं। जैसे गेहूँ, घृत, दधि, शर्करा इनसे कफ की वृद्धि होती है। कड़वी, खट्टी, चरपरी चीजों से पित्त बढता है। रूखी भारी चीजों से वायु का प्रकोप होता है। इसलिये आयुर्वेद शास्त्र का नियम है, कि जिनका जिन चीजों से रोग उत्पन्न हुआ हो, उन वस्तुओं को वैद्य छुड़वा देते हैं। जैसे मीठे से रोग हुआ

हो तो, उसमें मीठा वर्जित है। दधि से उत्पन्न रोग में दधि नहीं खाना चाहिये। कफ वृद्धि में जितने कफकारी पदार्थ है, उनका परित्याग कर देना चाहिये। अधिक अन्न खाने से अजीर्ण हुआ हो उस अजीर्ण में अन्न खाना विष के समान बताया है। उसमें लंघन ही पथ्य है। इसी प्रकार व्यासजी इन सब दुखों का, ससार बन्धन का, जन्म मरण का, एक मात्र कारण है कर्म कैसा भी करोगे उसका फल अवश्य भोगना पड़ेगा। पाप कर्म करोगे, तो दुःख उठाना पड़ेगा। पुण्य कर्मों से सुख की प्राप्ति होगी, इतना होने पर भी पुण्य कर्मों से शाश्वति शान्ति—कभी क्षय न होने वाला सुख नहीं मिल सकता। जैसे, पाप-कर्म बन्धन हैं, वैसे पुण्य कर्म भी बन्धन है। एक बन्धन मूँज की रस्सी का है, दूसरा रेशम के लच्छों का है। बन्धन में अन्तर नहीं। आदमी बँधा दोनों से रहेगा। अन्तर इतना ही है, कि एक अंगों में चुभेगा, दूसरा इतना चुभेगा नहीं। इसलिये इस संसार से सदा के लिये मुक्ति पाने की इच्छा रखने वालों को सभी प्रकार के कर्मों का परित्याग करना ही पड़ेगा।

व्यासजी ने कहा—"भगवन् यह बात तो हमारी समझ में कुछ आई नहीं। प्रायः बहुत रोग अन्न से ही होते है। यदि अन्न को बिलकुल ही छोड़ दें तो फिर रोग नाश होगा या नहीं, इसका तो पता नहीं, शरीर का नाश तो अवश्य ही हो जायगा। इसी प्रकार बिना कर्म किये यह इन्द्रियों वाला प्राणी खाली कैसे बैठा रह सकता है?"

नारदजी ने बड़े हर्ष के साथ कहा—"हाँ व्यासजी आपने बात पकड़ी। मेरे कहने का यथार्थ भाव यह है कि जिन चीजों

से जो रोग उत्पन्न हुआ हो,उस रोग में उन-उन वस्तुओं को उसी रूप में खाना निषेध है, किन्तु यदि युक्ति के साथ खाया जाय, तो वे उल्टी औषधि बन जाती हैं। जैसे अजीर्ण है, भूख सी भी है। गरिष्ठ अन्न से अजीर्ण हुआ है तो पतली खिचड़ी बनाकर उसमें हींग,जीरे का छोंक देकर, पापड़ और नीबू तथा अदरक के अचार के साथ खाय, तो वह पथ्य भोजन अजीर्ण को पचाने में सहायता देगा। इसी प्रकार सब कर्मों को करते समय उन्हें भगवत सेवा समझें। प्रत्येक कार्य करके अन्त में कह दिया करे 'श्रीकृष्णार्पणमस्तु' यह कर्म श्रीकृष्ण को अर्पण है। 'अनेन कर्मणा श्रीकृष्णपरमात्मा प्रीयतां, इद न मम।' इस कर्म के करने से श्रीकृष्ण भगवान प्रसन्न हों, यह कर्म उन्हीं के निमित्त है। मैं इसका न करता हूँ, न भोक्ता।' तब वह कर्म निष्फल हो जायगा। उनको आपने समर्पण करके निर्बीज बना दिया, भून डाला। जैसे उर्वरा भूमि में पानी पाकर पड़ा हुआ बीज अवश्य ही उग आवेगा, किन्तु आप उस बीज को भूभर में भून डालें, तो फिर कितना भी पानी देते रहें, कितनी भी खाद डालें, वह कभी उगने का नहीं।

इसी प्रकार जो शास्त्र विहित कर्म भगवत् प्रीत्यर्थ किये जाते हैं, उनसे संसार की पुनः उत्पत्ति न होकर भक्ति की--प्रभु प्रेम की उत्पत्ति होती है। जैसा बीज होगा वैसा ही पेड़ होगा। श्रीकृष्ण की प्रसन्नता के लिये किया गया कर्म श्रीकृष्ण को ही उत्पन्न करेगा। बबूर के बीज से आम कैसे उत्पन्न होगा?

आप पूछ सकते हैं, बिना आसक्ति के, बिना फल की इच्छा के कर्म में प्रवृत्ति ही नहीं होती। यदि किसान को यह आशा न हो, कि मेरे एक बीज के हजार हो जायंगे, तो वह खेत में बीज बोयेगा ही नहीं। सब कर्म किसी न किसी हेतु को आगे

रखकर किये जाते हैं, निर्हेतुक कर्म की कल्पना करना भी असंभव है। यह ठीक है, तो भी हमारे सब कर्म श्रीकृष्ण कृपा के ही हेतु से हों। जो करें, जो खांय, जो पीवें, यज्ञ, हवन दान पुण्य, श्राद्ध, तर्पण, जप तप, नियम, व्रत जो भी कुछ करें, उनका फल स्वयं न चाह कर उन्हें उन्हीं अच्युत को अर्पण कर दें। वे अच्युत तो बड़े कृतज्ञ हैं। मित्रों में भी परस्पर में यह होता है कि कोई मित्र हमारे यहाँ उपहार भेजता है, तो कृतज्ञतावश हम चाहते हैं, इसके बदले में हम उसके पास इससे उत्तम वस्तु भेजें। और यदि प्रेम से न भेजें, सौदा करके आदान प्रदान करें, तो जितने की वस्तु दोगे उतने की ही बदले में दूसरी वस्तु पाओगे। उससे कम तो मिल सकती है, किन्तु अधिक नहीं। यह बात काम्य-कर्मों के सम्बन्ध में है। जिस कामना से तुम यज्ञ-यागादि करोगे, उससे उसी कामना की पूर्ति होगी। किन्तु कृष्णार्पण करने से कृपालु कृष्ण उसके बदले में अपनी सबसे प्रिय वस्तु 'भक्ति' को प्रदान कर देंगे। इसीलिये सब कर्म करते हुए, निरन्तर श्रीकृष्ण के नाम और गुणों का कीर्तन करते रहना चाहिये। वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—इस चतुर्व्यूह रूप से श्रीहरि का पूजन करे, नमस्कार करे। मन्त्र ही जिनकी मूर्ति है, ऐसे अव्यक्त अच्युत का सदा चिन्तन करता रहे, यह सर्वश्रेष्ठ ज्ञान है, यही परम पुरुषार्थ है, यही मुख्य कर्तव्य है।

आप प्रमाण के लिये मुझे ही देखें, केवल भगवत् भक्ति से ही—केवल वीणा के स्वरों के साथ उनके नाम गान करने से ही प्रभु मुझ से प्रसन्न हैं। मेरे सभी मनोरथ पूर्ण करते हैं. मैं जब बुलाता हूँ, तुरन्त दौड़े चले आते हैं। सभी लोकों में मेरी अव्याहत गति है। सभी मेरा समान भाव से सम्मान करते

है, आठो सिद्धियाँ नवों निद्धियाँ मेरे पैरों तले लोटती रहती है। मुझे न किसी की चिन्ता है, न कोई शोक। मस्त होकर हरि गुन गाता हूँ और स्वच्छन्द होकर विचरता रहता हूँ।

हे ज्ञानियों में शिरोमणि! महा प्राज्ञ व्यासजी! आप भी ऐसा ही करें। आप सब कुछ समझते हैं। सब जानते है, सब कुछ करने में समर्थ हैं, अब आप इन अन्य शास्त्रो मे श्रम करने के कार्य को छोड़िये। अब तो आप भगवान की परम मधुर-मधुर लीलाओं को, जो हृदय को, मन को, कानों को समान रूप से सुखकारी हैं, जिन्हें ज्ञानी, मुक्त, नित्य, मुमुक्षु और यहाँ तक कि बद्ध विषयी प्राणी भी बड़े प्रेम से सुनते है, उन श्रीकृष्ण की शहद और मिश्री से भी मीठी, अमृत से भी अधिक गुणकारी, कमनीय कामिनी से भी अधिक चित्तहारी, योगी और मुनियों को भी प्यारी, कृष्ण की क्रीड़ाओं और लीलाओं का प्रेम के सहित. एकाग्र चित्त से वर्णन करें। उन्हीं के वर्णन करने से आपकी चिन्ता दूर होगी। आपका ही नहीं समस्त जगत् का कल्याण होगा।

यह मैंने आपसे अपने जन्म की कथा और उसका सारभूत तात्पर्य आपके साम ' वर्णन किया। लो, अब हमारी तुम्हारी राम-राम अब मैं जा रहा हूँ। इतना कहकर बिना व्यासजी के उत्तर की प्रतिक्षा किये हुए ही, वीणा के स्वरों पर तान छोड़ते हुए, सुन्दर कण्ठ से राम कृष्ण का कीर्तन करते हुए नारदजी यह गये वह गये और क्षण में ही अदृश्य हो गये।

उनकी मस्ती, उनका भगवन् प्रेम, उनकी आलौकिक भक्ति को देखकर व्यासजी मन ही मन कहने लगे—वाह-वाह! ये मुनि ही धन्य हैं। इनका वैराग्य, ज्ञान, भगवत प्रेम सराहनीय है यदि जीवन हो तो ऐसा ही हो।

छप्पय

धनि नारद मुनि धन्य-धन्य वर वीना इनिकी।
हरि यश गावैं नित्य सुरसना धनि-धनि तिनिकी॥
सब जग दुख संतप्त, फिरें जे हरि गुन गावत।
दुख को मेटत मूल शान्ति को पाठ पढ़ावत॥
धनि अवनी निज चरणकी, पद पराग परसत विमल।
द्वै ई दूरि करें दुरित, संत-संग सुरसरि सलिल॥

श्रीशुक के भागवत पढ़ने का कारण

(२५)

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थंभूतगुणो हरिः ॥*

(श्रीभा० १ स्क० ७ अ० १० श्लोक)

छप्पय

नारदजी जब गये व्यास बैठे वर आसन।
चित्त वृत्तिकूँ रोकि कियो इन्द्रिनि पै शासन॥
माया सहित महेश हृदय में दिये दिखाई।
भव भय भञ्जनि भक्ति प्रकट ह्वै सम्मुख आई॥
मन में मोद महा भयो, भव्य भागवत रचिलई।
निज सुत शुक कूँ स्वर सहित, सबरी कण्ठ करा दई॥

सच्चा श्रोता वही है, जो कथा के मूल को न भूले। बीज का कितना भी विस्तार हो जाय, स्कन्ध में से शाखा-प्रशाखायें फूट जायें, किन्तु दृष्टि वहीं रहे, जहाँ से इसका इतना विस्तार हुआ है। जो विस्तार के कारण मूल को बिसार देते हैं, वे उसके

*जो सदा आत्माराम में मग्न रहने वाले मुनि हैं, जिनके सब संशय नाश हो गये हैं, संशय न रहने से जिन्होंने ग्रन्थों का अध्ययनादि भी छोड़ दिया है, वे भी भगवान् वासुदेव में अहैतुकी भक्ति किया करते हैं। क्यों

गूढ़तत्व को समझने में असमर्थ होते हैं। शौनकजी तो सच्चे श्रोता है। वे अपने प्रश्न को भूले नहीं। उन्होंने तीन प्रश्न किये थे। (१) यह भागवत संहिता व्यासजी ने किनकी प्रेरणा से कहाँ बनाई ? (२) परम वैराग्यवान् जगत् से सदा उदासीन रहने वाले श्रीशुकदेवजी ने इस इतने बड़े ग्रन्थ को क्यों पढ़ा ? और(३)राजा परीक्षित् ने परोपकाररत अपने शरीर को स्वेच्छा से युवावस्था में ही क्यों छोड़ दिया, उन्होने उपवास क्यों किया और श्रीशुक ने उन्हें कथा कहाँ पर क्यों सुनाई ?

सूतजी ने यह तो वता दिया, कि उन्होने श्रीनारदजी की प्रेरणा से, उन्हीं की आज्ञा से इस परम पावन सात्वत संहिता के निर्माण का सङ्कल्प किया। इसे सुनकर शौनकादि मुनियों की जिज्ञासा और भी वढ़ी। वे सूतजी से पूछते लगे—"महाभाग सूतजी! आप बड़ी ही सरस कथा सुनाते हैं। आपकी कथा कहने की शैली सुन्दर और उत्सुकता उत्पन्न करने वाली है। आप कथा कहते-कहते बीच-बीच में माधुर्य का पुट लगाते जाते हैं, जिससे श्रोता ऊबता नहीं, उसे अधिकाधिक आनन्द ही आता जाता है। अब आप कृपा करके यह सुनाइये, कि नारदजी के चले जाने के अनन्तर वे साक्षात् विभु—श्रीविष्णु के अवतार श्रीव्यासजी—क्या करते भये ? उन्होंने कैसे इस भक्ति रस पूर्ण महान् ग्रन्थ को बनाया ? महात्यागी विरागी श्रीशुक ने इसे क्यों पढ़ा ?

ऋषियों के प्रश्न को सुनकर सूतजी कुछ देर तक ध्यान मग्न रहे। पुनः शनैः शनैः कहने लगे—ऋषियो! आपकी

करते हैं जी? उन्हें क्या आवश्यकता है ? आवश्यकता क्या है, भगवान् के गुणों मे ऐसा सौन्दर्य माधुर्य है, कि वे इच्छा न रहने पर भी, हठात् उनकी ओर आकर्षित हो जाते हैं।

उत्सुकता ने मेरे उत्साह को अधिकाधिक बढाया है। आप यदि इस प्रकार उत्सुकता प्रकट न करें, तो मैं कथा कह ही नहीं सकता। कथा वाचक में स्वयं तब तक कहने की शक्ति नही आती जब तक कि श्रोता उसे उत्साह प्रदान न करें। कथा में प्रधानता वक्ता की नहीं होती, श्रोता की ही होती है। यज्ञ में यजमान ही उत्सव का मूल कारण है। आचार्य, ब्रह्मा, होता अध्वर्यु आदि तो उसी में बनाने से बनते है। पूजा में प्रधानता देवता की न होकर पुजारी की ही है, क्योकि उसी के आह्वान से तो देवता आते हैं। उसी की पूजा से पूजित और सन्तुष्ट होकर तो वरदान देने को विवश हो जाते है। आपका प्रेम अकथनीय है। आप अपने आप ही मेरे हृदय में प्रेरणा करके कथा कहला रहे हैं। हाँ, तो अब मैं आगे की कथा कहता हूँ। आप सब सावधान होकर श्रवण करें।

नारदजी चले गये। व्यासजी सोचने लगे—"अब क्या करना चाहिये। ब्रह्म नदी भगवती सरस्वती के पश्चिम तट पर जो केलों के वृक्षों से सुशोभित, उनका शम्याप्रास नाम का आश्रम था, उसी में बैठकर अपने मन को एकाग्र करने लगे। क्योंकि बिना मन के एकाग्र किये, किसी भी विषय का बोध नहीं होता। आपकी आँखें भले ही खुली हुई क्यों न हों, जब तक मन का उनके साथ संयोग न होगा, वे रूप देखने में समर्थ न होंगी। आँखें स्वयं रूप को नहीं देख सकतीं। मन के ही वे खोलने के द्वार हैं। मन ही मन से झाँककर देखता है। सभी इन्द्रियाँ दास-दासी है। मन सबका स्वामी है। दास-दासियों की स्वयं कोई पृथक् सत्ता नहीं। वे तो स्वामी की आज्ञा को पालन करने वाले होते हैं।

व्यासजी पहले स्वस्थ होकर—सुन्दर बालवाले पहाड़ी
चर्म के ऊपर ऊनी वस्त्र बिछा कर—सुखासन से बैठे। उन्
सरस्वती के पवित्र जल से विधिवत् तीन आचमन कि
आचमन करके और चित्त की इधर-उधर बिखरी हुई वृत्ति
को समेट कर, भक्ति-योग के द्वारा अपने मन को भगव
मे लगाया। ध्यान में उन्होंने भगवान् का साक्षात्
किया। इस समय उन्हें लीलाधारी भगवान् की आवश्यक
थी, वे मायापति प्रभु के चारु-चरितों का प्रत्यक्ष द
करना चाहते थे। अतः उन्होंने समाधि में पुराण पुरुष पर
श्वर के साथ उनकी अचिन्त्य माया का भी साक्षात्कार किय
जिसका फैलाया हुआ यह सब पसारा है। हम इस माया
पसारे को देखते हैं, किन्तु इसके भीतर छिपे मायापति
अभिज्ञ ही रहते है। वे सदा हमारी आँखों से ओझल ब
रहते हैं। लज्जावती नववधू के समान वे सदा अपने चन्द्रमु
को माया के घूँघट से ढ़के रहते हैं। अत्यन्त निकटतम सम्बन
रखने वाले व्यक्ति के सम्मुख ही वे अपना परदा हटाते हैं
जीवों को इस बहुरूपिणी माया ने ही ठग लिया है, इसके चक्क
में पड़ कर सर्व समर्थ विभु इसके गुणों से हीन होत
हुआ भी, अपने को उसी के, तीनों गुणो के अधीन मा
बैठा है। कैसी विडम्बना है, कैसा मोहक इसका रूप है? जीव
अपनी सत्ता को भूल कर इसी के सम्मुख आत्म समर्पण करके
अपने को दीन, दुखी, पराधीन मानकर सदा इधर से उधर
भटकता रहता है। जब बिना बात अपने को फँसा हुआ
मानता है, जब अकर्ता होकर भी अपने को कर्ता मान बैठता है,
तब तो उसके दुःखों का भी भागी बनना ही पड़ेगा। वास्तव में
यह भ्रम है। धातुओं मे दोष न होते हुए भी मानसिक रोग

है जब तक इसकी चिकित्सा न की जायगी, तब तक यह रोग जाने का नहीं। इसीलिये इस भ्रम-रोग को मिटाने वाली एक औषधि है, भगवत् भक्ति। तुम माया को छोड़ कर मायापति की शरण ले लो। चोर को न मार कर चोर की माता को मार दो, कि चोर फिर पैदा हो ही नहीं। सेवक की शरण न जाकर स्वामी की जाओ। स्वामी से स्नेह हो गया, तो सेवक तो स्वतः ही अपना आज्ञाकारी बन जायगा। यह रहस्य की बात है। जिन्होंने इस रहस्य को समझ लिया है, वे माया के मोह को छोड़कर मन मोहन से मोह करते हैं। फिर माया तो मन मोहन की दासी है। वह फिर अपनी चटक-मटक नहीं दिखाती, फिर लजाती हुई भाग जाती है। जो इस रहस्य से अभिज्ञ हैं उन्हें ही समझाने के लिये, उन्ही के कल्याण को लक्ष्य करके भगवान् व्यास ने इस भागवती वार्ता का प्राकट्य किया। इसे जिसने जान लिया, इस सात्ववती संहिता को जिसने श्रद्धा सहित सुन लिया और सुन कर हृदय पटल पर अङ्कित कर लिया, वह माया के पर्दे को फाड़ कर परमानन्द के समीप पहुँच गया। फिर उसे शोक मोह नहीं होता। जरा-मरण के चक्कर में भी वह नही फँसता। फिर तो वह भक्ति रूपी आनन्द के सागर में पड़ा-पड़ा अमृत पान करता रहता है और परम सुख का सदा अनुभव करता रहता है। इन्हीं सब बातों को सोच समझ कर, व्यासजी ने इस महान् ग्रन्थ की रचना की। बनाने के पश्चात् फिर इसका संशोधन निरीक्षण भी किया। तब इसे श्रीशुक को पढ़ाया।

अब आपका प्रश्न है, कि शुकदेव तो परम ज्ञानी थे, महान् विरक्त थे, लँगोटी भी नहीं लगाते थे, दिगम्बर ही फिरते रहते थे, आश्रम पर भी नही आते थे, वनों में सदा उन्मत्त

पागलों की भाँति ही घूमते रहते थे, भूख लगने पर भाग्यशालिनी गृहस्थियों के घर से भिक्षा ले आते थे। ऐसे वि.. परमहंस ने इस इतनी बड़ी पोथी को पढ़ा कैसे ? सो शौनकजी इसमें कुछ आश्चर्य की बात नहीं। न शुक का दोष, न ज्ञान वैराग्य की कमी। यह सब तो इस ग्रन्थ की सरसता का ही दोष है। इसमें कोई ऐसा मधुर, मादक, चित्त को स्वतः ही खीचने वाला अद्वितीय रस भरा है, कि कैसा भी विरक्त क्यों न हो, उसका मन खिंच ही जाता है। आप सब कुछ त्याग सकते हैं, सबसे दूर भाग सकते है, किन्तु जहाँ कान के द्वारा हृदय में यह रस पहुँचा, कि हृदय फिर खील-खील होकर बिखर जाता है। चिकनी मिट्टी की तरह पानी पड़ते ही आर्द्र हो जाता है। जैसे चुम्बक लोहे को खींच लेता है, वैसे ही इसकी सरसता हृदय को खींच लेती है। श्रीशुक भी ऐसे ही फँस गये। व्यासजी ने श्रीकृष्ण गुनो वाला जाल बनाकर, रूप माधुरी वाली वंशी बजाकर, इन्हें जङ्गलों से फँसा लिया, फिर नित्य मधुर श्लोक रूपी आहार देकर, इन्हें परिपुष्ट बना दिया। जब ये उस अद्भुत आहार को पाकर परिपुष्ट और सबल बन गये तब इन्हें स्वतन्त्र करके छोड़ दिया। फिर ये अपनी मनोहर मूर्ति से ससार को सुखी बनाते हुए स्वच्छन्द गति से घूमने लगे।"

शौनकजी ने पूछा—"महाभाग ! व्यासजी ने ज्ञानी शुक को कैसे फँसाया ? इस कथा को आप हमें विस्तार के साथ सुनाइये। इतने से हमारी तृप्ति नहीं हुई।'

ऋषियों की इस बात को सुनकर सूतजी कहने लगे—"मुनियो पैदा होते ही मेरे गुरुदेव भगवान् श्रीशुक इन संसारी सभी सम्बन्धों को बन्धन मानकर वन के लिये भाग गये। उन्होंने

अपने पिता की भी बात नहीं मानी। पिता समझते थे, मेरा पुत्र महान् ज्ञानी है। इसे मोह ममता से मैं अपने पास नहीं बुला सकता। यह यदि वश में आ सकता है, तो श्रीकृष्ण रसायन के लोभ से ही आ सकता है। हरि गुणगान सुनकर ही इसका हृदय द्रवीभूत हो सकता है। इसीलिये श्रीमद्भागवत की रचना करके उसके अति मधुर श्लोक उन्होंने अपने छात्रों को ताल स्वर सहित पढ़ा दिये। जब वे सस्वर उन्हें सीख गये, तब उन्हें आज्ञा दी—तुम वन में फल, मूल, कुशा, समिधा लेने जब भी जाया करो, तब ही इन्हें स्वर सहित गाया करो। शिष्यों ने ऐसा ही किया। यही श्रीकृष्ण गुन रूपी डोरी से बुना हुआ, शुक रूपी मृगशावक को फँसाने वाला; प्रेम रूपी जाल था। एक दिन शुक इसमें फँस गये। उनके कानों में भगवान की रूप माधुरी और दयालुता के गुणों वाला एक श्लोक सुनाई दिया। उसे सुनते ही वे पिता के पास दौड़े आये और उसे सिखाने के लिये आग्रह करने लगे। अपने कार्य की सफलता पर सत्यवती नन्दन हँसे और अपने सरल सुत से स्नेह सहित बोले—बेटा एक नहीं १८ हजार श्लोक मैंने ऐसे ही बनाये है और तुम्हीं उसके अधिकारी हो। तुमसे उत्तम पात्र इस संसार में दूसरा है ही नहीं। इसे पढ़ो, समझो, गाओ, स्वय सुखी होओ, और संसार को इसका सन्देश सुनाकर सुखी बनाओ। बेटा, तुम्हारा कल्याण हो आज मेरा श्रम सफल हुआ। आज मेरी साधना पूरी हुई। आज मैं कृत-कृत्य हुआ। आज नारदजी की आज्ञा का यथोचित पालन हुआ। आओ बेटा, पढ़ो, इतना कहकर उन्होंने सभी भागवत श्रीशुकजी को पढ़ा दी। उसे पढ़ कर ही उन्होंने गङ्गा किनारे राजा परीक्षित् को सुनाई।

सूतजी कहते है—"मुनियो ! यह मैंने श्रीशुक का वृतांत सुनाया अब आप और जो पूछना चाहते हों, वह मुझसे पूछें उसे मैं आपके सामने कहूँगा।"

छप्पय

बोले शौनक—"सूत ! सुनाओ शुक की शिक्षा।
वैरागी बनि फिरें, करें घर-घर तें भिक्षा॥
कैसे आके पढी संहिता सात्वत सबरी।
कैसे बांची कथा, मिटाओ शङ्का हमरी॥
बोले सूत—"सुने सरस, अति मधुमय भगवत चरित।
फँसे प्रेम के फन्द में, ज्यों मृग बीना स्वर सुनत॥

परीक्षित् के पूर्वज

[२६]

परीक्षितोऽथ राजर्षेर्जन्मकर्मविलापनम् ।
संस्थां च पांडुपुत्राणां वक्ष्ये कृष्णकथोदयम् ॥*

(श्री भा० १ स्क० ७ अ० १२ श्लो०)

छप्पय

भरत वंश में भूप, भये शन्तनु सुखदाता ।
विदुर, पांडु, धृतराष्ट्र, पौत्र तिनके विख्याता ॥
पाण्डव पाँचों पांडु तनय धृतराष्ट्र पुत्र शत ।
पाण्डव परम प्रसिद्ध, किन्तु कौरव अति निन्दित॥
राज्य हेतु भारत भयो, पाण्डु-पुत्र विजयी भये ।
भीम सुयोधन, जाँघ कूँ, तोरि छोरि निज घर गये ॥

ऋषियों के दो प्रश्नों का जब सूतजी ने उत्तर दे दिया, तो अब शौनकजी सूतजी से महाराज परीक्षित् के जन्म के सम्बन्ध का तीसरा परम पावन प्रश्न पूछते हैं, जिसमें श्रीकृष्ण की महान् भक्त—वत्सलता का वर्णन है। ऋषियों की ओर से

---

*सूतजी शौनकादि ऋषियों से कहते हैं—"मुनियो ! अब मैं आपके सम्मुख राजर्षि परीक्षित् के जन्म कर्म और मोक्ष की कथा को कहता हूँ। साथ ही पांडवों के महा प्रस्थान की कथा भी कहूँगा।

शौनक ने पूछा—'महाभाग,सूतजी!आपने हमें व्यास नारद सम्वाद सुनाया। श्रीशुक ने किस प्रकार भागवती संहिता को पढा, यह बात भी बताई। अब हम आपसे महाराज राजर्षि परीक्षित् के जन्म की कथा सुनना चाहते हैं। इस महाराज का जन्म किस वंश मे हुआ? श्रीकृष्ण की इनके ऊपर इतनी कृपा क्यों हुई? इन्हें ब्राह्मण का शाप क्यों हुआ? ये गङ्गा किनारे जाकर अन्न जल त्याग कर क्यो बैठे? श्रीशुक मुनि से इनकी भेट कहाँ और कैसे हो गई? श्रीशुक ने इन्हें कौन सी कथा कितने दिन मे सुनाई? किस प्रकार इन राजर्षि की मुक्ति हुई? इन कथाओं को सुनाइये, यदि इनकी गणना भागवती कथाओं में होती हो तो। यदि इनमें श्रीकृष्ण-कथा का सम्पुट हो तभी ये श्रवणीय हैं। हम तो श्रीकृष्ण-कथा रूपी रस के रसिक हैं।"

ऋषियों के प्रश्न को सुनकर सूतजी बोले—"परम आदरणीय मुनियो! आपके प्रश्न श्रीकृष्ण कथाश्रित ही है। इन सब कथाओं की गणना भागवती कथाओं में ही की जाती है, क्योंकि आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र ही इन सब कथाओं मे ओतप्रोत है। जैसे सूत्र के बिना माला का अस्तित्व नहीं, वैसे ही श्रीकृष्ण के बिना इन कथाओं का कोई मूल्य नहीं। अब मैं राजर्षि परीक्षित् के जन्म की कथा उनके लोक प्रसिद्ध कर्मों की कथा कहता हूँ। आप सब समाहित चित्त से श्रवण करें।

आप पूछेंगे कि इन लड़ाई झगड़े की बातों को क्यों करते है?सो मुनियों! इन्ही के आश्रय से तो श्रीकृष्ण ने अनेकों कमनीय क्रीड़ायें की हैं। इनमें श्रीकृष्ण-कथाओं का उद्गम है।"

चन्द्रवंश में दुष्यन्त के वीर्य से और तापस-कन्या शकुन्तला के गर्भ से महान् प्रतापशाली महाराज भरत का जन्म हुआ। ऋषियो ! इस समय आप अपनी उत्सुकता को रोकें। मैं इन सब चन्द्रवंशी, सूर्य्यवशी प्रसिद्ध-प्रसिद्ध राजाओं के चरित्र प्रसङ्गानुसार आगे कहूँगा। इस समय तो केवल महाराज परीक्षित् के पूर्वज होने के नाते, इनका नामोल्लेख मात्र ही देता हूँ।

हाँ, तो ये महाराज बड़े प्रतापशाली हुए। गङ्गा यमुना के मध्य में इन्होंने सैकड़ों बड़े-बड़े अश्वमेध प्रभृति यज्ञ किये। दशों दिशाओं में इनका प्रवल पराक्रम प्रसिद्ध था। इन्हीं के नाम से इनका वंश भरतवंश कहलाया। इसी भरत वंश में एक महाराज हस्ती हुए, जिन्होंने हस्तिनापुर नगर को गङ्गा के दक्षिण तट पर बसाया। इसी हस्तिनापुर में भरतवंश के महाराज प्रतीप हुए। वे राजर्षि इतने सुन्दर थे, कि स्वयं भगवती गङ्गा ने साकार स्वरूप धारण करके, इनसे पाणि-ग्रहण की याचना की। महाराज ने श्रीगङ्गाजी को अपने पुत्र शन्तनु की पत्नी बनाना स्वीकार किया। भगवती भागीरथी ने इस प्रतिज्ञा के सहित शन्तनु की पत्नी बनना स्वीकार किया कि वे मेरे किसी कार्य में हस्तक्षेप न करें। जिस दिन वे मेरे काम में हस्तक्षेप करेंगे। उसी समय मैं अन्तर्धान हो जाऊँगी। महाराज शन्तनु ने इसे स्वीकार किया और गङ्गाजी के साथ उनका विवाह हो गया। कुछ शाप से शापित हुए देवता गङ्गाजी के गर्भ से उत्पन्न हुए। गङ्गाजी उन्हें उत्पन्न होते ही अपने जल में फेंक देतीं और वे शाप मुक्त होकर स्वर्ग चले जाते। महाराज शन्तनु को इससे बड़ा क्लेश होता। वे दैव के रहस्य को तो समझते नहीं थे। इस प्रकार गङ्गाजी ने सात पुत्रों को फेंक दिया।

आठवाँ पुत्र जब हुआ, तो राजा को बड़ा दुःख हुआ और वे बोले—'देवि ! तुम कौन हो, जो ऐसा नृशंस और क्रूर कार्य करती हो ? मेरे वंश को नष्ट ही कर दोगी क्या ?"

बस, इतना कहना था, कि गङ्गाजी हँसीं और मन ही मन सोचने लगी—इसी के जन्म के लिये तो मैं आई। मेरा कार्य समाप्त हो गया। वे राजा से बोली—'राजन् ! हमारी आपकी प्रतिज्ञा भङ्ग हुई, मैं चली।' इतना कहकर गङ्गाजी वहीं अन्तर्धान हो गई और अपने जल रूप में विलीन हो गईं।

उन गङ्गा के पुत्र गांगेय का नाम देवव्रत हुआ। वे बड़े पराक्रमी शूरवीर और सर्वगुण सम्पन्न थे। एक दिन महाराज शन्तनु मृगया के निमित्त गङ्गा किनारे गये। वहाँ उन्होंने आभा से दशों दिशाओं को आलोकित करने वाली परम रूपवती, दाशराज की कन्या, सत्यवती को देखा। उसका रूप लावण्य संसार में अप्रतिम था। उसके अङ्ग से दिव्य गन्ध निकल रही थी। राजा उसके रूप पर मोहित हुए और उन्होंने उसके पिता से अपने लिये उसकी याचना की। निषादराज इस प्रस्ताव को सुन कर परम प्रसन्न हुआ। उसने कहा—'राजन् ! यह भी एक राजर्षि के वीर्य से उत्पन्न कुलीन बालिका है। मैं तो इसका पोषक पिता हूँ। इसका विवाह तो मुझे करना ही है और आप से योग्य वर संसार में मिलेगा कहाँ? किन्तु मैं चाहता यह हूँ, कि इसके गर्भ से जो बालक हो, वही आपके राज्य का उत्तराधिकारी बने।'

राजा उदास हुए। वे अपने सर्वगुण सम्पन्न, आज्ञाकारी, युवा पुत्र गांगेय को जो ज्येष्ठ-श्रेष्ठ होने से राज्य के सर्वथा

अधिकारी थे, उन्हें छोड कर दूसरी छोटी पत्नी के पुत्र को राज्याधिकारी कैसे बना सकते थे? वे निराश होकर लौट आये। मन्त्रियों से अपने पिता की इच्छा समझ कर, गांगेय गङ्गातट पर निषादराज के समीप गये। उन्होंने जाकर उससे कहा—"तुम जैसे कहते हो वैसा ही होगा। मेरे पिता के साथ इन देवी का विवाह कर दो।"

देवव्रत के पराक्रम से भयभीत, किन्तु लोभी निषाद बोला—'आप तो धर्मात्मा हैं। आप अपनी तो प्रतिज्ञा पूरी करेंगे ही, किन्तु आप के पुत्रों ने मेरी पुत्री के पुत्रों से राज्य छीन लिया तब क्या होगा?'

अपने पिता की प्रसन्नता के लिये देवव्रत ने भीष्म प्रतिज्ञा की—'अच्छी बात है, मैं विवाह ही न करूँगा, जिसके

तुम्हें कोई शङ्का ही न हो।' उनकी इस भीषण प्रतिज्ञा स्वर्गीय देवताओं ने पुष्प वृष्टि की। शन्तनु का सत्यवती विवाह हो गया। उसके गर्भ से चित्राङ्गद तथा विचित्रवीर्य पुत्र हुए। चित्राङ्गद अविवाहित ही चित्राङ्गद नामक गन्धर्व हाथ से मारे गये। विचित्रवीर्य का विवाह काशीराज की तथा अम्बालिका नामक दो पुत्रियो के साथ हो गया। उन अधिक आशक्त रहने के कारण, वे भी अल्प आयु में ही राज रो से पीड़ित होकर निःसन्तान ही चल बसे। भरतवंश का मूलच्छे दन न हो, अतः सत्यवती ने अपने कालीन पुत्र भगवान् व्यास बुलाकर, उनकी पत्नियों से—आपद्धर्म से—सन्तान उत्पन्न करवाई बड़ी रानी के एक अन्धा पुत्र हुआ, जिसका नाम धृतराष्ट्र हु जन्मान्ध होने से—बड़े होने पर भी—वे राज्य के अधिकारी समझे गये छोटी से परम प्रतापी महाराज पांडु हुए। दासी परम नीतिज्ञ विदुर जी का जन्म हुआ। पांडु का विवाह कु और माद्री के साथ हुआ। एक मृग रूपी ऋषि के शाप महाराज पांडु सन्तान उत्पन्न करने में असमर्थ हुए। त्रिकाल ऋषि दुर्वासा ने यही समझकर और कुन्ती के गुणों से सन होकर, उन्हें देवताओं को बुलाने की विद्या प्रदान की। वंश की रक्षा के लिये अपने पति की आज्ञा पाकर कुन्ती ने धर्म, वायु और इन्द्र से युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन—ये तीन पुत्र उत्पन्न कराये तथा माद्री से अश्विनीकुमारों के द्वारा नकुल और सहदेव का जन्म हुआ। धृतराष्ट्र का विवाह गँधार देश के राजा की पुत्री गांधारी के साथ हुआ, जिससे व्यासदेव की कृपा से सौ पुत्र हुए, जो कौरव कहाये।

भरतवंश की गद्दी पर पांडु ही बैठे। उन्हें ही न्यायतः राज सिंहासन मिला, किन्तु वे बड़े मृगया प्रेमी थे। अतः राज्य

का भार अपने बड़े अन्धे भाई धृतराष्ट्र को सौंप कर वे गन्धमादन पर्वत पर (पांडुकेश्वर के समीप) लोकपाल के वनों में विहार करते हुए वही रहने लगे। वहीं वन में पाँचों पांडवों का जन्म हुआ। वही महाराज पांडु स्वर्गगामी हुए। तब तक पांडवों का पैतृक राज्य कौरवों के अधिकार मे आ चुका था। पाडव अभी तक अनाथ बच्चे थे। धृतराष्ट्र ने उनका पुत्रवत् पालन तो किया, किन्तु उनकी अधिक ममता अपने पुत्रो पर ही थी। दुर्योधन स्वभाव से ही क्रूर था। नियमानुसार अन्धे का पुत्र होने से और अवस्था मे भी युधिष्ठिर से छोटा होने से, वह राज्य का अधिकारी नहीं था। किन्तु पिता के अन्धे होने के कारण, राज्य पर उसी ने अधिकार जमा रखा था। पांडवों से वह आरम्भ से ही द्वेष रखता था। और उन्हें मार डालने की भाँति-भाँति के प्रयत्न करता रहता था, किन्तु पांडवों के रक्षक तो श्रीकृष्ण थे।

राजा शन्तनु एक बार मृगया को गये, तो इन्हें सरकण्डे के वन में एक लड़का, एक लड़की--ये दो सद्यःजात बालक पड़े मिले। चिह्नों से ब्राह्मण वंश के ये हैं, यह समझ कर कृपावश वे उन्हें उठा लाये। बच्चे का नाम कृप और बच्ची का नाम कृपी रखा। ये ही कृप आगे चल के पांडवों के आचार्य कृपाचार्य हुए। बच्ची कृपी का विवाह गौतम पुत्र, धनुर्विद्या विशारद, श्रीद्रोणाचार्य से हुआ, जिसके गर्भ से अश्वत्थामा नाम का, एक परम पराक्रमी, शूरवीर पुत्र हुआ। भाग्यवश दारिद्रय के दुःख से दुखी होकर तथा अपने बालसखा द्रुपद से अपमानित होकर द्रोणाचार्यजी भी हस्तिनापुर आ गये और कौरव पांडवों को धनुर्विद्या सिखाने लगे।

दुर्योधन की इच्छा पांडवों को राज्य देने की नहीं थी। वह

उन्हें मार डालना चाहता था। इससे उन्हें वारणावत में भे कर,लाख का घर बनाकर, जला डालने का उसने प्रयत्न किया विदुर की बुद्धिमानी से पाण्डव कुन्ती सहित निकल भागे औ भिक्षा पर निर्वाह करते हुए जंगलों में भटक्ते रहे। उसी समः द्रौपदी के साथ पाँचो पांडवो का विवाह हुआ। सबके समझा पर धृतराष्ट्र ने आधा राज्य पाण्डवों को दे दिया और वे इन्द्र प्रस्थ में अपनी राजधानी बनाकर रहने लगे। प्रसंगवः अर्जुन द्वारका गये। वहाँ उनका विवाह श्रीकृष्ण भगवा की बहिन सुभद्रा के साथ हुआ। उसी के गर्भ से अभिमन्यु क जन्म हुआ। दुर्योधन के षड्यन्त्र से शकुनी आदि धूर्त जुआ डियो के साथ धर्मराज युधिष्ठिर का जुआ हुआ। छल कौरवों ने उनका सर्वस्व जीतकर,उन्हें चौदह वर्ष के लिये वनवास दे दिया और एक वर्ष का अज्ञातवास। पाण्डवों ने बारह वर्ष वनों में बिताकर, अज्ञातवास का समय राजा विराट् के यहाँ बिताया। वही पर महाराज की लड़की उत्तरा का विवाह अर्जुन नन्दन अभिमन्यु के साथ हुआ। उन्हीं उत्तरा के गर्भ से अभिमन्यु सुत महाराज परीक्षित् का जन्म हुआ। जब ये गर्भ में ही थे, तभी अश्वत्थामा ने ब्रह्मास्त्र छोड़ कर इन्हें माता के पेट में ही मार डालना चाहा था, किन्तु श्रीकृष्ण ने माता के गर्भ में घुसकर इनकी रक्षा की। गर्भ में ही इन्हें भगवान् के दर्शन हुए और ये बार बार उन्हें देखकर परीक्षा करने लगे कि ये कौन है इसीसे इनका नाम परीक्षित् हुआ।

इस कथा को सुनकर शौनकादि ऋषियों ने पूछा—"सूतजी! अश्वत्थामा तो ब्राह्मण थे, धर्मात्मा थे। उन्होंने गर्भ-हत्या जैसा क्रूर कार्य क्यों किया? और फिर ब्रह्मास्त्र से दग्ध हुए बालक को भी भगवान् ने गर्भ में ही कैसे बचाया? इस

ृत्तान्त को आप विस्तार से कहें। यह तो बड़े ही आश्चर्य की बात है, तब तो महाराज परीक्षित् बड़े ही भगवत् कृपापात्र हैं, जिन्हें गर्भ में ही भगवत् साक्षात्कार हुआ। स्वयं श्रीकृष्ण ने गर्भ में घुस कर उनकी रक्षा की। यह तो परीक्षित्-कथा न होकर श्रीकृष्ण-कृपा-कथा ही कही जा सकती है।"

सूतजी ने कहा—"मुनियो! भाग्य सब करा लेता है। जिस समय जैसा कार्य होना है, उस समय वैसी ही बुद्धि बन जाती है। जब अज्ञातवास की प्रतिज्ञा पूरी करने पर भी पापी दुर्योधन ने पाण्डवों का पैतृक राज्य उन्हें नहीं लौटाया तो दोनों में बड़ा घोर युद्ध हुआ। कौरवों की सेना अधिक थी, उनके पास समर सम्बन्धी सामान भी विपुल मात्रा में था, उनकी ओर बली पराक्रमी शूर-वीर भी अधिक थे। पाण्डवों की ओर सेना भी कम थी, सामान भी सामान्य ही था। भीष्म, द्रोण, कर्ण के समान पराक्रमी वीर भी नहीं थे, किन्तु एक ही बात उनकी ओर अधिक थी, जिससे पाण्डवों की विजय हुई। उनके मन्त्री, सेवक, सारथी, स्वामी और सर्वस्व श्रीकृष्ण स्वयं ही थे। "जाके रथ पर केशो, ताको कौन ग्रन्देशो।"

कौरवों के त्रैलोक्य विजयी भीष्म, द्रोण, कर्ण और कृप—ये सभी सेनापति क्रमशः एक के पश्चात् एक मारे गये। उनकी सम्पूर्ण सेना भी नष्ट हो गई। सेना और सेनापतियों के मारे जाने पर दुर्योधन रणक्षेत्र से भाग खड़ा हुआ और अपनी मन्त्र शक्ति से जल को स्तम्भित करके, एक बड़े तालाब में जाकर छिप गया।

जब पाण्डवों ने देखा, कि जिसके पीछे इतना युद्ध हुआ, वह अभी तक जीवित ही है, जिस काँटे के कारण सम्पूर्ण

पैर सूज गया, वह काँटा अभी शरीर से बाहर नहीं हुआ, त
वे दुर्योधन को खोजने चले। दूत और चारों की सहायता
यह निश्चय हो गया, कि दुर्योधन इसी सरोवर में छिपा है
तब तो पाण्डव उसे अनेक कठोर-कठोर बातें कह कर युद्ध
लिए ललकारने लगे।

अपने को परम शूर-वीर योद्धा समझने वाला अम
और अभिमानी दुर्योधन, ये सब बातें सुन कर सरोवर से बाह
निकला। पाण्डवों ने उसे द्वन्द युद्ध के लिये ललकारा। उस
भीम के साथ गदा युद्ध करना स्वीकार किया। दोनों ही को
में भर कर एक दूसरे को जीतने की इच्छा से अपनी-अपनी ग
लेकर रणाङ्गण में उतर आये। दोनों का यह रोमांचका
परम-भीषण युद्ध था। दोनों ही बली थे। दोनों ही एक दूस
को नष्ट करने पर उतारू थे।

उस युद्ध को देखने को आकाश मण्डल में देवताओं
असंख्यों विमान खड़े थे। दोनो में ही हजार-हजार हाथिय
का बल था। दोनों ही बलदेवजी के शिष्य थे। वे परस्प
मे दो मतवाले हाथियों के समान भिड़ गये। उन्मत्त द
साँड़ जैसे अपने सीगो से लड़ते हैं, वैसे ही वे दोनो गदाओं
से एक दूसरे पर प्रहार करने लगे। दो सिंह जैसे युद्ध मे
उछल कर परस्पर प्रहार करते हैं,वैसे ही वे दोनो लड़े दोनों का
बल समान था, बल में भीम चाहे अधिक भले ही हों किन्तु युद्ध
कौशल में दुर्योधन बढ़ चढ़ कर था। उसने बलदेवजी की श्रद्धा
सहित सेवा करके गदा विद्या प्राप्त की थी।

धर्मयुद्ध में भीमसेन उसे कभी नही हरा सकते थे। गदायुद्ध के
नियम के विरुद्ध भीमसेन ने उसकी दोनों जंघाओं को तोड़ दिया।

ादा-युद्ध में कटि से नीचे प्रहार करना निषेध है, किन्तु श्रीकृष्ण का जिस कार्य में संकेत हो, वह विधि निषेध से परे हो जाता है। दुर्योधन घायल होकर गिर पड़ा। भीम ने क्रोध में भर कर उसके सिर पर पैर रख दिये और भाँति-भाँति से अपमानित करके, विजय के डंका बजाते हुए, उसे उसी दशा में वहीं छोड़कर, सब अपने-अपने शिविरों की ओर चले गये।

हाय! यह क्षत्रिय धर्म कितना क्रूर है। भाई भाई को पशु की तरह मार डालता है। पैतृक मोह ममता को त्याग कर ये कैसा नृशंस व्यवहार करते हैं। एक दूसरे के रक्त के प्यासे बन जाते हैं। विधि की कैसी विडम्बना है? धर्म की कैसी सूक्ष्म गति है। कल तक जो संसार में सम्राट करके सम्मानित था, ११ अक्षोहिणी सेना का स्वामी था। हजारों लाखों मुर्धाभिषिक्त महाराजा जिसका कार्य भृत्य के समान करते थे, आज वही अपने भाई भीम के द्वारा अर्ध मृतकावस्था में पड़ा-पड़ा विलाप कर रहा है। कल तक जिसकी सेवा में लाखों दास दासी उपस्थित थे, आज उसे कोई पानी देने वाला भी नही है। पांडव उसे घायल करके वहीं असहाय छोड़कर चले गये। इससे तो अच्छा था, उसे जान से मार देते। अब वह न मरा है, न जीवित। दोनों जाँघों के टूट जाने से वह उठ नहीं सकता। बिना जल के जैसे मछली तड़फड़ाती है, उसी तरह वह जांघों की पीड़ा से तड़प रहा था। गला सूख गया था, कोई पानी देने वाला भी पास नहीं था। पांडवों ने इतना भी नहीं किया, कि उसकी रक्षा का कुछ प्रबन्ध कर जाते। पाप का परिणाम तो भोगना ही पड़ता है।

उस समय दुर्योधन की दशा अत्यन्त दयनीय थी। युद्ध के मृतक वीरों के रक्त मांस के लोभी, कंक, गृद्ध, सियार चारों

ओर दौड़ रहे थे। दुर्योधन को भी वे मृतक शव ही समझते। कभी कोई गीध आता और टूटी जाँघ से मांस नोच कर भाग जाता, कभी कोई सियार आता। हजारों लाखों गिद्ध, कौए सियार, गीदड़ वहाँ दौड़ रहे थे। बड़े-बड़े, लाल-लाल चोंच वाले गीधों ने उसे घेर रखा था, किन्तु गदा घुमा-घुमा कर उनसे अपनी रक्षा कर रहा था, किन्तु गदा कब तक घुमाता, एक तो युद्ध से थका था, दूसरे दोनों जंघाओं से निरन्तर रक्त के स्रोत वह कर, पृथ्वी को रक्त-रंजित बना रहे थे। उनमें पीड़ा भी असह्य होती थी। जब घुमाते-घुमाते थक जाता, तभी कुछ गृद्ध आकर उसके जीवित शरीर से मांस नोंच ले जाते और भाग जाते। जाँघों के टूट जाने से वह उनका पीछा भी नहीं कर सकता था।

दुर्योधन ने बड़े करुण स्वर में पुकारा—'हाय! आज मेरी यह दशा हो गई। मेरी सेना में यदि कोई बचा हो, तो वह आकर मेरी यह दशा देखे। कोई मेरी यह बात सुनता हो, तो मेरे सैनिक सेवकों से जाकर यह सब समाचार कह दे।

इधर उधर वन में घूमने वाले सेवकों ने यह बात जाकर दुर्योधन के सैनिकों से कही। उसकी सेना में द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा ये तीन प्रधान बच गये थे। कुछ सेना भी शेष थी। जब सबने यह समाचार सुना, तो कृपाचार्य को आगे करके सब दुर्योधन के समीप गये। उसकी ऐसी दशा देख कर सभी रो पड़े। सभी दुर्योधन के लिये विलाप करने लगे।

मनुष्य कितना आशावादी है। सचमुच मनुष्य आशा के ही सहारे जीता है। यदि जीवन में आशा सहचरी न हो, तो कोई एक क्षण भी जीवित न रहे। कोई किसी आशा से, कोई

किसी आशा से, अपने को बचाये हुए हैं। संसार का अस्तित्व आशा के ही ऊपर अवलम्बित है।

जिन परशुराम ने एक बार नही,दो बार नही,इक्कीस बार समस्त पृथ्वी को निःक्षत्रिय बना दिया, सहस्रार्जुन जैसे हजार हजार हाथ वाले महान् पराक्रमी वीर की बाहुओं को जिन्होंने गूलर के फलों की तरह--फरसे से काट-काट कर फेंक दिया, उन्हीं परशुराम को युद्ध में परास्त करने वाले भीष्म मर गये। परशुराम के सभी अस्त्रों को धारण करने वाले, विश्वविख्यात, धनुर्विद्या के मूर्तिमान रूप, द्रोण चल बसे। प्रबल पराक्रमी कर्ण मृत्यु के मुख में विलीन हो गये। शूर—वीरों में शिरोमणि शल्य समर में मरकर स्वर्गगामी हुए, स्वय दुर्योधन भी गदायुद्ध में परास्त होकर मृतप्राय बना हुआ है। कङ्क, गृह जीवित अवस्था में ही जिसके माँस को उसकी आँखों के सामने—नोचे ले जा रहे हैं, पक्षियों तक से जो अपनी रक्षा करने में असमर्थ है, इतने पर भी अभी उसे विजय की आशा बनी हुई है। आशे तुम सबको जीवन धारण कराने वाली हो। देवि!तुम्हारे ही पीछे जग में व्यापार है। 'जब तक स्वाँसा, तब तक आशा—यह लोकोक्ति सत्य है।

अपने पक्ष के वीरों के आने पर उनसे दुर्योधन ने मन्त्रणा की। उसने फिर युद्ध करना स्थिर किया। शल्य के मरने के पश्चात् अश्वत्थामा को उसने उसी दशा से सेनापति बनाया। आचार्य कृपा ने उसी कङ्क, गृद्धों से भरे स्थान में अश्वत्थामा को सेनापति पद पर अभिषेक किया। अश्वत्थामा अपने पिता को छल से मार देने के कारण पांडवों पर अत्यन्त ही कुपित था। उसने दुर्योधन के सामने पाण्डवों के वंश का मूलोच्छेदन करने

की प्रतिज्ञा की और वह पाप बुद्धि रखकर पाण्डवों के नाश के लिये उद्यत हुआ।

छप्पय

जंघा टूटी युगल सुयोधन अति दुख पायो।
कङ्क काक अरु गृद्ध नोंचि वृण-मज्जा खायो॥
अश्वत्थामा सुनत शीघ्र शोकाकुल धायो।
दुर्योधन की दशा देखि नयननि जल छायो॥
द्रोण तनय नायक किये, साँसा तक आशा रहत।
जैसे जल डूबत तृणहिँ, पकरि पार पावन चहत॥

अश्वत्थामा द्वारा पांडवों के पाँचों पुत्रों की मृत्यु

(२७)

भर्तुः प्रियं द्रौणिरितिस्म पश्यन्,
कृष्णासुतानां स्वपतां शिरांसि।
उपाहरद् विप्रियमेव तस्य तज्
जुगुप्सितं कर्म विगर्हयन्ति ॥*
(श्रीभा० १ स्क० ७ अ० १४ श्लोक)

छप्पय

अश्वत्थामा चल्या पाप मति मन महँ आई।
पितृ मृत्यु करि यादि धर्म गति दई भुलाई॥
पाण्डव कुल को बीज नाश कैसे हू होवे।
प्रति हिंसा महँ धर्म, सत्य सब ही नर खोवे॥
द्रुपद सुता के सुत सभी, सोवत सुख तें शिविर में।
तुरत तीक्ष्ण तरवारि तें, सिर काटे निशि तिमिर में॥

प्रतिहिंसा में मनुष्य अपना सब विवेक खो बैठता है। जिसने हमारे विरुद्ध व्योहार किया है या हमारा कोई अप-

* द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा ने यह सोचा, कि जैसे भी हो अपने स्वामी का हित ही करना चाहिये। यही सब सोचकर उसने शिविर मे

कार किया है, उससे वदला लेने की वासना जब हृदय बलवती हो उठती है, तब फिर हृदय में क्रूरता आ जाती है क्रूरता बड़ी निर्दया होती है। वह आते ही धर्म से कहती है- अब इस स्थान को तुम खाली करो; यहाँ तो मैं रहूँगी। सी सादे सरल चित् धर्म, स्त्री से लड़ाई झगड़ा करना उचित समझ कर वहाँ से चले जाते हैं और क्रूरता वहाँ पर पैर फै कर बैठ जाती है। पुरुष उसके वश में हो जाता है, फिर उस लिये उचित अनुचित का भेद नहीं रह जाता। मेरे विपक्षी जिस प्रकार भी नाश हो, वही उचित है। ऐसी उसकी दृढ़ धार हो जाती है।

जब कौरव-पांडव युद्ध मे कौरवों की हार हो गई अ पांडवो की विजय हुई, तब पांडवों की ओर तो धृष्टद्युम्न शिखण्डी तथा और भी बहुत से शूरवीर तथा सैनिक शेष र गये थे, किन्तु कौरवों की ओर कृपाचार्य, कृतवर्मा और अश्व त्थामा ये तीन ही बाकी थे। जब दुर्योधन की अनुमति कृपाचार्य ने इतने पर भी अश्वत्थामा को सेनापति बना क पांडवों के नाश के लिये भेजा तो उत्साह में भरकर महावी अश्वत्थामा अपने दोनों साथियों के साथ पांडव—शिविर व ओर चला। रात्रि हो आई थी, वे जाकर एक घने वटवृक्ष नीचे बैठे। उस समय अश्वत्थामा ने क्या देखा, कि सोते हु कौओ को एक उलूक मार-मार कर नीचे फेंक रहा है अश्वत्थामा के हृदय में तो प्रतिहिंसा की वह्नि क्रूरता आक

सोये हुए द्रौपदी के पाँचों पुत्रों के सिर काट लिये। जब उसने यह समाचा दुर्योधन को सुनाया, तो उसने इसके इस कार्य की प्रशंसा नहीं की क्योंकि निन्दित कार्य की सर्वत्र ही निन्दा होती है।

बैठ गई थी। उसने भी यही निश्चय किया, कि मैं भी पांडव पक्ष के बचे हुए वीरों का इसी—प्रकार सोते हुए ही—संहार करूँगा। उसने अपना यह अभिप्राय कृपाचार्य और कृतवर्मा के प्रति प्रकट किया। उन्होने धर्म का मर्म बताकर बहुत प्रकार से उसे समझाया और ऐसा कार्य करने की सम्मति न दी, किन्तु उसके हृदय में तो प्रति हिंसा की ज्वाला जल रही थी। उसने किसी की एक न सुनी और वह अकेला ही अपने रथ पर चढ़ कर पांडवों के शिविर की ओर चल दिया।

जब उन दोनों ने देखा, यह मानने का नही,इसने यह क्रूर कर्म करने का निश्चय ही कर लिया है,तब हम भी इसका साथ दें। कैसा भी हो, राजा ने इसे सेनापति के पद पर प्रतिष्ठित किया है। इसकी उचित अनुचित सभी आज्ञाओं का पालन हमें करना ही चाहिये, यह सोचकर कृतवर्मा और कृपाचार्य भी उसके पीछे पीछे चले।

अश्वत्थामा ने देखा, पांडवपक्षीय सभी वीर विजय के उल्लास में निश्चिन्त हुए गाढ़ निद्रा में सुखपूर्वक सो रहे हैं। तब उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। किन्तु उसने देखा शूलपाणि शिव शिविर के द्वार पर उपस्थित हुए, उन सब की रक्षा कर रहे हैं सर्वान्तिर्यामी श्रीकृष्ण से तो कुछ छिपा ही नही था, वे सब जानते थे। इसीलिये उस दिन पाँचों पाँडवों को वहाँ से लेकर कहीं दूर चले गये थे। अश्वत्थामा ने स्तुति करके आशुतोष को प्रसन्न किया और वरदान में भीतर जाने की आज्ञा माँगी। भोलानाथ ही तो ठहरे, कह दिया—'अच्छी बात है, चले जाओ।' बस, फिर क्या था अश्वत्थामा ने सभी सोये हुए सैनिकों, सेनापतियों और बड़े-बड़े वीरों का पशुओं की

भाँति संहार करना आरम्भ किया। महाराज द्रुपद के पुत्रों को बुरी तरह—पशुओं की भाँति—मारकर उसने अपने पिता की

मृत्यु का बदला चुकाया। सोते हुए पांडवों के पाँचों पुत्रों के सिर काटकर, और सबको मार कर, वह शिविर से बाहर निकला। उसे पांडव पक्षीय बचे हुए समस्त वीरों के वध से बड़ी भारी

प्रसन्नता हुई। यह सुखद समाचार आकर उसने कृतवर्मा और अपने मामा कृपाचार्य को सुनाया। अपने विपक्षियों के नाश से सभी प्रसन्न होकर मरणासन्न दुर्योधन के समीप गये। वह लम्बी-लम्बी अन्तिम साँसे ले रहा था। मुख से रक्त वमन कर रहा था। गिद्ध, चील, कौए, सियार उसे उसी तरह घेरे हुए बैठे थे, जैसे आचार्य को घेर कर शिष्य बैठे हों अथवा राजा को घेरकर प्रजा बैठी हो, या दाता, को घेर कर अभ्यागत बैठे हों, या वर को घेरकर बराती बैठे हों, या शल्यकर्म करने को रोगी को घेरकर चीड़-फाड़ करने वाले चिकित्सक और परिचारक बैठे हों। इन तीनों ने जाकर यह कर्ण प्रिय समाचार दुर्योधन को सुनाया।

पांडवों के सर्वनाश से उसे प्रसन्नता तो हुई, किन्तु छोटे-छोटे निरीह सोते बच्चों की मृत्यु का उसने अनुमोदन नही किया। पाण्डवों के कुल का नाश होने से उसे मानसिक पीड़ा ही हुई। उसने सोचा—मेरे कुल में तो अब कोई नाम लेवा पानी देवा रहा नहीं। यदि ये लड़के जीवित रहते, तो हम लोगों को तिलांजलि तो दे देते, श्राद्ध तर्पण तो करते, किन्तु भावी को कौन मिटा सकता है। दुर्योधन ने बड़े कष्ट से अपने प्राणों को त्याग दिया। कौरवों का वंश नष्ट हो गया, उनके वंश में कोई शेष नही रहा। पाण्डवों के द्रौपदी द्वारा उत्पन्न हुए ये पाँच ही पुत्र थे, इनको भी अश्वत्थामा ने मार डाला। अब पांडवों का भी वंश परिक्षीण हो रहा था। केवल एक नन्हीं सी आशा थी। अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु को जो अभी बालक ही थे, जिन्हें कौरवों के पाँच सेनापतियों ने घेरकर अन्याय से मार डाला था, उसकी बहू उत्तरा के पेट में कुछ दिनों का गर्भ था। जब इतने बड़े-बड़े बात की बात में मर गये,

तो उस तनिक से मांस पिंड से—जो अभी भली भाँति पुरुषाकार में बना भी नहीं—उससे क्या वंश का नाम चलेगा ? किन्तु आशा, हाय ! आशा देवी ने ही सबके शोक को दबा रखा। सभी की दृष्टि उसी बुद्बुद से बने मांस पिंडकी ओर लगी रही।

प्रातःकाल पाण्डव लौटे। पुत्र शोकातुरा द्रौपदी ने अपने भाइयों और पुत्रों की भयङ्कर—हृदय हिला देने वाली—मृत्यु रो-रोकर अपने पाँचों पतियों को सुनाई। पुत्र शोक से वह अधीर हो रही थी। अश्रु उसके रुकते नहीं थे। वह बार बार पछाड़ खाकर गिर पड़ती और फिर बड़े जोर से चिल्लाती—हा ! मेरे लाल ! हा मेरे भाइयो ! उसके वे पाँच पुत्र ही सहारे थे, उसकी दो आँखों के वे ही पाँच तारे थे, उन्ही पर उसकी सम्पूर्ण आशायें लिपटी थीं, उन्हीं के लिये वह जीवित थी। उन्हीं की श्री वृद्धि के लिये इतना युद्ध किया, उन्ही के लिये वह सदा चिन्तित रही थी। वे भी मारे गये, समर में नहीं—सोते हुए वीरों की तरह नहीं—पशुओं की तरह, योद्धा के अस्त्र से नहीं, क्रूर पुरुष हत्यारे की हत्या से उनका प्राणान्त हुआ। रोते-रोते उसने आकाश को गुँजा दिया। उसके करुण विलाप को सुनकर आकाशचारी पक्षी भी उड़ने से रुक गये और वे भी उसके दुःख में दुःखी होकर रोने लगे। उसे सान्त्वना देते हुए किरीट माली महाधनुर्धर—श्रीकृष्ण ही जिनके रथ को हाँकने वाले हैं वे—अर्जुन अपनी प्रिया पांचाली से बोले—"प्रिये ! तुम इतना शोक मत करो। जिसने तुम्हारे पुत्रों का सिर काटा है, उसके सिर को मैं अभी लाकर तुम्हें दूँगा। मेरे गांडीव धनुष से छूटे हुए बाण उसके सिर को उसी प्रकार धड़ से अलग कर देंगे, जैसे फेंका हुआ पत्थर पके फल को पेड़ से पृथक कर देता है। देवि ! तुम्हारे सम्पूर्ण शरीर में

ोक व्याप्त हो गया है। तुम्हारी नस-नस में दुःख लिपट गया । तुम अभी अपने पुत्रों की मृत्यु का अन्तिम स्नान मत करो। म इसी प्रकार शोक को शरीर मे लिपटाये बैठी रहो। मैं क्षण र में ही लौट आता हूँ। तुम्हारे सुतों के संहार करने वाले शत्रु ा सिर लाकर तुम्हें दूँगा। उसी पर बैठकर तुम शोक स्नान रना। इससे तुम्हारे शरीर का सभी शोक घुल जायगा। तुम स आततायी बाल-हत्या करने वाले निर्दयी के सिर पर अपने रीर का धोया जल डालकर, उसे नरक से बचा लोगी।"

इस प्रकार भांति-भांति से अपनी प्रिय पत्नी द्रौपदी को ान्त्वना देकर कपिध्वज अर्जुन ने अपने मित्र, सखा, मन्त्री ौर सारथि श्रीकृष्ण से कहा—"वासुदेव! मेरा रथ तैयार ीजिये। आज मैं द्रौपदी का प्रिय कार्य करूँगा। शिखण्डी ने ैसे आचार्य द्रोण का सिर काट लिया था, उसी प्रकार मैं उनके ्रूरकर्मा निर्दयी सुत के सिर को भी काटकर,अपनी प्राणप्रिया के ोक सन्ताप को दूर करूँगा।"

ऐसा सेवक बड़े सुकृतों से,बड़े भाग्य से,पूर्वजन्म के उत्कृष्ट ुण्यों से, नहीं नहीं भगवत् कृपा से प्राप्त होता है, जो सुनते ही ्वामी की सभी आज्ञाओं का यथावत् पालन करदे। वासुदेव ागवान् तो ऐसे ही सेवक हैं। अपने भक्तों के पीछे-पीछे फिरा रते हैं, कि उन्हें कभी कोई कष्ट न हो। उनकी पदधूलि व्यर्थ ी उड़ न जाय, उससे मेरा शरीर पावन बन जाय, अर्जुन के हते ही उन्होंने सुन्दर रथ लाकर खड़ा कर दिया और बोले— 'कुन्तीनन्दन! तुम्हारा रथ तैयार है। देर करने का अब काम हीं। तुरन्त उठो और अपनी प्रतिज्ञा को पूरी करो।"

अपने सच्चे सारथि के सामयिक सारगर्भित वचन सुनक गांडीवधारी अर्जुन ने अपना दिव्य कवच पहना और अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित होकर, रथ में आकर बैठ गये। वासुदेव ने तीव्र के प्रहार से घोड़ों को हांक दिया। रथ चल पड़ा और वह वायु से बातें करने लगा। आगे चलते ही अर्जुन ने जाते हुए अश्वत्थामा को देखा। अपने पीछे गांडीवधारी अर्जुन को आते देख, अश्वत्थामा की सभी सिटिल्ली भूल गई वह स्थिर न रह सका कि अब करूँ तो क्या करूँ। सर्वेश्वर हैं सारथि, जिसके ऐसे पार्थ के सम्मुख युद्ध करने का साहस उं नहीं हुआ। अतः वह प्राण लेकर शीघ्रता के सहित भागा अर्जुन ने भी उसका इसी प्रकार पीछा किया जैसे की श्रीशङ्क ने सूर्य का पीछा किया था।

ऋषियों ने पूछा—"महाभाग शिवजी ने सूर्य का पीछा क्य किया? इस कथा को भी प्रसङ्गवश हमें सुना कर त आगे बढ़ें।"

सूतजी बोले—"मुनियो! यह कथा बड़ी विचित्र है अत्यन्त संक्षेप में उसे आपके सम्मुख मैं सुनाता हूँ। विद्युन्माल नाम का एक दैत्य था। उसने एकान्त में जाकर शिवज की दत्तचित्त होकर बहुत दिनों तक आराधना की। उसक कठिन तपस्या से प्रसन्न होकर, शिवजी ने उसे एक दिव्य विमान दिया। वह सूर्य के समान चलता था, बड़ा ही सुन्द वेगवाला और प्रभा से परिपूर्ण था। उस पर चढ़ कर वह दैत्य रात्रि में घूमता था। जहाँ भी वह जाता, दिन की तरह प्रका हो जाता। उस मन्दमति ने सूर्य भगवान् से प्रतिस्पर्धा करली सूर्यदेव को यह बहुत बुरा लगा। उन्होंने अपनी तीक्ष्ण किर

से विद्युन्माली के विमान को भस्म कर डाला। अब वह दैत्य बहुत क्रुद्ध हुआ, किन्तु क्रुद्ध होकर कर ही क्या सकता था। बहुत तीन पाँच करता, तो उसको भी वही दशा होती,जो उसके विमान की हुई है। इसलिये सूर्यदेव से सीधा विरोध न करके, वह अपने वरदाता भगवान् शङ्कर के समीप जाकर रोया। सब समाचार बताते हुए उसने निवेदन किया—"भगवान्! विमान को नष्ट हो जाने का मुझे उतना दुःख नही है, जितना दुःख कि आपके अपमान करने का है। मेरा तो उसमें क्या था, उसमें शक्ति तेज आपका था, आपके ही प्रभाव से मैं निर्भय होकर घूमता था। सूर्यदेव ने उसे नष्ट करके आपका तिरस्कार किया है। आपके तेज की अवहेलना की है। आपको उसने कुछ न समझकर युद्ध के लिये ललकारा है। मेरी गति तो आप ही हैं। आप तक ही मेरी पहुँच है।"

भोलानाथ उस दैत्य की बातों मे आ गये और सूर्य भगवान् के पीछे दौड़े। अपने पीछे त्रिशूल लिये शिवजी को देखकर जैसे सूर्य भगवान् भागे थे, वैसे ही अश्वत्थामा अपने पीछे अर्जुन को आते देख कर भागे।

मुनियो! सूर्य और शिवजी की तो बड़ी कथा है। सार यही हुआ, सूर्यदेव ने फिर काशी में आकर शिवजी की ही शरण ली, तब शिवजी ने उन्हे क्षमा कर दिया। काशी में जहाँ सूर्यदेव ने शरण ली। वह लोलार्क कुण्ड के नाम से अब भी परम पावन तीर्थ प्रसिद्ध है।

हाँ तो अर्जुन ने भी अश्वत्थामा का पीछा किया और शीघ्र ही उसे पकड़ लेने का प्रयत्न किया, किन्तु अश्वत्थामा ने अपने रथ को वायु वेग के समान दौड़ाया उसे अपने प्राणों

की पड़ी थी, किसी प्रकार वह साक्षात् मृत्यु रूप अर्जुन के से बचना चाहता था, किन्तु जिस रथ के सारथि श्रीकृष्ण उस रथ से आगे कोई रथ जा ही कैसे सकता है। अश्व के घोड़े थक गये। सारथि रथ को आगे बढ़ाने में विवश गया, तब अश्वत्थामा घबड़ाया। उसने सोचा—अब तो प्राण गये।

मरता क्या न करता, उसने अपना एकमात्र सहारा ब्रह्मा को ही समझा। यद्यपि वह ब्रह्मास्त्र का उपसंहार—लौटाना जानता था। सिखाते समय आचार्य ने कह भी दिया था—इसका प्रयोग मनुष्यों पर न करना, यह तुम्हारी, विद्या अधूरी है किन्तु उसे तो अपने को बचाना था। ब्रह्मास्त्र अव्यर्थ होता है उसका प्रहार अमोघ होता है। कोई भी अस्त्र उसे हटा न सकता। जिसको लक्ष्य करके छोड़ा जाय, उसके बिना प्रा लिये वह लौट नही सकता। अब तो अर्जुन घबड़ाये। उन्होंने ब्रह्मा के सम्मुख अपने को निर्बल पाया। निर्बल के बल राम—यह सोचकर वे अपने सारथि श्रीकृष्ण की शरण में गये।

दशों दिशाओं को अपने प्रचण्ड प्रकाश से प्रकाशित करत हुआ वह असह्य अस्त्र, अर्जुन की ही ओर आ रहा था। अपनी ही ओर आते देख कर अर्जुन अत्यन्त ही आर्त हो अचिन्त्य शक्ति वाले अच्युत की स्तुति करने लगा। उसने भय भीत होकर कहा—"हे प्रभो! हे अचिन्त्य शक्तिवाले श्रीकृष्ण हे महाभाग! आप भक्तवत्सल हैं, करुणासागर हैं, प्रस पारिजात हैं। आप इस संसार रूपी दावानलसे दग्ध हुए प्राणिय के एक मात्र आश्रय हैं। जलती हुई ज्वाला से बचाकर अ मुक्ति मार्ग को दिखाने वाले हैं। आप प्रकृति से परे, माया से

स्वामी, मोक्ष के दाता. दुखियों के त्राता, मोक्ष के स्वामी है। फिर भी आप धर्म रक्षक हैं, कर्मों के नियामक है। पृथ्वी का भार उतारने के लिये आप अवनि पर अवतरित होते है, अधर्म का नाश करते है, धर्म की रक्षा करते है। इतना सब होने पर भी आपके अवतार का प्रयोजन भूभार हरण मात्र ही नहीं है। वह तो उपलक्षण मात्र है। आपके अवतार का प्रयोजन तो भक्तों का भय हरना हो है। मैं आपका भक्त हूँ—आपमे अनुरक्त हूँ मेरे ऊपर विपत्ति आ रही है। उससे आपके अतिरिक्त। मुझे कौन बचा सकता है। कौन इस असह्य दुर्द्धर्ष तेज से मेरी रक्षा कर सकता है ? यह प्रलयानल के समान उठती हुई अग्नि की लपटें—जो मेरी ही ओर आ रही हैं क्या है ?"

भगवान् ने अपने भक्त को सान्त्वना देते हुए कहा—"पाण्डु नन्दन ! तुम घबड़ा गये क्या ? अरे तुम नहीं जानते यह क्या है ?"

शीघ्रता से अर्जुन ने कहा—"नहीं महाराज ! मैं नही जानता। यह तीनों लोकों को भस्म करने वाली प्रलय की अग्नि ही प्रतीत होती है। प्रलय का समय न होने पर भी यह कैसे प्रकट हुई ?"

भगवान हँसे और बोले—"पार्थ ? यह प्रलयाग्नि नही है, इसे तुम अश्वत्थामा का ब्रह्मास्त्र जानो।"

व्यग्रता के स्वर में अर्जुन ने कहा—"एक ही बात हुई, ब्रह्मास्त्र भी प्रलयानल से क्या कम है ? इसका भी कोई प्रतीकार नहीं, यह भी अमोघ है। बिना प्राण लिये लौटेगा नहीं।"

भगवान ने कहा—"हाँ, इसका एक प्रतीकार है। तुम भी ब्रह्मास्त्र छोड़ दो।"

अर्जुन ने कहा—"महाराज ! यह तो बड़ी गडबडी जायगी। एक ही तेज असह्य है। एक ही तीनों लोकों भस्म करने में समर्थ है, फिर दो मिलकर तो चराचर को कर देंगे। निरपराध निरीह प्राणी व्यर्थ ही मारे जायँगे।"

भगवान् ने कहा– देखो, तुम ब्रह्मास्त्र को छोड़ो, दो अस्त्र आपस में टकरायेंगे। तब तुम दोनो को इसी तरफ खें लेना जिस तरह कुएँ में पड़े लोहे के डोल को रस्सी में बँ हुआ काँटा फँसा लेता है और फिर दोनों के साथ खींच बाहर आ जाता है।'

अर्जुन ने कहा—"यदि वही दोनों को खींच ले तो भगवान् हँस कर बोले—"यही तो उसमें तुम्हारे अपे कमी है। उसकी विद्या अधूरी है। वह अस्त्र का उपसहार न जानता। तुम्हारी विद्या पूरी है। तुम सब अस्त्रों के ज्ञाता सभी अस्त्रों का उपसंहार—छोड़ना लौटाना—सब जान हो। अब देरी का काम नहीं है। नहीं तो यह तुम्हारे प्रा को नष्ट करके संसार को नष्ट कर देगा।"

भगवान् की आज्ञा पाकर अर्जुन ने ऐसा ही किया उसने भी विधिवत् आचमन करके, शीघ्रता के साथ भगवा वासुदेव की परिक्रमा की और मन्त्र सहित ब्रह्मास्त्र को रोकने सकल्प से, ब्रह्मास्त्र का ही प्रयोग किया। विष की औषधि वि ही बताई है। अर्जुन के अस्त्र से अश्वत्थामा का अस्त्र टकराय दोनों अस्त्रों के टकराने से बड़ी-बड़ी अग्नि की चिनगारिय निकलने लगी। उन दोनों का तेज ऐसे ही बढ़ने लग मानो प्रलय की अग्नि बढ़ रही हो, या जगत का नाश कर के लिये सूर्य अपनी तीक्ष्ण किरणों से समस्त चराचर जग

को भस्म करने के लिये तप रहा हो। आकाश पाताल और पृथ्वी पर सर्वत्र हाहाकार मच गया। विमान में घूमने वाले देवता घबड़ाये। सबने समझा संसार को स्वाहा करने के निमित्त संवर्ताग्नि की ज्वालायें उठ रही है। असमय मे ही प्रलय होने वाली है। ऋषि मुनियों ने जगत् की मङ्गल कामना के निमित्त जलती हुई अग्नि में हवन किया। मङ्गल स्तोत्रों का पाठ किया। जगत् का कल्याण हो! चराचर संसार सुखी हो! वे बार-बार यही कहने लगे।

तीनों लोकों को दुखी देखकर भगवान् वासुदेव अर्जुन से बोले—"हे वीर! अब तुम दोनों अस्त्रों का उपसहार कर लो नहीं तो यह सम्पूर्ण संसार इनकी ज्वालाओ से स्वाहा हो जायेगा।"

भगवान् की आज्ञा पाकर अर्जुन ने दोनों अस्त्रों का अपने मन्त्र बल से उपसंहार कर लिया। दोनों सौम्य रूप से अर्जुन के समीप लौटकर आये। ससार में शांति का साम्राज्य छा गया। सभी जीव सुखी हुए। देवताओं ने अर्जुन के ऊपर पुष्प वृष्टि की, गन्धर्व गाने लगे और अप्सरायें आनन्द के साथ नृत्य करने लगी।

अपने अस्त्र को व्यर्थ हुआ देखकर इधर अश्वत्थामा घबड़ाया। अब वह किंकर्तव्य विमूढ़ हो गया। वही एक उसके पास अन्तिम अवलम्ब था। वह भी उनकी रक्षा न कर सका। तब तो वह मुठ्ठी बाँधकर दौड़ा। अर्जुन ने कहा—"वासुदेव! मेरा रथ खड़ा कर दीजिये।" भगवान् ने वैसा ही किया। अर्जुन अत्यन्त ही शीघ्र रथ से कूद पड़े। जैसे सिंह हाथी के ऊपर झपटता है, इसी प्रकार बड़े वेग से दौड़ कर उन्होने भागते हुए अश्वत्थामा को पकड़ लिया और क्रोध के साथ बोले—

"अर्जुन से भी तू बचकर जाना चाहता है क्या ? तू यदि पृथ्वी के भीतर छिप जाय, तो पृथ्वी फोड़ कर तुझे पकड़ सकता हूँ स्वर्ग में इन्द्रासन के नीचे भी छिप जाय तो वहाँ से तेरी चोटी पकड़ कर ला सकता हूँ। दुष्ट तू ने सोते हुए बच्चों को मारा और फिर मेरे सामने से ही तू प्राण बचा कर भागना चाहता है। अब अपने किये का फल भोग!" ऐसी अनेक बातें कह कर अर्जुन ने उसे पशुओं की तरह रस्सी से बाँध लिया और घसीट कर रथ के समीप ले आये। वहाँ आकर उन्होंने रथ के पीछे दृढ रस्सियों से उसे कस दिया। इस प्रकार उसे जीता ही बांधकर वे अपने शिविर की ओर चले।

छप्पय

तुत्र शोक तें दुखी द्रौपदी अति बिलखाई।
मूछित ह्वै कें गिरी पार्थ प्रिय कहि समझाई॥
त्यागहु चिन्ता शोक तीर ले तुरतहि जाऊँ।
जे काटे सुत शीश, काटि सिर ताको लाऊँ॥
केशव कूँ करि सारथी, छने शत्रु पीछो कियो।
ब्रह्म अस्त्र निज अस्त्र तें, काटि पकरि गुरुसुत लियो॥

अश्वत्थामा को प्राण दान

(२८)

तथाऽऽहृतं पशुवत् पाशबद्ध—
मवाङ् मुखं कर्मजुगुप्सितेन ।
निरीक्ष्य कृष्णापकृतं गुरोःसुतं—
वामस्वभावा कृपया ननाम च ॥*

(श्रीभा० १ स्क० ७ अ० ४२ श्लोक)

छप्पय

पशु समान दृढ़ बाँधि लाइ पत्नी कूँ दीन्हों ।
गुरु-सुत सम्मुख समुझि,चरन बन्दन उठि कीन्हों ॥
दया दृष्टि तें देखि, द्रौपदी बोली बानी ।
छोड़ो इनकूँ अबहि, दण्ड दें, होगी हानी ॥
कृष्णा कृष्ण कनिष्ट बड़, सबई को कहनो कर्यो ।
मूँड़ि बार बाहिर कर्यो, माथे को मुक्ता हर्यो ॥

प्रभु अपने आप ही तो अपने निज जनों को भक्ति योग प्रदान करते हैं। अपने आप ही उनके हृदय में सद्गुणों के रूप से बैठ कर पुण्याचरण कराते है और आप ही परोक्षा

---

* पशु के समान बाँध कर लाये हुये अश्वत्थामा को देखकर, जो अपने नीच कर्म के कारण लज्जा से नीचा मुख किये खड़ा है,देख द्रौपदी

लेते हैं। कैसी क्रीडा है, कैसा अद्भुत कुतूहल है? जैसे बालक दर्पण में अपनी चेष्टाओं को देखता है, अपने आप ही मुँह बनाता है आँखें मटकाता है, सैन चलाता है, फिर उन्हीं सबके प्रतिबिम्बों को देखकर हँसता है, सुखी होता है आनन्द में मग्न होकर नृत्य करने लगता है। यही दशा इन पार्थ सारथि की है।

अर्जुन ने जब अश्वत्थामा का सिर धड़ से अलग नहीं किया, किन्तु उसे जीवित ही बाँधकर शिविर की ओर ले चले, तो बनावटी आश्चर्य से अपने कमल समान नेत्रों को फाड़-फाड़ कर उसकी ओर देखते हुए बनावटी क्रोध के स्वर में वासुदेव बोले- "अरे अर्जुन! यह क्या? तुम तो इसे जीवित ही ले चल रहे हो! इसे मार क्यों नहीं डालते ?"

अर्जुन ने दीनता के साथ कहा—कैसा भी हो, प्रभो ? है तो ब्राह्मण ही। सब स्थानों पर क्षत्रियों का तेज काम देता है, किन्तु ब्राह्मण के सम्मुख आते ही वह कुण्ठित हो जाता है।

क्रोध से दाँत पीसते हुए देवकीनन्दन बोले—"अरे यह दुष्ट अब भी ब्राह्मण बना रहा ? इस नाम मात्र के निर्दयी, नीच ब्राह्मण को तुम बिना विचारे मार डालो। सोचो तो सही, इस नीच निर्लज्ज ने रात्रि के समय सोते हुए बालकों को निरपराध ही मार डाला है।"

अर्जुन ने दुःख के साथ कहा—"वासुदेव ? क्षत्रिय कर्म ऐसा ही क्रूर है। इस ब्रह्मबन्धु ने भी क्षत्रिय कर्म का ही अवलम्ब

दया से द्रवीभूत हो गई। यद्यपि वह महान् अपराधी था, फिर भी गुरु का पुत्र है, यह सोचकर द्रौपदी ने अपने नारी सुलभ कोमल स्वभाव के कारण उसे नमस्कार किया।

लिया है। क्षत्रिय धर्म में पग-पग पर हिंसा,क्रूरता और निर्दयता भरी है।"

भगवान् ने कहा—"भाई यह सत्य है, कि युद्ध में क्षत्रिय भाई-भाई का सिर काटता है। वहाँ दया नहीं दिखाता, किन्तु उसके भी कुछ नियम हैं। युद्ध में अस्त्र लेकर सामने आये अपने शत्रु का वध करना यद्यपि धर्म है, फिर भी धर्म के जानने वाले लोग—शत्रु होने पर भी—इतने लोगों को नहीं मारते हैं। एक जो किसी मादक आदि द्रव्यों के सेवन से या रोगादि से मतवाले हो गये हों अथवा जो असावधान हों। जिनका मस्तिष्क आदि बिगड़ गया हो ऐसे पागलों को, निद्रा में सोते हुए को, जो अभी बालक हो, अबला स्त्री हो, मूर्ख हो, अपनी शरण में आ गया हो, जिसका लड़ते-लड़ते युद्ध में रथ टूट गया और जो भयभीत होकर भाग रहा हो—इतने लोगों पर,शत्रु होने पर भी प्रहार करना पाप है। इस नीच ने तो एक नहीं,कई अपराध किये हैं। वे बेचारे बच्चे लड़े नहीं थे,अभी युद्ध कला में अनभिज्ञ थे। उनसे इसकी कोई शत्रुता भी नहीं थी,फिर वे अचेत सो रहे थे। इतने पाप करने वाला कोई भी हो, उसे मारने में कोई पाप नहीं।"

अर्जुन ने कहा—"हमारे बच्चे तो मारे ही गये। अब इसे मार कर ही क्या लाभ ? इसमें न हमारा ही कल्याण है, न इसी का।"

भगवान् बोले—"नहीं,इसे मार डालने में दोनों का कल्याण है और इसे छोड़ देने में दोनों का ही अनिष्ट है। यदि इसे अभी मार डालें, तो द्रौपदी प्रसन्न होगी; हम अपने बच्चों का बदला चुका लेंगे। शत्रु पक्ष का एक प्रबल योद्धा मारा

जायगा और यह भी नरक से बच जायगा। यदि इसे छोड़ दिया गया, तो यह क्रूर अपनी क्रूरता छोड़े। नहीं फिर कुछ अवश्य ही अनिष्ट करेगा। इससे सदा शङ्का ही रहेगी और यदि इसे इसके पाप का दण्ड न देकर ... दिया गया, तो अपने घोर पाप के कारण इसे नरक की भीष अग्नियों में तपना पड़ेगा। यों भी इसे मार देने से इस पाप का तुरन्त प्रायश्चित हो जायगा। अतः इसका वध उभ पक्ष के लिये श्रेयष्कर है।"

अर्जुन ने कहा—"अपने आप इसे अपने पाप का प मिलेगा। मैं ब्रह्महत्या जान बूझकर क्यो करूँ ?"

भगवान् बोले—"ब्रह्महत्या से अब डरता है और प्रति करके उसका पालन न करना यह कोई पाप ही नहीं! तुम हमारे सामने द्रौपदी से प्रतिज्ञा की थी कि तेरे पुत्रों के सि काटने वाले का सिर काट कर तुझे दूँगा, तू उस पर बैठक मृतक स्नान करना। सो, उस प्रतिज्ञा को पूरी करो। तुर इसे मार डालो। अब इसमें सोच-विचार करने को स्था नहीं है।"

अर्जुन ने कहा—"इसने अपने स्वामी दुर्योधन को प्रस करने के लिये ऐसा क्रूर कर्म किया होगा ?"

भगवान् आवेश के स्वर में बोले—"सो भी तो नहीं हुआ इससे दुर्योधन का कोन सा प्रिय कार्य हुआ ? इसके इ निन्दित कर्म से उसे भी तो प्रसन्नता नहीं हुई। इसने तो य निर्दयता पूर्ण कार्य अपनी क्रूर बुद्धि से व्यर्थ ही क डाला।"

जिसके समीप हम सदा रहते है, उनकी चेष्टा भावभंगी को हम समझने लगते है, कि इस बात को ये किसी स्वर में कह रहे हैं। अर्जुन ने भगवान् की मुखाकृति को देखकर, उनके आन्तरिक भावो को पढ़ा, पढकर उसने समझ लिया कि द्रोण और भीष्म के वध के समय जैसी आज्ञा थी, आन्तरिक प्रेरणा थी, वह अब नही है। यह क्रोध बनावटी है। इसमें मेरे धैर्य की परीक्षा का भाव है, कि पुत्रघाती—आततताई—"गुरुपुत्र के प्रति इसके मनमें कितना रोष है। इसी लिये बार-बार प्रेरित करने पर भी महा बुद्धिमान् अर्जुन ने अपने आचार्य द्रोण के इकलौते पुत्र को, मन से भी मार डालने का विचार नहीं किया। बात को टालते हुए वे गोविन्द से बोले—"अच्छी बात है जैसो आपकी आज्ञा होगी उसका पालन तो किया ही जायगा। इस समय तो इसे जीवित ही ले जाकर हमें द्रोपदी को दे देना है। वहाँ महाराज युधिष्ठिर भी उपस्थित होंगे, वे सम्राट् है। सब मिलकर इसके लिये जो दण्ड निश्चित करेंगे, वह दण्ड इसे दिया जायगा। अब तो आप शिविर की ही ओर मेरे रथ को ले चलें।

अपने शूरवीर रथी की आज्ञा पाकर—प्रेम के ही कारण जो सेवक और सारथि का स्वांग बनाये हुए हैं—उन वासुदेव ने वायु वेगवाले रथ को बडे ही वेग से हाँक दिया। पलक मारते-मारते वे अपने शिविर के समीप आ पहुँचे।

शिविर के सम्मुख रथ को खड़ा करके, अर्जुन ने रस्सियों से पीछे बिस्तरे की भाँति बँधे हुए अश्वत्थामा को खोला। जैसे मदारी रीछ बदरों को बाँधकर ले जाता है, वैसे ही उसके गले में रस्सी बाँधकर घसीटते हुए अर्जुन उसे शिविर में ले चले।

दूर से ही द्रौपदी ने देखा। द्रोण पुत्र अश्वत्थामा के अर्जुन पशु की तरह रस्सी से बाँध कर ला रहे हैं। पाप कर्म करने से जिसकी श्री नष्ट हो गई है, अपमान के कारण जिसका मुख मलिन हो गया है, जो लज्जा के कारण सिर के ऊपर नहीं उठाता है। ऐसी दशा में अपने गुरुपुत्र को देखक द्रौपदी रो पड़ी। हाय! ये मनुष्य कितने क्रूर होते हैं? मह में पधारने पर जिनकी मैं देवता के समान पूजा करती थ आज उन्हें इतने अपमान के साथ ये मेरे पति घसीट क ला रहे है। नारी सुलभ करुणा के कारण पांचाली के दो कपोल भीग गये। वह पुत्रों की मृत्यु को भूल गई। दौड़क उसके बँधे हुए अश्वत्थामा के सम्मुख घुटने टेक दिये। अप वस्त्रों को सम्हाल कर अचल को पसार कर उसने पृथ्वी सिर टेक कर अश्वत्थामा को प्रणाम किया। उसके दोनों कम नेत्रों से निरन्तर अश्रु बह रहे थे। गला भर आने के कारण व कुछ कह भी न सकी।

अर्जुन ने आते ही कहा—"देवि! लो, यही तुम्हारे सो हुए पाँचों पुत्रों की क्रूरता से हत्या करने वाला हत्यारा है। इ तुम जो भी कहो वही दण्ड दिया जाय।"

इतना सुनकर रोती हुई—दोनों हाथों को ऊपर उठा क उन्हे हिलाते हुए—द्रौपदी कहने लगी—"अरे इन्हें छोड़ दं छोड़ दो। राम राम कैसा क्रूर कर्म तुमने किया है? ब्राह्मण क इतना अपमान?"

अर्जुन ने दाँत पीसते हुए कहा—"अब यह ब्राह्मण न रहा। यह आततायी हत्यारा और क्रूरकर्मा है।

विलखते हुए द्रौपदी ने कहा—"कैसे भी हो—हम

नो ये देवता ही हैं। सदा से हमने इनके पैर पूजे हैं और सदा पूजते रहेंगे। इनकी करनी इनके साथ वे अपना धर्म छोड़ें तो छोड़ते रहें, हमें तो अपने धर्म पर ही अटल रहना चाहिये।"

अर्जुन बोले—"हमारे देवता तो द्रोणाचार्य थे, उन्हें भी हमने युद्ध में मार डाला, जो धर्म में स्थित थे, पूज्य थे, सेनापति थे। यह तो दुष्ट है, अधम है, धर्म से च्युत है।"

द्रौपदी अपने हाथ से अर्जुन के मुख को बन्द करती हुई बोली—"ना, ना, ऐसा मत कहो। इनमे और भगवान् द्रोण में अन्तर ही क्या है। अपनी आत्मा ही तो आत्मज होकर उत्पन्न होती है। पुत्र पिता की ही प्रतिमूर्ति है। उन्ही का दूसरा रूप है। [illegible] मे स्वयं ही उत्पन्न होता है। इसीलिये पत्नी को [illegible]। आप इन्हें भूल कर भी दूसरा न समझें। जिनसे आपने रहस्य सहित धनुर्वेद तथा समस्त अस्त्र-शस्त्र तथा उनका प्रयोग उपसंहार सीखा है, ये वे ही भगवान् द्रोण साक्षात् पुत्र रूप से, आपके सम्मुख उपस्थित हैं। आप इन्हें उन्ही का स्वरूप समझ कर पूजें।"

अर्जुन सूखी हँसी हँसकर बोले—"अब अब पुत्र शोक भूल गईं? पहिले रोते-रोते क्या कह रही थी? अब बड़ी क्षमावती बन गईं?

द्रौपदी ने बड़ी विनय से रिरियाते हुए कहा—"देखो, मेरी हँसी मत उड़ाओ। एक तो मैं स्वयं ही पुत्र शोक से दुखी हूँ, फिर ब्रह्मशाप से मुझे और दुखी क्यों बनाते हो? इन्हें मारने से अथवा इनका अपमान करने से, मेरे पुत्र जीवित तो हो नहीं

जायँगे। वे तो अपने कर्मानुसार मरे सो मारे गये। अब ए
नया पाप करके अपने सम्पूर्ण कुल को कलङ्कित क्यों करें? पु
पुरुषों की छाती तो वज्र की होती है। तुम्हें पता नहीं, पु
शोक से माताओ को कितना कष्ट होता है। उसे मैं ही भो
रही हूँ। इन्हें मारकर उन देवी गौतमी—द्रोण पत्नी—को
मेरी ही भाँति दुखी क्यों बनाते हो। अपने पति के परलो
गमन के अनन्तर वे पतिव्रता कभी भी जीवित नहीं रह सक
थी, किन्तु अपने इसी पुत्र का मुख देखकर वे किसी प्रक
प्राणों को धारण किये हुए है। अब इन्हे भी तुम मार दो
तो निश्चय ही वे अपने प्राणों का परित्याग कर देंगी। इ
प्रकार दो ब्रह्म हत्याओं का पाप हमारे सिर पर लगेगा।

"हे महाभाग! आप तो धर्म के मर्म को भली भाँति जान
और मानने वाले हैं। आप फिर ऐसा निन्दित कर्म करने
क्यों उतारू हो रहे है? आपका कुल बड़ा श्रेष्ठ है, सब
उसका गौरव है, फिर आप ब्रह्महत्या करके अपने कुल
कलङ्कित करना क्यों चाहते है? आपकी ये बातें शोभा न
देती। हमारे गुरु वंश के ये ही तो बाज हैं। वह हमारे
द्वारा नष्ट हो, यह तो अपने ही हाथों अपने पैरों मे कुल्हा
मारने के समान हुआ। ब्राह्मणों को दुख देकर किसने सु
पाया है। ब्रह्मद्रोही सदा से कुल सहित समूल नष्ट ही हो
देखे गये हैं। इसलिये आप कृपा करें। पाप से पाप की वृद्धि
करें। मुझ दुखिया को और अधिक दुखी न बनावें। ब्राह्म
की रक्षा करें, उनकी हत्या की बात मन मे भी न लावें।"

पास ही बैठे हुए भीमसेन सब बाते सुन रहे थे, उनसे अ
अधिक न सुना गया। द्रौपदी को डाटते हुए, लाल-लाल आँ

करके क्रोध के साथ बोले—"चल हट, आई कहीं की ! बड़ी दया दिखाने वाली। दुष्टों पर कहीं दया की जाती है ? क्रूर कर्मा कृपा के पात्र नहीं होते। नीचों पर क्षमा करने से उनका उत्साह और बढ़ता है। साँपों को दूध पिलाने से विष की ही वृद्धि होती है। नीचों को दण्ड देना ही उनके साथ कृपा करना है। खलों का नाश करना ही संसार का कल्याण करना है। हमारे नन्हें-नन्हें बच्चों को मार कर इस नीच ने कौन सी वीरता का कार्य किया ? उन दुधमुँहे बच्चों न इसका क्या बिगाड़ा था, उन्हें मारकर इसने कौन सा लाभ प्राप्त कर लिया ? दुर्योधन को ही इसे प्रसन्न करना था तो हमें मारता। हमारे मरने पर दुर्योधन प्रसन्न भी होता, हमसे ही उसकी शत्रुता थी। इन बच्चों के मरने से उसे भी तो हर्ष नहीं हुआ। इसलिये अर्जुन ! इसे बकने दो, तुम अभी इसका सिर काट कर इसके पाप का प्रायश्चित कर दो। जिस लोक को हमारे बच्चे गये हैं, उसी में इस दुष्ट को भी पहुँचा दो।"

द्रौपदी कुपित भीम की बातें सुनकर भयभीत हरिनी की भाँति अपने पति धर्मराज युधिष्ठिर की ओर देखने लगी। उसकी विवशता को अनुभव करके गम्भीर स्वर मे धर्मराज बोले—"यद्यपि इसने काम तो बुरा ही किया, फिर भी ब्राह्मण ब्राह्मण ही है। हमारी सम्मति में इसे मारना उचित नहीं। फिर भगवान् वासुदेव जैसा कहें।"

नकुल सहदेव ने भी धर्मराज की हाँ में हाँ मिलाई। पास में बैठी हुई पांडवों की और भी रानियाँ अश्वत्थामा की ऐसी दशा देखकर रोने लगी। उन्हें भी ब्राह्मण का वध प्रिय नहीं था। अब श्रीकृष्ण के मुख की ओर सबकी दृष्टि लगी थी।

श्रीकृष्ण जो चाहेंगे वही होगा। अश्वत्थामा के प्राण अब भगवान् की आज्ञा के अधीन हैं। अब तो भीम, अर्जुन युधिष्ठिर, नकुल सहदेव तथा अन्य रानियों के अभिप्राय को समझ कर, हँसते हुए वासुदेव अपने प्रिय सखा अर्जुन से बोले—"अर्जुन ! इसी समय तुम्हारी बुद्धि की परीक्षा है। देखो द्रौपदी जो कह रही है, यद्यपि वह नारी सुलभ कोमलता और दया के वशीभूत होकर कह रही है, फिर भी उसका वचन धर्म सम्मत है। ब्राह्मण सभी दशा में अवध्य बताया गया है उसका शारीरिक वध शास्त्रकारों ने वर्जित किया है। इसके विरुद्ध भीम जो बात कह रहा है, वह शास्त्र सम्मत ही है क्योंकि शास्त्रकारों ने अग्नि लगाने वाला, जहर देने वाला शस्त्र लेकर लड़ने को आने वाला, पर धन हरण करने वाला खेत तथा स्त्री छीनने वाला इन छः को आततायी बताया है आततायी यदि वेदज्ञ ब्राह्मण भी हो तो बिना विचार के मार डाले। इसने अपना ब्राह्मणत्व छोड़ दिया है। यह वध करने योग्य है। अब दोनों को ही तुम सन्तुष्ट कर सकते हो तो करो।"

अर्जुन तो भगवान् के बाह्य प्राण ही थे। उनके सभी अभिप्रायों को समझने की उनमें शक्ति थी अन्तर्यामी प्रभु स्वयं उनके हृदयों में बैठकर सब कार्य कराते थे। अर्जुन ने सोचा-शास्त्रों में दो प्रकार का वध बताया है, एक शस्त्र वध और दूसरा अशस्त्र वध। सम्मानित गुरुजन, राजा और स्त्री इन तीनों को अवध्य बताया है। सम्मुख शस्त्र लेकर युद्ध में आये हों उस दशा को छोड़ कर—शेष समय में—इनका वध न करे। बड़े लोगों का अपमान कर देना, ब्राह्मण का सर्वस्व छीन कर

माथा मूड़ कर, उसे देश से निकाल देना, पत्नी को शैया से पृथक् कर देना और राजा की आज्ञा को भङ्ग कर देना शास्त्रकारों ने इन तीनों के ये शस्त्र रहित वध ही बताये हैं। अतः इसका भी ऐसा ही बध कर दें। इससे द्रौपदी और धर्मराज की भी बात रह जायगी, भीम का भी कहना हो जायगा और भगवान् भी इससे सन्तुष्ट हो जायँगे। यह सोच कर उन्होंने तुरन्त अपनी तीक्ष्ण तलवार निकाल कर,

अश्वत्थामा के सिर पर जो जन्म से ही देदीप्यमान अमूल्य मणि थी, उसे बालों सहित निकाल लिया। मणि के निकलते ही उसका मुख मण्डल तेजहीन हो गया। इस प्रकार उसे तेज और मणि दोनों से हीन करके माथा मूड़कर, उसका बन्धन खोल दिया और धक्का देकर शिविर से निकालते हुए कहा— "जा भाग जा, अब यहाँ अपना मुँह मत दिखाना।"

इस प्रकार अपमानित होकर अश्वत्थामा शिविर से निकल तो गया, किन्तु उसके मन का मैल नहीं गया। वह यही चिन्ता करने लगा की पांडवों से किस प्रकार अपने इस घोर अपमान का बदला लूँ?

छप्पय

गुरु सुतविप्र विचारि पुत्र घाती नहिं मार्यो।
अति अपमानित भयो युद्ध करि सम्मुख हार्यो॥
मैल न मन को गयो हिये प्रतिहिंसा धारी।
पाण्डुवंश को नाश करूँ यह बात विचारी॥
घाव पुरैं गड़हा भरैं, नर अपमान न भूलहीं।
खल मन मोती दूध ये, फटिकें फिरि जुरते नहीं॥

सकते थे। उनकी शक्ति के सम्मुख धृतराष्ट्र के पुत्र तथा
पृथ्वीपति कर ही क्या सकते थे। किन्तु श्रीकृष्ण चाहते थे
पांडव युद्ध करके—अपने बल-पौरुष से—प्रतिष्ठा सहित
बनें। वे केवल इस सम्पूर्ण वसुन्धरा के एक छत्र शासक ही
होकर संसार मे पूजित और प्रतिष्ठित भी हों। वही हु
कौरवों को मार कर पांडवो ने विजय श्री के सहित यह व
कानन, सरिता, शैल आदि से सयुक्त सम्पूर्ण वसुन्धरा, अ
बाहुबल से प्राप्त की। कौरवों की पराजय तो तभी हो गई।
जब पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण और महावीर कर्ण एक-
करके मारे गये। किन्तु एक दिन शल्य के सेनापतित्व में
युद्ध हुआ। तब तो पूरी ही पराजय हो गई। दुर्योधन युद्ध
छोड़कर भाग खड़ा हुआ। जब भीम की गदा से वह
घायल हो गया, तो एक बार फिर उसने अश्वत्थामा को नाय
बनाकर, पांडवों के सर्वनाश का स्वप्न देखा। किन्तु 'जिस
रक्षक राम, उसको सभी करें परनाम'—वाली बात हुई
अश्वत्थामा ने सोते हुए सभी सैनिकों और वीरों का तो ना
कर दिया, किन्तु पाँचों पांडव फिर भी सकुशल बच गये। अ
दोनों सेनाओं के दस आदमी ही शेष रहे, कृपाचार्य, कृतव
और अश्वत्थामा—ये तीन तो कौरवों की ओर और पाँच
पांडव, युयुत्सु और जनार्दन भगवान् वासुदेव—ये सात पाडव
की ओर के। नहीं तो १८ अक्षौहिणी सेना से सम्पूर्ण प्राण
मृत्यु के सदन में सिधार गये।

जैसे विवाह कर बेटी को विदा करने पर बाप क

नाथ ! मेरे इस गर्भस्थ बालक की रक्षा आप कीजिये। यह किसी प्रका
इस ग्रस्त्र से नष्ट न होने पावे।'

निश्चिन्तता सहित शोक और व्याकुलता भी होती है, वैसी ही दशा पांडवों की भी हुई। मरे हुए अपने पाँचों पुत्रों के द्रौपदी को साथ लेकर सभी दाह संस्कार आदि कर्म किये। अब मरे हुए दोनों दल के वीरों की भी सुधि उन्हें ही लेनी पड़ी, क्योंकि दोनों वंशों में पानी देने वाला कोई रहा ही नहीं था। राजा होने के कारण, और अपने कुल में सर्वश्रेष्ठ होने के कारण, धर्मराज का ही कर्तव्य हो गया, कि सब का श्राद्ध तर्पण आदि पारलौकिक कर्म करें।

मङ्गल कार्यों में स्त्रियाँ पीछे-पीछे गाती हुई चलती हैं और मृतक कार्यों में वे रोती-रोती आगे चला करती हैं। धर्मराज ने अपने सभी बन्धु-बन्धवों की विधवा बहुओं को आगे किया, वे कुररी की तरह विलाप करती हुई पांडवों को कोसती जाती थी। उनकी करुण-ध्वनि से आकाशमण्डल भर गया। सबको एक साथ रोते देखकर, धर्मराज का हृदय भर आया। वे सोचने लगे—"हाय! हमने राज्य के लिये कैसा पाप किया! इन स्त्रियों की अन्तरात्मा हमें शाप दे रही होगी, कैसे हमारा कल्याण होगा?" यह सोचते-सोचते धर्मराज फूट-फूट कर रोने लगे। बहुत समझाने पर भी उनके आँसू न रुके।

भगवती भागीरथी जो अनादिकाल से मरे हुए जीवों को अपने में शरण देकर स्वर्ग पहुँचाती हैं उनको जल पहुँचा कर तृप्त करती हैं, उन जगत् की एक मात्र शरण्य माँ के तट पर आकर रोते-रोते धर्मराज ने सभी का नाम लेकर उन्हें जलाञ्जलि दी। सुरसरि का शीतल सलिल धर्मराज के उष्ण अश्रुओं से गरम हो गया था। जिसका माँ नाम लेकर

जल देते, उसे ही याद करके रो पड़ते समीप ही बैठे [illegible]
उन्हें भाँति-भाँति से समझा रहे थे, किन्तु उनका शोक कम
न होता था। सबको जल देकर उन्होंने पुनः प्रभु के
पद्मों के पराग से पावन हुए, पुण्यतोया भगवती भागीरथी
पापहारी जल में घुसकर नैमित्तिक स्नान किया।

महाराज युधिष्ठिर विलाप कर रहे थे। अंधे धृतराष्
अपनी भार्या गान्धारी के सहित—अपने सौ पुत्रों के ना
ले-लेकर करुण स्वर में रो रहे थे। द्रौपदी अपने बच्चों के लि
विलख रही थी। सब रानियाँ अपने अपने पतियों के नाम ले
लेकर छाती पीट रहीं थीं। सर्वत्र हाहाकार मचा था। रुद
की वेदनापूर्ण ध्वनि से दिशायें बिदिशायें गूँज रही थी। पशु
पक्षी भी पेड़ों पर बैठे रो रहे थे। प्रकृति भी रोती हुई सी
दिखाई देती थी। भगवती भागीरथी का जल भी मानों कल
कल निनाद के द्वारा उनके रुदन में अपना सहानुभूत सूचक
रुदन मिला रही थी। सब के रोने से गंगा के तट पर—वह
हस्तिनापुर के समीप ही—गंगासागर का दृश्य उपस्थित हो
गया था। लाखों अबलाओं, विधवाओं के शोकाश्रुओं से वह
मानों करुणा का सागर उमड़ कर गंगा में मिल रहा हो। उस
करुणापूर्ण दृश्य को देखकर श्रीकृष्ण ही व्यथित नहीं हुए थे,
नहीं तो सबके सब फूट-फूट कर रो रहे थे। सहानुभूति सूचित
करने के लिये बहुत से ऋषि मुनि—जो कौरवकुल के सदा से
हितैषी रहे, आ-आकर उस शोकसभा मे सम्मिलित हुए
थे। इस प्रकार सबको समान रूप से दुखी देखकर दयासागर
देवकीनन्दन धृतराष्ट्र और गान्धारी को लक्ष्य करके बोले,
क्योंकि वे ही वहाँ सबसे बड़े थे।

पुत्रों के लिये इस प्रकार शोक करना उचित नहीं है। आपने तो वृद्धोंकी सेवा की है, सज्जन पुरुषों का सत्संग किया है। आप स्वयं सर्व शास्त्रों के ज्ञाता हैं, काल की गति को भी जानते हैं, फिर आपको यह शोक शोभा नहीं देता। शोक उनके लिये करना चाहिए, जो संसार में बिना कुछ—इहलोक, परलोक का—कार्य किये हुए कीट-पतंगों की तरह जन्म लेकर मर गये हों। जिन्होंने यश, ऐश्वर्य, संसारी सुखों का भोग किया है, जिन्होने परमार्थ साधन के लिये पुण्य और शुभ कर्म किये है, जिन्होंने संसार से चित्त हटाकर एकमात्र सर्वेश्वर की ही शरण ले ली है, ऐसे लोगों के लिये सोच करना उचित नही। शोचनीय तो वे हैं, जिन्होने अपने लिये, बन्धु बान्धवों के लिये कुल-परिवार के लिये, देश-जाति के लिये, परोपकार के लिए या आत्मा के लिए कुछ न किया हो। तुम्हारे लड़के जब तक जिये सुख से जिये, महाराजाओं के महाराजा बन कर रहे। उन्होंने सभी संसारी सुखों का उपभोग किया। बड़े-बड़े यज्ञ किये, दान दिये, आश्रितों को सन्तुष्ट किया और अन्त में रण में सम्मुख युद्ध करते-करते मरकर स्वर्ग चले गये। जब तक जिये, पृथ्वी पर राजा बनकर सबके शासक रहे, मर कर इन्द्र के साथ बैठने के अधिकारी बने। उनके लिये आप क्यों इतना विलाप करते हैं।"

रोते-रोते धृतराष्ट्र ने कहा—"वासुदेव ! मैं उनकी मृत्यु के लिए नही रोता। सोचता हूँ—वह भी दिन था, कि इन बहुओं को आकाशचारी पक्षी भी नहीं देख पाते थे। आज एक यह भी दिन है, कि ये सिर के बाल खोले बिधवा बन कर अनाथिनी हुई बिलख रहीं हैं।"

भगवान् बोले—"यह तो काल की गति है, दुखः सुख

किस पर नही आते, बन्धु-बान्धवों का वियोग किसे नं
होता, जय पराजय का अनुभव किसे नहीं करना पड़ता ?
सब बातों के असंख्यों उदाहरण हैं। पूर्व के सभी र
को इन सब द्वन्द्वों का अनुभव करना पड़ा है। दूर कहाँ जा
मुझे ही देखिये। आप सब मेरा कितना आदर करते हैं।
ऋषि मुनि मुझे नारायण, पुरुषोत्तम, परब्रह्म, भगवान् न जा
क्या-क्या कहते है? मेरी ही दशा देखिये, मेरे जन्म के पू
ही मेरे पूर्वज भाइयों को हमारे मामा कंश ने—रण में नहीं
पैदा होते ही पशु की तरह मार डाला। हमारे माता-पिता क
कारागृह में बाँध कर डाल दिया। मेरे बचाने के लोभ से
मेरे पिता ने छिपकर मुझे अहीरों के गोष्ठ में पहुँचाया। वह
हम जंगली गोपों में गौओं को चराते हुए रहे। क्षत्री होकर
भी छिपकर रहे, फिर किसी तरह आकर अपने माता-पिता
का मुँह देखा। इतने मे ही जरासन्ध ने हमें तंग कर डाला।
एक दो बार नहीं अठारह बार उसने हम पर आक्रमण किया।
अन्त मे उसके बार-बार के दुःख देने से, हम अपनी पैतृक
भूमि को त्यागकर भाग खड़े हुए और जल से घिरे समुद्र के
बीच में आकर शरण ली। वहाँ भी जाति भाइयों मे नानाप्रकार
की कलह होने लगी। भाई ही परस्पर लड़ने लगे। बलराम जी
मुझसे बड़े हैं, फिर भी बहुत ही बातों मे मेरा उनका मतभेद ही
रहता है। इस युद्ध मे वे कहते थे—तुम तटस्थ रहो। मैं क्षत्रिय
होकर कैसे तटस्थ रह सकता था। मेरे दोनो ही पक्ष के सम्बन्धो
थे, दोनो को ही मैंने सन्तुष्ट किया। तुम्हारे पुत्रो को अपनी
सम्पूर्ण सेना उनकी याचना पर दी और तुम्हारे इस दूसरे पुत्र
अर्जुन ने मुझसे अपना रथ ही हँकवाया। मुझे ही बताइये
कब सुख मिला ?"

धृतराष्ट्र ने आँसू पोछते हुए कहा—"वासुदेव सब आपकी ही लीला है। आपको ऐसा ही कराना था। आपकी समस्त चेष्टायें दुर्निवार है। ये पांडव भी मेरे उसी तरह बच्चे है। उन्होंने अपने पिता को भली भाँति देखा नहीं, मुझे ही ये अपना पिता समझते हैं। मेरे बच्चे अपनी क्रूरता से ही मारे गये। अब ये पाँडव भी उन सब के लिये रो रहे हैं, कुन्ती भी बिलख रही है। यह आँखों वाली होकर भी मेरे कारण अन्धी बनी हुई गान्धारी भी रो रही है। इन सब को रोते देखकर मेरा हृदय फटना चाहता है। हे सर्वज्ञ यदुनन्दन ! आप इन सब को समझाइये। इनके शोक को मिटाइये।"

धृतराष्ट्र की बात सुनकर मुनियों सहित भगवान् ने सभी को भाँति भाँति से समझाया। सभी को जगत् की अनित्यता बताई। जन्मधारी प्राणी को मृत्यु अवश्यम्भावी बताकर, काल की गति का ज्ञान कराया। इस प्रकार सभी को समझा बुझाकर, सब को साथ लिये हुए भगवान् वासुदेव हस्तिनापुर में आये। युधिष्ठिर महाराज सिंहासन पर बैठना ही नहीं चाहते थे। उन्हें विविध प्रकार से समझाकर सिंहासन पर बिठाया। गये हुए राजा युधिष्ठिर के राज्य को धूर्तों के हाथ से बल पूर्वक छीनकर फिर से उसका अधिकारी धर्मराज को बनाया। जिन दुष्टों ने भरी सभा में सती द्रौपदी के कुटिल काले केशों को खींचा था, उन्हें अपनी करनी का फल चखा कर चारुहासिनी द्रौपदी को कृतार्थ किया। धर्मराज के यश को बढ़ाने के लिये, विजय के उपलक्ष में बड़े-बड़े यज्ञ-याग हुए। तीन अश्वमेध यज्ञ कराये, जिनसे उनकी कीर्ति दिगन्त तक छा गई। इस प्रकार पांडवों के सभी कार्य करके, सभीको भली भाँति व्यवस्था करके फिर वासुदेव बोले—"धर्मराज !

भाई, अब अपना राज्य सम्हालो। मुझे अपने भी तो काम धन्धे करने हैं। द्वारकापुरी से आये बहुत दिन हो गये। वहाँ का कुछ समाचार नहीं मिला, सभी लोग मेरी प्रतिक्षा कर रहे होंगे, व्याकुल हो रहे होंगे। मुझे जाने की अनुमति दीजिये। फिर जब आप बुलावेंगे, मैं तुरन्त आ उपस्थित हूँगा। मैं तो आपका सेवक ही ठहरा।"

जाने का नाम सुनकर सभी के प्राण सूख गये। वासुदेव अब चले जायँगे—यह स्मरण आते ही सबके नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये। मधुसूदनको मना करने की सामर्थ्य किसमें थी। उन्होंने सारथिको रथ सजाने की आज्ञा दी। व्यासजी आदि विप्रोंको प्रणाम किया, उनकी प्रदक्षिणा की, सभी ने साश्रु नेत्रों से, रुँधे कण्ठ से उनका पूजा की। सारथि ने रथ लाकर द्वार पर खड़ा कर दिया। सर्वत्र सन्नाटा छा गया। प्रेम के वेग से सबके कण्ठ रुक जाने से किसी की वाणी निकलती ही नहीं थी। उस प्रेम शोकपूर्ण शान्ति को भङ्ग करती हुई, अत्यन्त करुण स्वर मे रुदन करती हुई, अपने भान्जे की बहू उत्तरा को वेग से आते हुए उन्होने अपने रथ के सम्मुख देखा। यह बहू आज बिना परदे के, इस प्रकार रोती चिल्लाती क्यों आ रही है—यह सोचकर भगवान् आश्चर्य से चकित हो गये। इतने में ही उत्तरा अत्यन्त समीप आकर बिलखती हुई बोली—

"हे स्वामिन् ! हे प्रभो ! रक्षा करो रक्षा करो।"

भगवान् ने विस्मय के साथ पूछा—"बेटी ! तू ऐसी क्यों घबरा रही है ? क्या बात है ? बात तो बता !"

भय से थर-थर काँपती हुई उत्तरा बोली—"हे अशरण शरण ! आप यह सामने देखें। अग्नि में तपे लोहे के समान

यह बाण, मेरे पेट को लक्ष्य करके ही बड़े वेग से मेरी ओर आ रहा है। हे भक्त-भयहारी भगवन्! मुझे अपने लिये

चिन्ता नहीं। मेरा तो सुहाग लुट गया। मुझे जीने की इच्छा नहीं है। मैं तो अभी अपने प्राणनाथ के साथ अग्नि में भस्म हो जाती। किन्तु उनकी थाती मेरी कोख में रखी है। भरत

वश के बीज लोभ से ही मैं जा रही हूँ। कुरुकुल को पानी देने वाले मांस-पिंड ने ही मुझे मरने से रोक रखा है। इस दशा मे मैं मरकर अपने प्राण नाथ के पास स्वर्ग में जाऊँ, तो वे मुझसे असन्तुष्ट होंगे और कहेगे—'तू ने मेरी घरोहर को क्यों नष्ट कर दिया ?' सो हे दीन बन्धो ! मुझे यह बाण चाहे मार दे। किन्तु मेरे इस गर्भस्थ बालक की आप रक्षा करें। इसे किसी तरह इस विपत्ति से बचावें।

उत्तरा के ऐसे आर्त वचन सुन कर भगवान् ने ध्यान से देखा। वे समझ गये—'अरे, यह तो उस ब्राह्मणाधमँ का काम है प्रतिहिंसा की अग्नि से जले हुए अश्वत्थामा ने पांडव कुल को समूल नष्ट करने के लिये ६ बाण छोड़े हैं। मन्त्र से अभिमन्त्रित ५ बाण तो पाँचों पांडवों की ओर आ रहे है और छठा उत्तरा के गर्भ के बालक का, पेट मे ही नाश करने को आ रहा है।

भगवान् यह सोच ही रहे थे, कि अपनी ओर अस्त्रों को आते देख—भयभीत होकर पांडवो ने भी अपने-अपने अस्त्र उठा लिये किन्तु ये अमोघ अस्त्र अन्य अस्त्रों से शान्त होने वाले नही थे। पांडवों ने अस्त्रों का सहारा छोड़कर श्यामसुन्दर का ही सहारा लिया। भगवान् तो भक्तों के अधीन ही रहते हैं। उन्होने अपना त्रैलोक्य पूजित सुदर्शन चक्र उठा कर उन आते हुए अस्त्रों काट कर फेंक दिया। फिर सोचने लगे—उत्तरा के गर्भ की तो मुझे रक्षा करनी ही है। वे उत्तरा को सान्त्वना देते हुए बोले—'बेटी ! तू घबड़ावे मत। तेरे गर्भ का कोई बाल भी बाँका नही कर सकता। तू निश्चिन्त रह। तेरे गर्भ की रक्षा मेरे ऊपर है। धर्मराज के वश का, जब मैं रक्षक हूँ, तो विनाश करने की शक्ति किसमें है ?

इतना कहकर भगवान् ने अपनी योगमाया से उत्तरा के गर्भ को ढक लिया और स्वयं अपने एक तेजस्वी रूप से, गदा को घुमाते हुए गर्भ में रह कर स्वयं उसकी रक्षा करने लगे।

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! ब्रह्मास्त्र तो अमोघ होता है; वह तो किसी भी अस्त्र से शान्त नहीं हो सकता। वह तो जब तक जिसको लक्ष्य करके छोड़ा जाय उसे मार न दे, तब तक लौटता नहीं, फिर वह कैसे व्यर्थ हो गया?"

सूतजी बोले—"शौनकजी! यद्यपि यह ठीक है कि ब्रह्मास्त्र अमोघ है, किन्तु ब्रह्माजी के अस्त्र से उनके बाप का अस्त्र तो और भी अमोघ है। जैसे, अग्नि सबको भस्म कर सकती है, किन्तु जल के सामने आते ही शांत हो जाती है। क्षत्रिय सबका संहार कर सकता है, किन्तु स्वधर्म निष्ठ ब्राह्मण के सम्मुख उसका तेज कुण्ठित हो जाता है। उसी प्रकार वैष्णव तेज—सुदर्शन—के सामने ब्रह्मास्त्र निर्वीर्य हो गया। शौनक जी! आप इसमें आश्चर्य न करें, क्योंकि आश्चर्यों के समुद्र अच्युत से ही तो सबकी उत्पत्ति है। बाजीगर की माया से और लोग ही मोहित हो जाते हैं, किन्तु जो उसके रहस्य को समझता है, उसे कुछ भी आश्चर्य नहीं होता। इस माया के पति तो श्यामसुन्दर ही हैं। उनके ईक्षण मात्र से ही इस जगत् की उत्पत्ति स्थिति, और प्रलय सम्भव है। फिर उनके लिये ब्रह्मास्त्र को व्यर्थ बना देना कौन सी विशेषता की बात है!

इस प्रकार भगवान् ने अपने आश्रित पांडवों की सब प्रकार से रक्षा की। जैसे, मादा पक्षी अपने अण्डों को हृदय

में लगाकर सेती है, इसी प्रकार पांडवों की पग-पग पर प्रभु सम्हाल करते रहे। जहाँ जैसा अवसर देखा, वहाँ वैसे ही बन गये। न मान का ध्यान रखा, न अपमान का। भगवान् ने यह प्रत्यक्ष दिखा दिया, कि जो सर्व आश्रय छोड़कर एकमात्र मेरा ही आश्रय लेते है, उनके लिये मैं सब कुछ करने को, सब कुछ बनने को, सदा सर्वदा प्रस्तुत रहता हूँ।

छप्पय

अश्वत्थामा कुपित क्रोध करि सर छै छोड़े।
आवत देखे चक्र सुदर्शन से हरि तोड़े॥
दुर्योधन दल दल्यो दुसह दारुण दुःख दीन्हें।
करी उत्तरा अभय पांडु-सुत निर्भय कीन्हें॥
पल मे जो जग कूँ रचें, करें निमिष में नाश हैं।
दुष्ट दलन भक्तनि भरन, में तिन कवन प्रयास हैं॥

कुन्ती की स्तुति

[३०]

श्रीकृष्ण कृष्णसख वृष्ण्यृषभावनिध्रुग्—
राजन्यवंशदहनानपवर्गवीर्य ।
गोविन्द गोद्विजसुरार्तिहरावतार,
योगेश्वराखिलगुरो भगवन् नमस्ते ॥*

(श्री भा० १ स्क० ८ अ० ४३ श्लो०)

छप्पय

चले द्वारिकाधीश पृथा पुनि आगे आई।
भ्रातृ पुत्र कूँ पकरि प्रेम तें बिनय सुनाई॥
प्रभो! पुत्र परिवार सहित सब भाँति उबारी।
किन्तु यह है एक अन्त में भीख हमारी॥
विपति वारि वारिद भरे, बार बार बरसा करें।
दर्शन देवें दया वश, छत्र छाँह करि भय हरें॥

जो अपने प्राणों के समान प्यारे हैं, यदि सौभाग्य से उनके सहवास का सुख प्राप्त हो जाय—क्यों कि दो प्रेमी चिर-काल तक प्रायः साथ रह नहीं सकते—यदि कारण विशेष

---

* कुन्ती देवी भगवान् की स्तुति करती है—हे श्रीकृष्ण! हे अर्जुन के सखा! हे कृष्णवंशावतंस! हे अवनि के भार भूत भूपतियों

से बहुत दिन तक वे हममें घुल-मिल कर रह जांय और फि वे हमसे विछुड़ने लगें तो हृदय में एक मीठी मीठी वेदना होने लगती है, अन्तःकरण में असह्य पीड़ा होती है, चित्त चाहता है, किसी भाँति ये रुक जाँय। आज न जाँय, कल फिर यही दशा होती है। प्रेम में तृप्ति नहीं, स्नेह में सन्तोष नहीं। वसुदेव अब सब से विदा होकर चलने लगे। उत्तरा को अभय देकर, पांडवों को संकट से छुड़ाकर, अब उन्हें द्वारिका की याद आई। विप्रों ने उनका स्वस्त्ययन किया, उन्होंने सब को अभिवादन किया और वे रथ पर आकर बैठ गये। इतने में ही निज निवास से निकल कर, दासियों सहित महारानी कुन्ती ने आकर, श्रीकृष्ण के रथ को रोक लिया। अपनी बड़ी बुआ को खड़ी देख कर श्यामसुन्दर शीघ्रता के साथ रथ से उतर पड़े। महारानी और आगे बढ़ीं और आँखों में आँसू भर कर श्रीकृष्ण का पल्ला पकड़ कर बोलीं—"वासुदेव! मै तुम्हे नमस्कार करती हूँ।"

लज्जा का भाव प्रदर्शित करते हुए देवीकीनन्दन बोले—बुआजी! यह आप कैसी उलटी गङ्गा बहा रही है। आप मेरे पिता की भी पूजनीया हैं। मेरी बड़ी बुआ हैं। नमस्कार आपके चरणों में मुझे करना चाहिये कि आपको? आप ही मुझ बालक पर अपराध चढ़ा रही हैं।"

को भस्म करने के लिये अनल स्वरूप! हे अक्षय वीर्य! हे गोविन्द! हे! गो ब्राह्मण और देवताओं के दुःख को दूर करने के लिये अवनि पर अवतार धारण करने वाले अवतारी! हे योगेश्वर! हे अखिल जगत् के गुरो! भगवन् आपको नमस्कार है।

रुँधे हुए कंठ से कुन्तीजी ने कहा—"आप सामान्य पुरुष नहीं हैं, प्रभो! कौन आपकी बहिन, कौन बुआ? आप तो प्रकृति से परे अनादि, ईश्वर और अधोक्षज है। समस्त प्राणियों के भीतर बाहर समान रूप से स्थित हैं। किन्तु किसी को दिखाई नहीं देते। हाँ निर्मल चित्त वाले महामुनि परमहंस भक्ति-योग के द्वारा हृदय मन्दिर में आपका साक्षात्कार करते हैं। आप मायारूपी जवनिका से आच्छादित है। आपने घूँघट मारकर अपना चन्द्रमुख छिपा लिया है। उसे निर्मल, शुद्ध, माया मोह से रहित, भगवत् भक्त ही देख सकते हैं। माया के पाश से आबद्ध, हमारी जैसी अज्ञ स्त्रियाँ भला आपके रहस्य को कैसे जान सकती हैं?"

भगवान् बोले—"बुआजी! आप क्या कर रही है? मैं तो वही आपके भाई वसुदेव का पुत्र कृष्ण हूँ।"

कुन्तीजी बोली—"जनार्दन! आज मुझे कह लेने दो"। आज मुझे अपने आन्तरिक भावों को प्रकट कर लेने दो। तुम वसुदेव देवकी के पुत्र वे कृष्ण नहीं हो, किन्तु सर्वत्र, सब में वास करने वाले, भक्तों को अपने सौन्दर्य माधुर्य से अपनी ओर खींचने वाले इन्द्रियों से अतीत परब्रह्म हो। इतना सब होने पर भी आप नन्दनन्दन हो, गोपीजनवल्लभ हो आपकी नाभिकमल से ही चतुरानन ब्रह्मा उत्पन्न हुए है। आप यह जो विकसित कमनीय कमलों की अद्भुत माला धारण किये हुए है, इससे आपकी शोभा और भी अतुलनीय हो गई है। कमल के समान खिले हुए आपके बड़े-बड़े नेत्र कमल के चिह्नों से चिह्नित, चिकने और अरुणवर्ण के ये आपके परमपावर पदपद्म मेरे मन मन्दिर में सदा निवास करते रहें। हे अच्युत! मेरे प्रणाम को स्वीकार करो।"

भगवान् हँसे और बोले—"बुआजी ! आज आपको क्या हो गया है ? क्यों आज ये आप बेसुरे गीत गा रही हैं ?"

यह सुनकर कुन्ती रो पड़ी और रोते-रोते बोली—"वासुदेव ! आज मुझे रोको मत, आज मुझे कह लेने दो। तुम्हारी अहैतुकी कृपा के बोझ से बहुत अधिक बोझील हो गई हूँ। अनेक अहैतुक उपकारों के भार ने मुझे आभारी बना दिया है। जैसी दया आपने मेरे ऊपर की है वैसी दया तो आपने अपनी सगी माता के ऊपर भी नहीं की। अपनी माता देवकी को तो आपने सीमित कारागार की सीमा से ही बाहर किया, किन्तु मुझे तो इस असीम संसार के बन्धन से सदा के लिये मुक्त कर दिया। हे हृषिकेश? भाभी देवकी को तो आपने अकेले ही उबारा, उसके पुत्र तो दुष्ट पापी कन्स के द्वारा मारे ही गये, किन्तु मुझे तो आपने दुष्ट दुर्योधन के दारुण दुःखो से पांचो पुत्रों सहित उबारा है। हमारी सभी विपत्तियों में आप स्वयं आकर सम्मिलित हुए, हमारे छोटे से छोटे और बड़े से बड़े सभी कार्य अपने हाथो किये, क्या मुँह लेकर हम आपकी प्रशंसा करें ? किन शब्दों में कृतज्ञता प्रकट करें ? एक उपकार हो तो उसका कथन भी किया जाय। हमारी तो पग-पग पर प्रभो ! आपने रक्षा की। दुष्ट दुर्योधन ने भीम को भोजन में विष देकर मार डालना चाहा, किन्तु आपने कृपा करके मारने के स्थान मे उसे और अधिक बलवान् बना दिया। फिर चौकड़ी ने मिलकर लाक्षागृह मे पुत्रों सहित हमें जला डालने के षड्यन्त्र रचे, किन्तु उससे भी, हे बाँकेबिहारी ! आपने बाल-बाल बचा लिया। इतना ही नहीं, उसी विपत्ति के समय अयोनिजा त्रैलोक्य सुन्दरी द्रौपदी को भी मेरे पुत्रों की पत्नी बनाया। हिडम्ब, एकचक्रा नगरी का राक्षस आदि बड़े-बड़े

दुष्ट राक्षसों ने पांडवों पर आक्रमण किये, किन्तु आपकी कृपा से वे स्वय ही मारे गये। द्यूत की सभा में पतिव्रता द्रौपदी की लाज आप के सिवाय हे स्वामिन्! कौन बचा सकता था? बनवास की विपत्ति में राज्य-भ्रष्ट पांडवों की रक्षा करने को आपके सिवाय, किस में सामर्थ्य थी? अपने विशाल अस्त्रों और प्रबल-पराक्रम से त्रैलोक्य में कही भी अपने को गुप्त न रख सकने वाले मेरे पुत्र साल भर तक विराट नगरी में आपके अनुग्रह से तो छिपे रहे। अच्छा, ये सब विपत्तियां तो ऐसी थीं, जिनसे भविष्य में मृत्यु की शङ्का थी किन्तु रण में तो क्षण-क्षण में मृत्यु उपस्थित थी। एक बाण में त्रैलोक्य को विध्वंस करने वाले भीष्म, द्रोण, कर्ण के बाणों को देवता भी सहन करने में समर्थ नहीं। संग्राम में सामने आये हुए यमराज को भी जो नाश कर सकते थे, उन महा-रथियों के महा अस्त्रों से आपने रथवान् बनकर, सारथि होकर मेरे पुत्रों की रक्षा की। उन्हें काल के गाल से सकुशल निकाल कर महीपालों का भी महीपाल बनाया। युद्ध के अनन्तर भी आज यह तो मैंने प्रत्यक्ष अपनी आँखों से ही देखा, कि गुरु पुत्र अश्वत्थामा द्वारा चलाये हुए ब्रह्मास्त्र से—जो कभी भी व्यर्थ न होने वाला अस्त्र है—सब को बात की बात में बचा लिया। अव्यर्थ अस्त्र को भी व्यर्थ बना दिया। किसी से न कटने वाले अभिमन्त्रित अनुपम बाण को, सुदर्शन चक्र से काट कर फेंक दिया। इसलिये अब मैं कहाँ तक आपके उपकारों को गिनाऊँ? कहाँ तक आपके गुण गाऊँ? कहाँ तक आपकी अहैतुकी कृपा का वर्णन करूँ? अब मेरी आपसे एक अन्तिम प्रार्थना है। मैं आपसे एक वरदान चाहती हूँ, यदि आप देने का वचन दें, तो मैं माँगूँ।"

भगवान् बात को टालने की दृष्टि से सकुचाते हुए बोले—"बुआजी ! कैसी बात कर रही हैं आप ? मेरा सर्वस्व आपका है। मेरे रोम-रोम आपके काम आवे तो मैं अपना अहोभाग्य समझूँगा। मेरे चाम से आपका कोई काम निकले तो अभी इसी समय इसी खड्ग से अपने आप अपना चर्म उधेड़ कर दे सकता हूँ। आप ऐसा सङ्कोच न करें, जो आप माँगेंगी मैं वही दूँगा।

रोती हुई कुन्ती ने सिसकियाँ भरते हुए कहा—"लालजी! क्यों मुझे लज्जित करते हो ? क्यों मुझ भार से दबी हुई को और अधिक दबाते हो ? करुणासिन्धो ! तुम्हारा ही तो सहारा है। तुम कृपा न करते, तो आज हम कहीं की भी न रहती। आपको जो करना था, सब किया। अब मुझे कुछ नहीं चाहिये। मैं अब तुम्हारे सामने पल्ला पसार कर यही भीख माँगती हूँ, कि हम पर सदा ही इसी प्रकार इससे भी अधिक विपत्तियाँ आती रहें। यही मेरा अन्तिम वरदान है, इसी को हे दयालो ! जाते समय मुझे देते जाओ।

भगवान् आश्चर्य चकित होकर कुन्तीजी की ओर देखने लगे और अत्यन्त विस्मय के स्वर में कहने लगे—"बुआजी ! बुआजी ! आपका चित्त ठीक है न, आप यह क्या वरदान माँग रही हैं ? जान बूझकर मुझसे फिर उन्हीं विपत्तियों की याचना करती हैं जिनके कारण आपको इतना क्लेश हुआ और जिन्हें निवारण करने को मुझे बार-बार द्वारका से दौड़ना पड़ा। आप उच्च से उच्च कुल में जन्म की याचना करें अतुल ऐश्वर्य का वरदान माँगें, समस्त संशयों का उच्छेदन करने वाली विद्या माँगें, जो लक्ष्मी चञ्चला और चपला वह

कर प्रसिद्ध है, वह आपके यहाँ सौम्या, स्थिर और अचला बन कर निवास करे—इसके लिये प्रार्थना करें, तब तो ठीक भी है विपत्ति आप क्यों माँग रही है ?

कुन्ती जी बोलीं—"वासुदेव ! मुझे अब अधिक मत बहकाओ। मैं तुम्हारे प्रभाव को तुम्हारी ही कृपा से समझने लगी हूँ। हम पर विपत्तियाँ न आतीं तो आप हमारे समीप क्यों आते। सम्पत्ति में हम आपको क्यों याद करते। उसी के मद में मदान्ध होकर स्वतः आये हुए भी आपका अपमान ही करते। विपत्तियों ने ही तो हमें आपके दर्शन कराये, जिन दर्शनों को करने पर भी फिर कभी संसार के दर्शन नहीं होते। हम उन अनित्य, क्षणभङ्गुर तुच्छ, नाशवान् सुखों को लेकर क्या करेंगे जो हमें आपसे अलग कर दें। हम उन विपत्तियों का हृदयसे स्वागत करते हैं,जो बार-बार आपके दर्शनोंका अवसर देती हैं। हे दयासागर ! विपत्तियों ने ही हमें आपकी शरण में जाना सिखाया है। आप ही एक मात्र दुःख दूर कर्ता हैं, यह बात विपत्तियों ने ही तो हमें बताई है। उन्हें छोड़कर फिर हम सम्पत्ति की चाह क्यों करें ? जो हमें आपसे मिलाती हैं, आपका कृपा-पात्र बनाती हैं, वे विपत्ति ही हमारे लिये सम्पत्ति के समान हैं और जो सम्पत्ति आपसे दूर हटाती हैं वह हमारे लिये घोर विपत्ति है। अब रही सत्कुल में जन्म, ऐश्वर्य विद्या और लक्ष्मी की बात। सो प्रभो ! ये तो मादक वस्तुएँ हैं। इनके मद में मत्त हुआ प्राणी संसार में सभी का अपमान करता है। किसी को अपने समान नहीं समझता, सभी का तिरस्कार करता है। वह सबके सामने तुम्हारे सुमधुर नामों का निर्लज्ज होकर कीर्तन कैसे कर सकता है और बिना सङ्कीर्तन के बिना उच्च स्वर के पुकारे आप आते नहीं।

अतः आपको भुलाने वाले धन, वैभव, विद्या आदि हमें नहीं चाहिये।

जिसे अपने धन का, गुणों का अभिमान है, उनके समीप आप जाते ही नहीं। आपको यदि ऐश्वर्य ही प्रिय होता, वैभव से ही आप प्रसन्न होते, तो आप दुर्योधन की सुन्दर स्वादिष्ट सामग्रियों को छोड़कर विदुर के घर शाक खाने क्यों जाते? इससे पता चलता है आप अकिंचन प्रिय हैं, दीनों के नाथ हैं, निर्धनों के धन हैं, कङ्गालों की सम्पत्ति हैं। आपको ऐश्वर्य की, गुणों की सजी हुई सामग्रियों की क्या अपेक्षा होगी। आप तो स्वयं माया प्रपञ्च से रहित, अपने आप में ही रमण करने वाले, शान्त स्वरूप तथा मोक्ष के भी स्वामी हैं। दुर्योधनादि दुष्टों ने आपको पकड़ना चाहा, किन्तु आप तो काल के भी काल हैं, नियम के भी नियन्ता हैं। आदि अन्त से रहित और सब में समान रूप से विचरण करने वाले हैं। आपके लिये न कोई प्रिय है न अप्रिय। आपकी दृष्टि में सभी एक से हैं। सभी पर समान कृपा दृष्टि रखते हैं।"

भगवान् हँसे और बोले—"बुआजी! ऐसी झूठी बातें क्यों कह रही हैं। कौरवों की अपेक्षा पांडव मुझे अत्यन्त प्रिय हैं। पांडवों के सम्बन्ध से मैं कौरवों से द्वेष करता हूँ था। जो पांडवों के प्यारे हैं, उनसे प्रेम का बर्ताव करता हूँ। फिर तुम मुझे समदर्शी क्यों कह रही हो?"

कुन्तीजी बोलीं—"लालजी! अब तुम नहीं छिप सकते। भला आप किससे द्वेष कर सकते हैं और, किससे प्रेम करते हैं। प्राणी अपनी दृष्टि के ही अनुसार आप में गुण दोषों का आरोप करते हैं। विषम दृष्टि वालों को आप विषम से

प्रतीत होते हैं, समदृष्टि वालों को सम। जैसे आँखों में लाल, पीला, हरा, नीला जैसा भी काँच लगाकर देखेंगे, आकाश उसी रङ्ग का प्रतीत होगा। वास्तव में आकाश में ये कोई भी रङ्ग नहीं, वह तो निर्लेप है। इसी तरह आप प्रियता-अप्रियता से पृथक् विषमता से रहित, निर्विकार निर्लेप हैं। फिर भी लोग आप में शत्रुता, मित्रता का आरोप करते ही हैं। आप ऐसे-ऐसे कार्य करते हैं, कि देखने वाले आपको साधारण मनुष्य समझकर मोहित हो जाते हैं। वे समझ ही नहीं सकते, कि आपकी इस क्रीड़ा का रहस्य क्या है।

वैसे तो अजन्मा होने पर भी आपने जलचर, नभचर देव, ऋषि, मनुष्य, तिर्यक यहाँ तक की परम निन्दित शूकर योनि तक में अवतार धारण करके अद्भुत-अद्भुत क्रीड़ाये की, किन्तु इस कृष्णावतार में तो आपने सभी को माया मोहित कर दिया। अपने अतुल ऐश्वर्य को छिपाकर भक्तवत्सलता के पीछे आपने- अपने महत्व को एकदम भुला ही दिया।"

भगवान् बोले—"बुआजी! अब अधिक मुझे आकाश में मत चढ़ाओ। मेरा ऐश्वर्य पराक्रम सभी जानते हैं। जरासन्ध के डर से डर कर, अपनी परम पावन पैतृक राजधानी को छोड़कर, हम अपने परिवार सहित छिपकर समुद्र के बीच में रहते हैं। यह डरपोकपना जगत् प्रसिद्ध है।"

कुन्तीजी कुछ हँसी और फिर प्रेम भरी वाणी में बोलीं—"लालजी! डरना कुछ आपके लिये नई बात नहीं है। डरपोक तो आप जन्म के ही हैं। कंस के डर से डरकर आप मथुरा के कारावास से गोकुल ग्वालवालों के बीच में आये और वहाँ आकर भी आपने ऐसा अपना डरपोकपना दिखाया, कि उसकी

स्मृति मात्र से मेरे रोमांच खड़े हो जाते हैं। हाय! कैसी आपकी बाल विडम्बना है वह. वहाँ आपने अपनी अतुल ऐश्वर्य छिपा कर कैसी भक्त वत्सलता दिखाई है मैं आपकी सब लीलाओं को भूल सकती हूँ, किन्तु वह लीला मुझे कभी नहीं भूलेगी। वह सदा मेरे नेत्रों के सामने नाचती ही रहती है, गोकुल में की हुई माखन की चोरी की वह लीला।

तुमने माता यशोदा का बड़ा भारी अपराध किया था। युगादि पुराना—सास-ससुर के सामने का—उसका दही बिलोने का मांट तुमने लोढ़ा मार कर फट से फोड़ डाला। इस पर वह कुपित हुई और हाथ में छड़ी लेकर रस्सी से तुम्हें बाँधने दौड़ी। हे दामोदर! तुमने कैसी चेष्टा बनाई! कैसी लीला दिखाई। डर भी जिसके डर से डरकर रोने लगे। बड़े-बड़े ऋषि महर्षि भी घोर तप करके जिनसे मुक्ति की याचना करते हैं, ऐसे आप माँ से हा हा खाकर मुक्ति याचना करने लगे। उन कमल के समान विकसित बड़े-बड़े नेत्रों में, जिनमें यशोदा ने रात्रि स्नेह वश बहुत सा काजल लगा दिया था, उन्हीं कमल-कोपा से ओस के समान अश्रुबिन्दु बरसा कर माँ के हृदय में दया का संचार करने का ढोंग रचने लगे। कैसी वह आपकी अद्भुत लीला थी। उस समय आप एकदम सम्पूर्ण को भुलाने के लिये भोले-भाले बालक बन गये भय से भयभीत होकर मुँह नीचा करके सोधे शिशु की तरह खड़ी हुई तुम्हारी वह मनमोहनी मूरति, मेरी आँखों में नाचती हुई, अब भी मेरे मन को मोहित सी बना रही है। सोचती हूँ क्या यही अखिल भुवन का एक मात्र स्वामी मेरे सर्वस्व श्रीकृष्ण हैं?

आपके अवतार का प्रयोजन क्या है, इसे आपके सिवा कोई जान नहीं सकता। सब अपना-अपना अधूरा अनुमान लगाते हैं। कोई तो कहते आपका अद्भुत अवतार युधिष्ठिर की कीर्ति को बढ़ाने के लिये हुआ है। कोई कहते हैं आप यदुवंश को अलंकृत करने के लिये—उसका सुन्दर सुखद सुरभि दिग्दिगन्त में फैलाने के लिए—उसी प्रकार प्रकट हुए हैं, जैसे मलयाचल पर्वत पर चन्दन उत्पन्न होता है। कोई कहते हैं, पूर्व जन्म में वसुदेव और देवकी ने सुतपा और पृश्नि रूप से तपस्या करके आप से पुत्र होने का वरदान प्राप्त किया था। उसी वरदान को पूर्ण करने के निमित्त आप अवनि पर अवतरित हुए हैं। कोई-कोई कहते हैं, कि आप धर्म की संस्थापना करने के निमित्त, अधर्म को दूर करने के लिये साधुओं को सुख देने के लिये और दैत्यों का नाश करने के लिये, सदा ही युग-युग में जैसे अवतार धारण करते है, वैसे ही यह भी अवतार लिया है। किन्हीं-किन्हीं का मत है, कि यह वसुन्धरा दैत्यों के पाप-भार से भारी होकर नौका के समान समुद्र में डूबना ही चाहती थी, उसी के उद्धार के निमित्त चतुर नाविक के समान प्रकट होकर, उसे उबारने को अजन्मा होकर भी आप उत्पन्न हुए है।"

भगवान् हँसकर बोले—"बुआजो, सबका मत तो आपने बताया, किन्तु आपका क्या मत है। इनमें से आप प्रकट होने का कौन सा समझती हैं?"

कुन्तीजी बोलीं—"लालजी! मेरा मन तो इन सबसे भिन्न ही है। ये आपके रास्ता चलते हुए तिनका छूने के समान कारण हो सकते हैं। आपके अवतार का मुख्य कारण तो मैंने

यही समझा है, कि एकमात्र अपने भक्तों को सुखी करने के निमित्त उन्हें संसारी अविद्या,कामना और कर्म बन्धनों से बचाने के निमित्त ही आपकी यह लीला है।"

भगवान् बोले—"इससे और कर्मबन्धन मुक्ति से क्या सम्बन्ध? कर्मों से तो बन्धन होता है। इन संसारी चेष्टाओं के स्मरण से तो संसार बन्धन और दृढ़ होता है?"

कुन्तीजी बोलीं—"वासुदेव! आपकी चेष्टायें संसारी नहीं अलौकिक है। आपके चारु चरित्र कर्म नहीं, कर्मों के काटने की छेनी है। आपकी ललित लीलायें लोगों के अशुभों को दूर करने वाली हैं। जो लोग आपकी लीला को बार-बार श्रद्धा सहित श्रवण करते है, जो गुणी लोग ललित गीतों द्वारा तान मूर्छालय के सहित गुण गान करते हैं, जो सत्पुरुष स्तोत्रों द्वारा आपकी लीलाओं का गुणों का, स्तवन करते हैं, जो आपके दिव्य कर्मों का स्मरण करते हैं, उन्हें आपके पादपद्मों के देव दुर्लभ दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त होता है, जिनके दर्शन करने से संसार का आवागमन छूट जाता है।"

भगवान् बोले—"बुआजी!आपने आज तो मुझे बहुत बढ़ा चढ़ा दिया। आपका अभिप्राय क्या है?"

कुन्तीजी बोलीं—"मेरा अभिप्राय क्या है, सभी जीवों का एकमात्र यही अभिप्राय है, कि आपके चरणों का दर्शन करता रहे। देखो तुम द्वारका जा रहे हो न? आज अशकुन हो गया। यात्रा के समय केश खोले, भयभीत स्त्री और विशेष कर विधवा सामने आ जाय,तो उस दिन की यात्रा स्थगित कर देनी चाहिए। आज मैं तुम्हें नहीं जाने दूँगी।"

भगवान् बोले—"देखो बुआजो ! वहाँ भी बहुत से कार्य हैं। ये शकुन, अशकुन तो लगे ही रहते है। सदा मैं थोड़े ही रह सकता हूँ। एक दिन तो जाना ही होगा, आज न सही कल वियोग का दुःख तो सहना ही है। मैं फिर आता ही रहूँगा। जब भी आपका सन्देश पहुँचेगा, तत्क्षण मैं उपस्थित हो जाऊँगा।"

कुन्तीजो बोलीं—"हाय ! वासुदेव आप सचमुच हमे छोड़ जायँगे क्या ? हे भक्तवत्सल ! हमारा और सहारा कौन है ? हमारे तो सम्बन्धी, सुहृद, स्वामी, स्वंस्व आप ही हैं। आज पृथ्वी भर के सभी राजा हमारे वैरी बन गये हैं। युद्ध में हमने उनके बन्धु बान्धवों का वध किया है। सब एक मात्र आपके चरण कमलों का ही भरोसा है। उन्हीं के आश्रय से हम जो सकते हैं, नही तो आज जगत हमारे विरुद्ध हो रहा है, आपके बिना हमारी इस राजधानी की शोभा ही क्या है। जैसे पति के बिना पतिव्रता की शोभा नहीं, जैसे इन्द्रियों के रहते हुए भी यदि शरीर में से प्राण निकल जायँ, तो वह शरीर किसी काम का नही रहता, उसी प्रकार पांडवों और यादव की सत्ता आपके बिना रह ही क्या जायगी। इस पृथ्वी की एक मात्र शोभा, विलक्षण लक्षणों से युक्त आपके चरणारविन्द ही है। जैसे चन्द्रमा के बिना रात्रि की शोभा नहीं, जल के बिना नदी की शोभा नही, कमलो के बिना सर की शोभा नहीं, पङ्खों के बिना पक्षियों को शोभा नहीं, सिन्दूर के बिना सुहागिनी की शोभा नही, उसी प्रकार आपके चरणों के बिना इस हरी-भरी सुपक्व औषधि, लता वृक्षों से सम्पन्न, सब प्रकार के समृद्धि युक्त, वन, पर्वत, नदी और समुद्र सहित पृथ्वी की शोभा नही। इन सबकी अभिवृद्धि आपको दया दृष्टि से ही हो रही है।

आप हमें छोड़कर जायँ नहीं। आपके बिना हमारे प्राणों की रक्षा कौन करेगा ?"

भगवान् बोले—"बुआजी ! यह तो आप सब मोह ममता के वशीभूत होकर कह रही हैं, कि ये मेरे पुत्र हैं, पौत्र हैं, ये मेरे भाई के पुत्र हैं, पौत्र हैं। इन पाण्डवों और यादवों में आपका अत्यधिक मोह है।"

कुन्तीजी बोलीं—"हे वासुदेव! यदि मेरा मोह ही है, तो उसे छुड़ाने वाले भी तो तुम्हीं हो, तुम्हें छोड़ कर इस मोह ममता को कौन काट सकता है ? कौन इस दृढ बन्धन को शिथिल करने में समर्थ है ? हे विश्वम्भर ! हे विश्वात्मन्! हे विश्वरूप! मेरी ममता को मेट दो। पांडवों और यादवों में कसी हुई इस दृढ शृंखला को छिन्‍न-भिन्‍न कर दो।

बस, अब विशेष विनय न करूँगी। अब आपसे मेरी एक ही अन्तिम प्रार्थना है। जैसी भगवती भागीरथी का प्रवाह निरन्तर समुद्र की ही ओर वेग के साथ बहता रहता है, उसी प्रकार मेरे चित्त की वृतियाँ आपके चरणों की ही ओर लगी रहें। सब ओर से हटकर मेरा मन आपकी ही ओर दौड़ता रहे। आपको छोड़कर मुझे किसी दूसरे की चिन्ता न हो।" इतना कह कर महारानी कुन्ती चुप हो गईं। उनकी आँखों में प्रेमाश्रु अब भी डबडबा रहे थे। मुनियों ! जब कुन्ती ने इस प्रकार मधुसूदन की स्तुति की, तो श्यामसुन्दर मन्द-मन्द मुस्कराये। उनकी मुस्कान में ही तो मादकता है। जगत् को उन्मादित करने वाली माया ही तो उनकी हँसी है। जहाँ से वे हँस पड़े, तहाँ सब किया कराया चौपट।

बड़े प्रेम से अपनी बुआ से बोले—"अच्छी बात है, तुम मना करती हो, तो मैं नहीं जाता। चलो हस्तिनापुर चलें।

यह कह कर सबके साथ श्यामसुन्दर महलो मे आ गये। अब रोज़ ही जाने की तैयारियाँ होती, रथ तैयार होकर द्वार पर आ जाता, कभी महाराज युधिष्ठिर कहते—"वासुदेव ! आज तो मैं नहीं जाने दूँगा। आज नक्षत्र ठीक नही. आज दिशाशूल है. आज अब देर हो गई।" कभी सुभद्रा कहती "भैया, आज नहीं। फिर कुन्ती बुआ की बारी आती—"अरे, आज तो किसी ने छींक दिया। सामने देखो रोते घोड़े आ गये। आज नही।" इस प्रकार आज कल करते हुए ६ महीने श्यामसुन्दर और रहे।

इस प्रकार शत्रुओं को मार कर, महाराज युधिष्ठिर को समझा-बुझाकर, सिंहासन पर बिठा कर, भीष्म पितामह से धर्मराज को उपदेश दिलाकर, उन्हें सद्गति देकर परीक्षित् की रक्षा करके भगवान् वासुदेव द्वारिकापुरी को चले गये वहाँ बड़े सुख पूर्वक रहने लगे।

इतना कहकर सूतजी चुप हो गये। तब शौनकजी बोले—सूत जी ! यह तो आप बड़ी शीघ्रता कर गये। श्रीकृष्ण-कथा ही तो मधुरातिमधुर है. इनके रस के लोलुप ही तो हम सब यहाँ बैठे हैं। सब बात पूरी बताइये। भगवान् ने कैसे महाराज युधिष्ठिर को समझाया, भीष्म पितामह को कैसे कृतार्थ किया ? इन सब बातों को विस्तार के साथ वर्णन करें।

शौनकजी की बात सुनकर सूत जी हँस पड़े और बोले—"महाभाग शौनकजी ! मैंने शीघ्रता नही की। कथा कहने की ऐसी ही प्राचीन परिपाटी है। पहिले बात को संक्षेप से कहना, यदि श्रोता को उसे विस्तार के साथ श्रवण करने की रुचि

वक्ता देखे, तो उसी का विस्तार से वर्णन करे और यदि श्रोता उस विषय में उदासीन सा प्रतीत हो, तो आगे बढ़े। अब मैं आपको इसी विषय को विस्तार के साथ सुनाता हूँ।

छप्पय

हे विश्वम्भर ! विभो ! आप हैं सबके स्वामी।
अच्युत अलख अनन्त अगोचर अन्तर्यामी॥
सुरसरि को शुभ सलिल, सदा सागर में जावे।
मेरो चञ्चल चित्त चरन तल तब त्यों धावे॥
बूआ की विनती सुनी, प्रेम सहित प्रभु हँसि गये।
माया मोहित मन भये, वासुदेव मन बसि गये॥

धर्मराज का पश्चाताप

(३१)

अहो मे पश्यताज्ञानं हृदि रूढं दुरात्मनः ।
पारक्यस्यैव देहस्य बह्व्यो मेऽक्षौहिणीर्हताः ॥*

(श्रीभा० १ स्क० ८ अ० ४८ श्लोक)

छप्पय

नहीं द्वारिका गये लौटि महलन में आये।
धर्मराज रण-पाप सोचि पुनि-पुनि पछताये॥
कैसी मम मति मलीन भई भाई निज मारे।
निज सम्बन्धी हने, सभी निर्दोष विचारे॥
अश्वमेध करि कवन विधि, परमपुण्य पुनि मिलि सके।
कीचड़ की कालिख कबहुँ, कीचड़ तें का धुलि सके॥

अपनी शक्ति के बाहर के कार्य को किसी आवेश में भर कर हम कर तो डालते हैं, किन्तु करने के अनन्तर अङ्गों में अत्यधिक शिथिलता का अनुभव करने लगते है। इसी प्रकार

---

* पश्चात्ताप करते हुए धमराज युधिष्ठिर कह रहे हैं—"हाय ! मुझ पापी के हृदय पर छाये हुए अज्ञान को तो देखो, इस अनित्य और सियार कूकर के अथवा अग्नि के भक्ष्य इस नश्वर शरीर सुख के

द्वेष यश का अपमान की ज्वाला से संतापित होकर हम अपने प्रतिपक्षी को पराजित करने का प्रयत्न करते हैं। जब वह पराजित या नष्ट हो जाता है. तो द्वेष की वस्तु के न रहने पर- उसके अभाव में—हमारे मन में एक प्रकार का पश्चाताप पैदा होता है। मनुष्य के गुण उसके मरने के पश्चात् याद आते हैं। शरीर का अन्त होने के साथ सज्जनों के वैर का भी अन्त हो जाता है। पश्चात्ताप वैसे तो सभी को थोड़ा बहुत होता है किन्तु मलिन मन वाले पुरुष उसका अनुभव नहीं करते। मन जितना ही राग-द्वेष आदि मलों से रहित स्वच्छ और निर्मल होगा, पश्चाताप की अग्नि उसमें उतनी अधिक प्रज्वलित होगी।

धर्मराज शुद्ध अन्तकरण वाले धर्मात्मा थे। कौरवों की क्रूरता के कारण यद्यपि अनिच्छा रहने पर भी, उन्हें, उन सब का वध करना पड़ा। उस समय परस्पर में एक दूसरों से चिढ़े हुए थे। कौरवों ने अपनी काली करतूतों—द्रौपदी के अपमान आदि असह्य-कार्यों द्वारा पांडवों को अत्यधिक कुपित कर दिया था। अभिमान के साथ उसके सबके सामने अनेकों बार धर्मराज को युद्ध के लिये ललकारा और बलपूर्वक कहा, कि बिना युद्ध के एक सुई के छिद्र के बराबर भी पृथ्वी मैं पाँडवों को न दूँगा। धर्मराज ने हर प्रकार से युद्ध रोकने की चेष्टा की। भगवान् को भेजा, पाँच गाँवों पर दुर्योधन की अधीनता में रहकर निर्वाह करना स्वीकार किया। किन्तु उस समय कुबुद्धि ने एक भी बात न मानी। तब विवश होकर धर्मराज

लिये, मैंने अनेक अक्षौहिणी सेना, का शस्त्रों से संहार कर डाला। कितना भारी पाप मैंने किया।

को अपने शत्रुओं का संपार करने का ही निश्चय करना पड़ा। जनार्दन की सहायता से उन्होंने अपने शत्रुओं का संहार किया। सम्पूर्ण पृथ्वी का एक दम निष्कण्टक राज्य उन्हें प्राप्त हुआ। युद्ध के समय तो चित्त जय-पराजय की चिन्ता में इतना मग्न रहता कि कभी दूसरी बात सोचने का अवसर ही न मिलता। अब जब सब शत्रु इस समय धराधाम को छोड़कर स्वर्ग चले गये। मनुष्य, हाथी, घोडा, वाहनों से शून्य, रक्त से भीगा हुआ पृथ्वी का राज्य जब धर्मराज ने देखा, तो उन्हें अत्यन्त ही ग्लानि हुई। उन्हें अत्यधिक मानसिक सन्ताप होने लगा। वे बार-बार अपने को धिक्कारने लगे। वे किसी से न तो बोलते थे,न बातें ही करते थे। अन्धेरे में एकान्त में पड़े-पडे निरन्तर रोते ही रहते थे। उन्होंने अमूल्य वस्त्राभूषण उतार कर फेंक दिये। स्वादिष्ट भोजन करना छोड़ दिया। वे कभी दिन में एक बार सत्तू आदि थोडा सा सूखा अन्न खा लेते, नहीं तो निराहार रहकर ही वे अपने शरीर को सुखाने लगे।

धर्मराज की ऐसी दशा देखकर पुरजन,परिजन,सगे संबंधी मन्त्री, अमात्य तथा प्रजा जनों को बड़ी चिन्ता हुई। सबने मिल कर ऋषि-मुनि और ब्राह्मणों से प्रार्थना की इस पिता पितामह प्रपितामह की चली आई हुई भरतवंश की गद्दी पर धर्मराज को समझा बुझा कर बिठाइये। बिना राजा के सिंहासनारूढ़ हुए शासन के समस्त कार्यों में शिथिलता आ जाती है। राज्य कर्मचारी मनमानी करने लगते हैं, प्रजा में अराजकता छा जाती है। मन्त्री अमात्य और प्रजा के लोगों की ऐसी प्रार्थना सुनकर सभी ने मिलकर एक बड़ी भारी सभा बुलाई। जिसमें व्यास धौम्य आदि पुरोहित अन्यान्य ज्ञानी ऋषि मुनि तथा और भी राज्य के प्रधान प्रधान अन्तरङ्ग पुरुष सम्मिलित हुए।

चारों पांडव, गन्धारी, कुन्ती आदि गुरुकुल की स्त्रियाँ भी एक ओर बैठी थीं। एक ऊँचे आसन पर अंधे धृतराष्ट्र भी विराजमान थे। भगवान् भी बैठे थे, किन्तु धर्मराज उस सभा में सम्मिलित नहीं हुए, तब तो स्वयं श्रीकृष्ण जाकर बड़ी अनुनय विनय के साथ धर्मराज को उस सभा में बुला लाये। भगवान् के आग्रह से धर्मराज अनिच्छा पूर्वक सभा में आये। वे आकर एक बहुत ही साधारण से मलिन आसन पर बैठ गये। सभी धर्मराज के मुख की ओर देख रहे थे, किन्तु वे किसी की ओर ताकते तक नहीं थे। उनकी दृष्टि पृथ्वी की ओर थी और उनकी दोनों आँखों से श्रावण-भादों के मेघ के समान अश्रुओं की झड़ी लगी हुई थी।

इस प्रकार धर्मराज को अत्यन्त ही दुखित, पश्चात्ताप की ज्वाला में जल कर रोते हुये देख कर गुरु कुल के एक मात्र रक्षक सब के पितामह भगवान् व्यासजी बोले—"धर्मराज ! बेटा ! तुम इतने अधीर क्यों हो रहे हो ? तुमने कोई पाप-कर्म तो किया नहीं। तुमने तो, जो एक धर्मात्मा क्षत्रिय को करना चाहिये, वही किया है। तुमने किसी का धन अपहरण नहीं किया। निरपराधी का वध नहीं किया। तुमने तो धर्म-युद्ध में शत्रुओं को नष्ट करके अपने पितामह से पालित इस पृथ्वी का राज्य प्राप्त किया है। पाप करने पर पश्चात्ताप और प्रायश्चित किया जाता है। पुण्य से तो प्रसन्नता होती है। धर्म करके भी आप अधर्मी की तरह क्यों दुखी हो रहे हैं ? राज्य के लिये सभी राजर्षि क्षत्रियों ने युद्ध किये है और उनमें अपने प्रतिपक्षियों का वध भी किया है। देवता और असुर एक पिता के पुत्र हैं। परस्पर मे भाई-भाई होने पर भी सदा युद्ध करते रहते हैं और अपने विपक्षी को हरा कर स्वयं राजा बनते हैं

ई बार असुरों ने देवताओं को भगाकर स्वयं इन्द्रासन का उपभोग किया है। इसी प्रकार देवताओं ने भी असुरों के बाल बच्चों तक का वध किया है। आपने तो शत्रु-सेना के वीरों को युद्ध में लड़ते हुए—अपने ऊपर प्रहार करते हुए—मारा है। इसमें दोष की कौन सी बात है, जिसे तुम पाप समझ रहे हो। वह तो परम पुण्य है, जिसे अधर्म मान रहे हो, वह तो क्षत्रिय का मुख्य धर्म है।"

इस प्रकार भगवान् व्यासजी ने अनेक दृष्टान्त देकर, अनेक राजाओं के इतिहास सुनाकर अनेक स्मृतियों के वाक्य बता कर धर्मराज की शङ्का का समाधान करना चाहा, किन्तु उनकी समझ में ये बातें नहीं आईं। व्यासजी के समझाने पर भी उनके मन में यह बात बैठी ही रही, कि मैंने बन्धु-बान्धवों का वध करके घोर पाप किया है।

वे अत्यन्त उदास हो रहे थे। उन्होंने अपने आँसू पोंछते हुए कहा—"भगवन्! कौन प्राणी है, जो जीवित रहना न चाहता हो। अत्यन्त दुखी से दुखी प्राणी भी स्वेच्छा से मरना नहीं चाहता। ऐसे जीवित रहने की इच्छा वाले लाखों करोड़ों प्राणियों का मैंने क्रूरता पूर्वक वध किया है। यह धर्म हुआ—इसे मेरा अन्तःकरण स्वीकार नहीं करता।"

जब व्यासजी की बातों का धर्मराज पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा, तो सब लोग श्यामसुन्दर देवकीनन्दन के मुखारविन्द की ओर देखने लगे। युधिष्ठिर के चारों भाई अत्यन्त दुखी थे। उन्हें शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने से जो प्रसन्नता हुई थी, वह धर्मराज के मलीन मुख को देखकर जाती रही। उनका उल्लास तथा आह्लाद नष्ट हो गया। वे प्यासे चातकों की भाँति घनश्याम

को निहारने लगे। तब तो श्रीकृष्णचन्द्र अपनी शीतल कि
के प्रकाश से सभी को शीतलता प्रदान करते हुए धर्म
से कहने लगे—"महाराज! यह कायरता आपको शो
नहीं देती। मैंने कितने परिश्रम से तो यह राजलक्ष्मी प्रा
की है। कितनी आशाओं को लिए हुए मैंने शत्रुओं का संहा
कराया है। कितने श्रम से अनेक आशाओं के सहित फलवान
वृक्ष को पाल-पोस कर खाद देकर बड़ा किया। ज
उसके फलने का समय आया और सुन्दर-सुन्दर मधुर फल
लगने लगे, तब आप उसे कुठार लेकर काटने के लिये उद्यत
हो रहे हैं। यह आप हम सबके साथ घोर अन्याय कर रहे
हैं। हम आपको हंस के समान शुभ्र श्वेत छत्र के नीचे भरत
वंश के सिंहासन पर बैठा देखने को कितने लालायित हो
रहे हैं। जब आप सुवर्ण सिंहासन पर विशाल छत्र के नीचे
द्रौपदी के सहित बैठेंगे, अर्जुन और भीम आपके ऊपर छत्र
करेंगे। नकुल और सहदेव स्वर्ण की मूठ वाली खड्ग लिए
आपकी आराधना करेंगे। तब यह सभी कुरु जांगल देश की
प्रजा, मैं और ये भूमण्डल के समस्त राजा अत्यन्त ही आनन्दित
होकर आपकी समस्त आज्ञाओं का पालन करेंगे। मेरी एक
मात्र इच्छा आपको सम्राट-पद पर प्रतिष्ठित करने की थी।
आपको चक्रवर्ती पद पर बैठा देखूँ, इससे बढ़ कर संसार में
प्रिय वार्ता मेरे लिये कोई दूसरी नहीं है। मेरी समस्त साधनायें
इसी के लिये थीं आप अपने लिये नहीं, राज्य के लोभ से नहीं
किसी के कहने से नहीं, मेरी तृप्ति के लिये सिंहासनारूढ़
हों। मेरी आँखों को तृप्त करने के लिये आप छत्र, चंवर को
धारणा करें।"

स्नेह जल से जिनके कमल नयन भीग गये हैं और प्रेम के

आवेग से जिनका कण्ठ रुद्ध हो गया है, वे धर्मराज बड़े कष्ट से अपने आँसू पोंछते हुए बोले – जनार्दन ! आपकी मेरे ऊपर कितनी कृपा है—उसे शब्दों मे क्या कहूँ ? आपके लिये मेरे हृदय में कितना आदर है—इसे कैसे बताऊँ ? आप हम दीन हीनों पर इतना स्नेह रखते है। आप हम असहायों के प्रति कैसी ममता करते हैं, इसे स्मरण करके मेरी छाती फटने लगती है। हे दीनबन्धो ! हम आपकी ही सहायता से आपकी ही कृपा से बड़े बड़े दुःखों से बिना प्रयास के ही पार हो गये है। अपने प्राण देकर भी मैं आपका कोई प्रिय कर सकता होऊँ, तो हे प्राणनाथ ! ये प्राण प्रस्तुत हैं ? आप स्नेहवश, ममतावश मुझ पापी को सिंहासन पर बिठाना चाहते है। दयासागर ! मैं इस अहैतुकी कृपा के योग्य किसी प्रकार नहीं हूँ। मैंने ऐसे-ऐसे पाप किये है कि जिनका स्मरण करके मेरे रोम खड़े हो जाते हैं। मुझे रात्रि में नीद नहीं आती। हाय!मैंने कितने जोवो का संहार करा डाला। कितने बच्चों को उनके पिताओ से पृथक् कर दिया, कितनी पत्नियो को उनके पति से पृथक् करके उन्हें सदा के लिये विधवा बना दिया। उनके हृदय से निकले हुए गरम आँसू मुझे, 'हे दीनबन्धो ! जला रहे हैं। उन सबका शाप मेरे सिर पर सवार होकर मुझे प्राणान्तक पीड़ा पहुँचा रहा है। आप तो मुझे राजा बनाने को कह रहे है, मैं तो अब किसी को अपना कलंकित काला मुख भी दिखाने के योग्य नहीं हूँ। आप भीम, अर्जुन नकुल, सहदेव या और भी जिसे बनाना चाहें राजा बना दें। आपकी समस्त आज्ञाओं का पालन कर सकता हूँ, प्राण देकर भी आपकी प्रसन्नता सम्पादन कर सकता हूँ, किन्तु आपकी इस आज्ञा का पालन मुझसे न होगा। मैं इस रक्त

रञ्जित सिंहासन पर किसी प्रकार नहीं बैठ सकता।" इतना कहते कहते महाराज युधिष्ठिर वस्त्र से अपना। मुख ढक कर बालकों की भाँति फूट-फूट कर रोने लगे। उन्हें रोते देख कर सभा में जितने मनुष्य बैठे थे, सबकी आँखें गीली हो गईं। सभी एक साथ आँसू बहाने लगे।

धमराज की ऐसी दशा देख कर श्यामसुन्दर चुप हो गये। फिर सभी मुनियों के संकेत को समझ कर भगवान् व्यासजी उन्हें इस प्रकार समझाने लगे—"देखो, पांडुनन्दन। तुम जो ये बातें कह रहे हो, सर्वथा अविवेक के अधीन होकर कह रहे हो। पारिवारिक स्नेह बन्धु बान्धवों के मोह के वशीभूत होकर तुम इस प्रकार अश्रु बहा रहे हो। तुम्हारे जैसे धर्मात्मा को, जो धर्म के मर्म को भली भाँति जानते और समझते है, ऐसा शोक शोभा नहीं देता। बेटा! तुम इस चिन्ता को छोड़ दो। शोक, मोह को, मरे हुओं को तिलाञ्जलि देकर बहा दो। तुमने जो किया है संसार के कल्याण के लिये किया है। धर्म की गति बड़ी सूक्ष्म है। उसे वे ही समझ सकते है, जिन्होने तुम्हारी तरह धार्मिक पुरुषों का सत्सङ्ग और गुरुजनों की आज्ञा का श्रद्धा भक्ति से पालन किया हो। जब तुम ही ऐसे विषयों में शोकाकुल हो जाओगे, साधारण लोगों की क्या दशा होगी? अब बहुत हो गया, मरना जीना तो सब प्रारब्ध के अधीन है। कौन किसे मारता है? सब अपने-अपने कर्मों के अधीन होकर मरते जीते हैं।

रोते रोते धर्मराज ने कहा—"भगवन्! मैं मरे हुओं के लिये मोहवश शोक नहीं करता। मुझे तो अपने ऊपर ही ग्लानि हो रही है। मैंने इतने जीवों की हिंसा क्यों की? बस, इस शरीर

:को सुखी बनाने के लिये ही। यह शरीर स्वभाव से ही रोग : शोक और चिन्ताओं का घर है। इसे कोई किसी तरह पूर्णरीत्या सुखी नहीं बन सकता, क्योंकि यह निसंगतः मलीन है। कितने भी सुन्दर, सुगन्धित स्वच्छ स्वादिष्ट, पदार्थ क्यों न हों, जहाँ वे पेट में गए, कि देखने मे बुरा, दुर्गन्धियुक्त मल बन जाता है। ससार में सभी वस्तुये सुन्दर और निर्मल हैं। एक यह देह की इतनी मलीन और अपवित्र है, कि इसके संसर्ग से सभी दूषित और दुर्गन्धियुक्त बन जाते है। इस शरीर से सदा मल निकलता रहता है। रोम रोम से मल बहता रहता है। मुखों से, आँखों से, नाक के छिद्रों से, जीभ से, दाँतों से, ओठों से दुर्गन्धियुक्त मल बाहर आता ही रहता है। पेट तो मल की थैली ही है। मल मूत्र द्वार से मल निकल कर आस पास की पवित्र भूमि को भी अपवित्र बना देता है। कितना भी सुगन्धित शीतल जल पीवे, थोड़ी देर में दुर्गन्धि युक्त मूत्र बन जायगा। रोमों से पसीना भी दुर्गन्धिपूर्ण निकलता है। वायु कितनी निमत्र है, किन्तु उसी का जब शरीर से संसर्ग हो जाता है, तो अपान द्वार से कितनी दुर्गन्धित होकर निकलती है, ऐसे इस अशुद्ध तथा रोग शोक के निवास भूत मलीन देह को सुखी बनाने के लिए मैं भाइयों के रक्त से अपने हाथ रगे। जब भी उचित कहा जा सकता था—यदि यह शरीर सदा बना रहता, सो बात भी नहीं। यह शरीर क्षण भंगुर है। अनेकों पाप करके इसे पाला पोसा, प्राणों के पृथक होते ही यह बेकार बन जाता है। अपने किसी काम नहीं आता। अन्त मे इसकी तीन ही गति हैं। पड़ा पड़ा सड़ गया, तो कीड़े पड़ जाते हैं, सियार, कुत्ता गृद्ध आदि मांस भोजी जीवों ने खा लिया, तो पेट में जाकर विष्टा हो जाता है, और यदि किसी ने जला दिया, तो दो मुट्ठी भस्म हो

जाती है। देह को प्राप्त करके जो पाँचों भूत—पृथ्वी, जल, तेज वायु और आकाश—मलिन से दिखाई देते थे, वे विशुद्ध होकर अपने-अपने स्वरूपो मे मिल जाते हैं। ऐसे इस अनित्य शरीर के पोषण के निमित्त किया हुआ पाप, कभी क्षम्य नहीं कहा जा सकता।"

व्यासजी ने कहा—"तुमने अपनी इच्छा से उन सब शत्रुओं को मारा नही। वे स्वय तुमसे लड़ने आये। युद्ध को जो भी ललकारे क्षत्रिय का धर्म है, उससे ही सम्मुख युद्ध करे। यदि युद्ध के लिये ललकारने पर भी जो क्षत्रिय युद्ध से पराङ्-मुख होता है, शास्त्रकारो ने उसे पापी बताया है। इसलिये आपने धर्म ही किया।"

धर्मराज बोले—"भगवान्! किसी के प्राण लेना कहाँ का धर्म है? फिर मेरे पीछे तो बहुत के बालक मारे गये, जिन ब्राह्मणों को अवध्य बताया है, ऐसे द्रोण प्रभृति ब्राह्मणों को भी हमने मारा। सगे सम्बन्धी, चाचा, ताऊ, बाबा, गुरु जो कि सर्वथा अवध्य माने गये है, उनको भी हमने बुरी तरह छल से मारा है। इन सब कार्यों के करने से अवश्य ही मुझे नरक की अग्नि में अनन्त काल तक पचना पड़ेगा।"

व्यासजी ने कहा—"भैया, प्रजा-पालन क्षत्रियों के लिये सर्वश्रेष्ठ धर्म है। बस धर्म के पालन करने में प्रजा से द्रोह रखने वालों का यदि बध भी किया जाय, तो उस प्रजा-पालन रूपी धर्म से सबका प्रायश्चित हो जाता है। प्रजा-रक्षा के लिये शत्रु संहार पाप नही पुण्य ही है।

धर्मराज ने कहा—मैंने प्रजापालन के लिये भी किया होता, तब भी मुझे कुछ सन्तोष होता। मैंने तो यह सब अपने

निजी स्वार्थ के लिये किया। दुर्योधन कैसा भी था, उसका द्रोह हमसे था, हमें नष्ट करने पर वह उतारू था, प्रजा का पालन तो वह प्रेम से करता ही था। यो शत्रु-मित्र तो सभी राजाओं के होते ही हैं। प्रजा के लोग उसके राज्य में दुखी नहीं थे। वह यज्ञ-योगादि धर्म कार्य भी करता था। द्रोण, भीष्म आदि की सेवा वह बड़ी सावधानी से करता था। उन्हें यथेष्ट भोग पदार्थ देता था। सब सैनिक उससे सन्तुष्ट थे। पृथ्वी के राजाओं पर भी उसका प्रभाव था। उसके कहने मात्र से ११ अक्षोहिणी सेना इकट्ठी हो गई और सभी अन्त तक प्राणों की बाजी लगा कर लड़ते रहे। किसी ने उससे न द्रोह किया न किसी ने अन्त तक उसका साथ छोड़ा। इसी से उसकी सर्व प्रियता सिद्ध होती है। ऐसे राजा को मैंने—प्रजा के हित के लिये नहीं—अपने पैतृक राज्य के लिये मारा है।"

व्यासजी ने कहा—"अच्छा राज्य के ही लिये सही पैतृक राज्य तो तुम्हारा ही था। धर्मपूर्वक न्याय से राज्य के एक मात्र अधिकारी तो तुम्हीं थे। तुम्हें उसने क्षत्रिय धर्म से भ्रष्ट करना चाहा। समर्थ होने पर भी जो राजा प्रजा पालन नहीं करता वह पापी कहाता है। उसे अपने बाहु बल से भ्रष्ट करने वाले को मार कर, राज्य लाभ करके प्रजापालन रूपी धर्म कार्य करना चाहिए। आपने ऐसा ही किया। युद्ध में पाप-पुण्य दोनों हो ही जाते हैं। पुण्य का आप भोग करें और पाप को अश्वमेधादि यज्ञ करके नष्ट करें। उससे पाप का भी क्षय होगा और तुम्हारी कीर्ति भी बढ़ेगी।"

धर्मराज बोले—"प्रभो! यह सब तो ठीक है। इन यज्ञादि गृहस्थोचित कर्मों के द्वारा मैं अपने मन को सन्तुष्ट भले

ही कर लूँ, किन्तु जिन पत्नियों के पति मर गये हैं, जो बच्चे अपने पिताओं से पृथक कर दिये गये है, उनका मार्जन कैसे होगा ? उनको उष्ण आहें—तो मुझे भस्म करती ही रहेंगी। अश्वमेधादि यज्ञ ठीक ही है, किन्तु उनसे की हुई हत्याओ का प्रायश्चित हो जायगा, यह मेरी समझ से नही आता। इन यज्ञों में भी तो अनेक वनस्पति, पुष्प, फल और बलि पशुओ की हिसा ही होती है। हिंसा से हिंसा का मार्जन करना ऐसे ही है, जैसे कपड़े में लगी कीचड़ को कीचड़ से ही धोना। क्या कपड़े की कीचड़, कीचड़ से धोने से छूट सकती है ? मेरी बुद्धि कहती है, नहीं छूट सकती। फिर हिंसा के एक पाप को मिटाने के लिये पुन. दूसरी हिंसा का ही आश्रय क्यों ले ?

इस प्रकार धर्मराज को जिसने भी समझाया, उसी को उन्होंने दुःखित मन से रो-रोकर ये ही उत्तर दिये। सब लोगो के आग्रह करने पर उन्होने किसी प्रकार सिहासन पर बैठना तो स्वीकार किया, किन्तु वे बार-बार यही कहते थे, "मैं तो अब सब कुछ छोड़ कर अरण्य मे जाकर शरीर को सुखा कर घोर तपस्या करूँगा उससे, जितना भी कुछ अपने पापो का मार्जन होगा करूँगा, शेष का फल नरकों मे जाकर भोगूँगा। ऐसी ही बातें कहकर वे राज्य के कार्यों से उदासीन हो रहे।

एक दिन धर्मराज रात्रि मे भगवान् के दर्शनों को गये। भगवान् अर्जुन के ही महलो मे रहते थे। उनके ही साथ भोजन, शयन, उठना, बैठना उन्हें प्रिय था। धर्मराज ने क्या देखा, कि भगवान् पद्मासन से बैठे ध्यान मग्न है। इस प्रकार प्रभु को समाधिस्थ देखकर धर्मराज स्तम्भित से हो गये। वे बड़ी देर तक ज्यो के त्यों खड़े हुए भगवान् के श्रीमुख को निहारते

रहे। कुछ काल के अनन्तर भगवान् का ध्यान भङ्ग हुआ। वे शीघ्रता के साथ अपने आसन से उठ कर खड़े हो गये और अत्यन्त आदर के सहित धर्मराज को प्रणाम करके बोले—"आप कब आये ? क्या देर से खड़े हैं ? मुझे तो कुछ ध्यान ही न रहा।"

आसन पर बैठते हुए धर्मराज बोले—"प्रभो ! मैं इन सब बातों का तो पीछे उत्तर दूँगा। इस समय तो जो मुझे शङ्का है. आप उसका समाधान कीजिये। मेरे प्रश्न का सत्य सत्य यथार्थ उत्तर दीजिये।"

भगवान् बोले—"हाँ, कहिये, क्या कहते हैं ?"

धर्मराज ने पूछा—"स्वामिन् ! आप तो जगत् के ईश हैं, चराचर जगत् आपका ध्यान करता है,फिर आप किसका ध्यान कर रहे थे। आपसे श्रेष्ठ तो संसार में कोई है ही नहीं. फिर समाधि लगाकर आप किसका भजन चिंतन कर रहे थे ?"

आँखों में आँसू भर कर जनार्दन बोले—धर्मराज ! मेरे भी कुछ भजनीय है। वे है मेरे भक्त। मेरे भक्त मुझे जिस भाव से भजते हैं, ठीक उसी भाव से मैं भी उनका भजन करता हूँ। भक्त मेरा ध्यान करते हैं। मैं भक्तों का ध्यान करता हूँ। भक्त मुझे अपना इष्ट मानते है, मैं उन्हें अपना इष्ट मानकर उनके पैरों की धूलि के लालच से, उनके पीछे-पीछे घूमता हूँ। मैं अपने एक अत्यन्त प्रिय भक्त का ही इस समय ध्यान कर रहा था।"

धर्मराज ने बडी उत्सुकता से पूछा—"मैं सुनूँ भी तो, वे ऐसे कौन महाभाग्यशाली भक्त हैं। उनका मै परिचय पाने को अत्यन्त ही उत्सुक हूँ।"

भगवान् ने आँसू पोंछते हुए गम्भीर स्वर में कहा—"धर्मराज, वे हमारे तुम्हारे पूजनीय पितामह भीष्म हैं। वे शर शैया पर पड़े-पड़े मेरा ही ध्यान कर रहे हैं। इसलिये मैं भी एकाग्र चित्त होकर समाधि में उन्हें ही देख रहा था, उन्हीं से मानसिक बातें कर रहा था।"

अत्यन्त ही उल्लास के साथ धर्मराज ने कहा—"प्रभो! हम तो यहाँ आकर अपने परमादरणीय पूज्य पितामह को भूल ही से गये। कल हम सब उनके श्री चरणों में अवश्य चलेंगे। वे धर्म के मर्म को भली भाँति समझने और समझाने वाले हैं। मैंने देखा है, बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि उनसे धार्मिक शङ्काओं का समाधान कराने आते थे और वे सबकी शङ्काओं का सरलता के साथ समाधान कर देते थे। हम भी चल कर उनसे अपनी समस्त शङ्काओं का समाधान करावें। आप भी अवश्य हमारे साथ पधारें।"

भगवान् को तो यही अभीष्ट ही था, इसलिये तो ध्यान समाधि का ढोंग रचा था। वे प्रसन्नता प्रकट करते हुए बोले—"हे भरतकुल तिलक महाराज! आपने अत्यन्त ही उत्तम विचार किया। आप हमारी बात तो मानते नहीं। पितामह ही आपको सब बातें समझायेंगे, वे ही धर्म का मर्म बतावेंगे।"

भगवान् के ऐसा कहने पर धर्मराज ने उनकी बातों का सत्कार किया और वे पितामह के समीप जाने के लिए तैयारियाँ करने लगे।

छप्पय

हूँ पापी अति अधम मोहि नर-नारि न निरखें ।
पत्नी पति तें पृथक् करी, विधवा बनि विलखें ॥
सबके सुत पितु-मातु करुण क्रन्दन करि कोसें ।
पांडव पापी परम बन्धु वधि निज तनु पोसें ॥
कृष्ण ! कहो कैसे करूँ, रक्त सुरञ्जित राज कूँ ।
कौन करे सुख स्वजन वधि, ऐसे कुत्सित काज कूँ ॥

भगवान का पांडवों सहित पितामह के समीप गमन

(३२)

दृष्ट्वा निपतितं भूमौ दिवश्च्युतमिवामरम् ।
प्रणेमुःपाण्डवा भीष्मं सानुगाः सह चक्रिणा ॥*
(श्रीभा० १ स्क० ८ अ० ४ श्लोक)

छप्पय

धर्म-नीति कहि भाँति-भाँति सबने समझाई।
किन्तु काहुकी बात धर्म-सुत मन नहिँ भाई॥
कृष्ण कहें—श्रीभीष्म, हमारे अति ही प्यारे।
भक्ति भाव सुनि सभी दरस कूँ शीघ्र सि[illegible]
शोभित भीष्म शर विँधे,अवनि उतरि जिमि राव नरे।
पांडव, पुरजन प्रभु सहित, सबने पद बन्दन करे॥

सभी को संसार में अपना प्रेमी अत्यन्त ही प्यारा होता है। अपने प्रेमी की प्रसन्नता के लिये संसार के प्रिय से प्रिय पदार्थों के परित्याग के अनेकों उदाहरण विद्यमान् हैं। जब संसारी पुरुष ही अपने प्रेमियों को इतना प्यार करते हैं, तो

---

* कुरुक्षेत्र में पांडवों ने पितामह भीष्म के समीप जाकर उन्हें शर-शैया पर शयन करते हुए देखा। उस समय वे ऐसे प्रतीत होते थे, मानों कोई स्वर्ग से देवता पृथ्वी पर गिर पड़ा हो। पाण्डवों ने अपने

प्रभु अपने प्रेमी भक्तों को कितना चाहते होंगे, यह कहने की बात नहीं है। भगवान् ने स्वय अनेकों बार कहा है, कि जितना प्यार मैं अपने भक्तों से करता हूँ, उतना न लक्ष्मी से करता हूँ, न अपने ब्रह्मा आदि पुत्रों से ही। मुझे सबसे प्रिय भक्त ही हैं। भक्तों के पीछे भगवान् अपने आप को भी भूल जाते हैं। भक्तों के प्रिय करने के निमित्त उनके लिये कोई अकार्य काम नही है। अपनी पूजा-स्तुति से भगवान् उतने प्रसन्न नहीं होते, जितने भक्तों की पूजा-प्रतिष्ठा से प्रसन्न होते हैं। भगवान् तो स्वयं समस्त ऐश्वर्य, शोभा और यश के उद्गम ही हैं। किन्तु वे पृथ्वी पर अपने भक्तों के यश को फैलाने में अत्यधिक यत्नवान् रहते है। मेरे भक्तों का किसी प्रकार गुण गान हो, यही उनकी आन्तरिक लालसा रहती है अतः भगवान् के प्रसन्न करने का सरल उपाय यही है, कि उनके भक्तों की पूजा, स्तुति करें, उनके चारु-चरित्र का ही सदा श्रवण करें। भक्तो की यश रूपी मणिमाला को सदा कण्ठ में धारण किये रहे। महाभारत, रामायण, पुराण आदि में भगवान् से अधिक भक्तो की ही महिमा है, यही भगवान् को अभीष्ट भी है। फिर भगवान् के पास और है ही क्या, भक्तों के द्वारा ही तो उनकी महिमा है। जल में नौका खड़ी है, यदि पार जाने वाले यात्री ही न हों तो, उसका उपयोग क्या? सुन्दर से सुन्दर स्वादिष्ट पदार्थ रखे है, यदि उनका कोई रसास्वाद लेने वाला ही न हो, तो वे व्यर्थ ही हैं। इसी प्रकार भगवान् की महिमा भक्तों द्वारा ही है। अतः

अनुयायियों सहित उन्हें प्रणाम किया और चक्रपाणि वासुदेव ने भी उनकी वन्दना की।

भक्तों की कथा ही भगवत्-कथा है। भक्तों के हाड़-चाम का तो वर्णन किया नहीं जाता, उनकी भक्ति की ही महिमा गाई जाती है। भगवान् में उनका कैसा अटूट स्नेह था और भगवान् भी उनके सभी कार्यों को स्वयं अपने हाथों से करते रहते थे, ये ही भक्तों की गाथायें हैं। इनमें भक्त तो उपलक्षण मात्र है, वास्तव में वे भगवत्-यश-गुण गाथा ही हैं। पांडव त्रैलोक्य पावन क्यों हुए? इसीलिये कि अपनी अनुपम भक्ति के द्वारा उन्होंने भगवान् वासुदेव को अपने अधीन बना लिया इसी प्रकार भीष्म पितामह के बल पराक्रम की उतनी प्रशंसा नहीं है, जितनी उनकी भगवत् भक्ति की प्रशंसा है। वे श्यामसुन्दर के अनन्य भक्त थे। शर-शैया पर पड़े हुए भी वे जगत्पति यादवेन्द्र का ही चिन्तन कर रहे थे। उनकी चित्तवृत्ति तैल धारावत् श्रीकृष्ण चरणों में ही अविच्छिन्न भाव से लगी हुई थी। इसलिये उनके यश का विस्तार करने के निमित्त तथा अन्त समय में उन्हें अपने देव दुर्लभ दर्शन देने को देवकीनन्दन ने पांडवों सहित उनके पास जाने का निश्चय किया।

प्रातःकाल हुआ। सभी पांडव तथा कुरुकुल के प्रतिष्ठित सेवक पुरोहित और मन्त्री आदि सभी पितामह भीष्म के समीप चलने को सुसज्जित हुए। सभी अपने अपने हाथी, घोड़े, रथ आदि वाहनों पर चढ़-चढ़ कर धर्मराज के पीछे-पीछे चले। कृपाचार्य धौम्य, व्यास आदि पांडवों के पूजनीय पुरोहित धर्मराज के आगे आगे थे। शेष सभी धर्मराज को चारों ओर से घेर कर उसी प्रकार चले, जैसे देवगण देवराज को घेर कर चलते है। नगर के बाहर सभी एकत्रित हुए। धर्मराज चारों ओर आँखें फाड़-फाड़ कर श्रीकृष्ण को देख रहे थे, किन्तु श्रीकृष्ण

स भीड़ में दिखाई नही देते थे । अर्जुन का भी रथ उनके छे नहीं था। वे वहीं खड़े-खड़े चक्रपाणि मधुसुदन की प्रतीक्षा रने लगे।

इधर भगवान् अर्जुन के भवन में आनन्द पूर्वक सुख से राजमान थे। उन्होने इधर उधर व्यग्र भाव से अर्जुन को क्कर लगाते देखा, उन्हें इस तरह व्यग्र देखकर हँसते हुए ासुदेव बोले—"अर्जुन ! तुम धर्मराज के साथ पितामह के र्शनों को नही गये क्या ? यहाँ इस तरह कस्तूरी मृग की तरह क्कर क्यों लगा रहे हो ?"

अत्यन्त उदासीन भाव से आकुलता के स्वर में अर्जुन ोले—"क्या बताऊँ महाराज ! न जाने आज मेरा सारथि कहाँ चला गया। उसे ही ढूँढ़ रहा हूँ, इसीलिये धर्मराज के ाथ भी न जा सका।" यह सुनकर भगवान् हँस पड़े और बोले—अरे भैया, तेरा सारथी तो मैं ही बैठा हूँ। युद्ध समाप्त होने पर भी तू मुझसे बिना रथ हँकवाये मानेगा नहीं। चल तूने तो मुझे बिना दाम के मोल ले रक्खा है।"

इतना कहकर त्रैलोक्य वन्दित पार्थ सारथी उठे। वे शीघ्रता के साथ, अश्वशाला मे गये। घोड़ों को थप थपाया, सेवकों ने काठी लाकर घोड़ों की पीठ पर चढ़ाई। स्वय श्यामसुन्दर ने धुरा उठाकर घोड़ों के ऊपर रखा। इस प्रकार घोड़ों को जोतकर हाथ में तोत्र (कोड़ा) लेकर आप सारथी के स्थान पर बैठ गये और सुसज्जित रथ लाकर अर्जुन के द्वार पर खड़ा कर दिया और बोले—"राजन् ! आइये, रथ तैयार है ! धर्मराज हमारी प्रतीक्षा मे नगर के बाहर अवश्य खड़े होंगे।" हँसते हुए अर्जुन ने कहा—"मेरा सारथी बड़ा दीर्घ सुत्री है।" दोनों ही

हँस पड़े और एक दूसरे से लिपट कर साथ-साथ रथ में बैठ कर चल दिये।

दूर से धर्मराज ने वानर ध्वजा से ... अर्जुन के रथ की घरघराहट सुनी। वे समझ गये श्यामसुन्दर आ रहे हैं। दोनों ने धर्मराज के समीप पहुँच कर उन्हें प्रणाम किया। धर्मराज अर्जुन से बोले—"अरे भाई तुम लोग तो बड़ी देर कर देते हो। क्या, सो गये थे?"

झूठी गम्भीरता दिखाते हुए अर्जुन ने हाथ जोड़कर कहा—"राजन्! मेरा यह सारथी बड़ा दीर्घ सूत्री है। आप राजा हैं, इस अपराध के लिये सारथि को ही दण्ड दीजिये।" धर्मराज हँस पड़े और बोले—"अरे भैया! तुम्हारे सारथि को दण्ड देने की सामर्थ्य किसमें है! वही जिसे जो चाहे दण्ड दे सकता है, जिस पर चाहे कृपा कर सकता है। मुझे तेरे इस सौभाग्य पर अत्यन्त ही ईर्ष्या है।"

इतने में ही श्यामसुन्दर कहने लगे—"धर्मराज! आज मेरा आने का विचार नहीं था, सोचा था—तुम आपस में बाबा नाती मिल-जुल लो। मेरी तो वहाँ कोई विशेष आवश्यकता भी नहीं थी, इसीलिये मैं निश्चिन्त बैठा था। किन्तु तुम्हारे लघुभ्राता की आज्ञा हुई, कि मेरा रथ ले चलो। तब मुझे आना ही पड़ा। ये राजा ठहरे, इनकी आज्ञा न मानें तो भी कल्याण नहीं। इसी दुविधा में देर हो गई। आपको अवश्य हमारी प्रतीक्षा में देर तक ठहरना पड़ा। अब चलो, चलें। यह कहकर सभी धर्मराज को घेर कर चलने लगे। अनेक प्रकार की कथावार्ता कहते-कहते, परशुराम सरोवर, स्यमन्त पञ्चक और कुरुक्षेत्र का माहात्म्य सुनाते हुए श्रीकृष्ण धर्मराज के साथ-साथ

रहे थे। उन्होंने कुरुक्षेत्र के मैदान में युद्ध में—मरे हुए द्धाओं तथा हाथी घोड़ों की—असख्यों लाशें देखीं। वे सब ड़ रहीं थीं। उनमें से दुर्गन्ध उठ रही थी। रक्त की नदियाँ सूख ई थीं। जमा हुआ रक्त सूख कर फट गया था। मांस भोजी क, गृद्ध आदि पक्षी इधर-उधर उड रहे थे। इस प्रकार उस मरभूमि को देखकर, सभी शरशैया पर पड़े हुए पितामह के ास पहुँच गये।

अत्यन्त समीप पहुंच कर सभी अपने-अपने वाहनों से उतर कर पैदल ही पितामह के पास जाने लगे। धर्मराज ने कहा—"जनार्दन ! आप हम सबके आगे आगे चलें।"

भगवान् ने कहा—"राजन् ! मैं तो पीछे चलने वाला ही सेवक हूँ। तुम सब आगे चल के पितामह की चरण वन्दना करो, मुझे तो अभी घोड़ों को खोलना है, उन्हें टहलाना है। उन्हें स्वस्थ करके चरने को छोड़कर सब सारथियों के साथ मैं पीछे ही आऊँगा, आप सब चल।"

धर्मराज ने कहा—"जैसी आपकी आज्ञा।" ऐसा कहकर अपने भाइयों के साथ धर्मराज पितामह के समीप पहुँचे। उस समय वे आँखें बन्द करके स्तवराज से पुराण पुरुष पुरुषोत्तम का ध्यान कर रहे थे। उनके दोनो ओठ हिल रहे थे। जसे सन्ध्या के समय कमल कोष मुँद जाता है और अधिक ओस पड़ने से उसकी पंखड़ियों के किनारे से ओस कण टपकते हैं, उसी प्रकार उनके बन्द हुए नेत्रों की कोर से पृथ्वी पर टप-टप आँसू गिर रहे थे। वे ध्यान मे तल्लीन थे। उनके सम्पूर्ण शरीर से दिव्य प्रकाश निकल रहा था। वे बाणों की शैया पर पड़े हुए ऐसे प्रतीत होते थे, मानों अपनी मूर्तिमान् तीक्ष्ण किरणों को

पृथ्वी मे गाड़कर सूर्य सो रहा हो। घनीभूत करके को जैसे किसी ने वाणों पर लिटा दिया हो, उसी वे दमक रहे थे। ईर्ष्यालु बलवान असुरों ने बाण म जैसे देवराज इन्द्र को पृथ्वी पर गिरा दिया हो और होने के कारण जैसे वे पृथ्वी को स्पर्श न करते हुए मे ही शयन कर रहे हों, उसी प्रकार वे अवनि से ऊपर हुए केवल शरीर मे घुसे हुए वाणों के ही सहारे पड़े देवराज इन्द्र की तरह उनका सुवर्ण मण्डित किरीट चमक रहा था। उनके कानों के कुण्डल अब भी उनके कपोलों शोभा बढ़ा रहे थे। उनके चमरी गाय के समान स्वच्छ बाल इधर-उधर अस्त-व्यस्त भाव से बिखरे हुए थे। बगुला के पङ्खों के समान उनकी शुभ्र दाढ़ी हृदय पर इसी प्रकार भाव से विश्राम ले रही थीं, जैसे कोई सफेद बालों वाला पहाड़ी पक्षी पङ्ख फैला कर सङ्गमरमर की शिला पर सो रहा हो। वे अविचल भाव से विना वेदना प्रकट करते हुए परात्पर प्रभु के ध्यान मे मग्न थे। धर्मराज ने धीरे-धीरे जाकर अपने किरीटयुक्त सिर से उनके चरणो की वन्दना की। नेत्रों के अश्रु के उष्ण जल को ही पाद्य बनाकर उन्होंने पितामह के पादों का प्रक्षालन किया। इसके अनन्तर सभी भाइयों ने उनकी चरण वन्दना की।

पैरो मे अश्रु, किरीट और शिरों के स्पर्श से उनका ध्यान भङ्ग हुआ। बड़े-बड़े कमल के समान सुन्दर और अरुण नेत्रों के द्वारा कृपा भरी दृष्टि से उन्होने पांडवों को देखा और फिर बोले—"बेटा युधिष्ठिर ! तुम आ गये ? अच्छा किया बेटा।" इतना कहते-कहते उनके नेत्र चञ्चल हो गये। वे पाडव और उनके साथी तथा सेवकों के बीच में मानो किसी को ढूँढ़ रहे

। शरशैया पर पड़े-पड़े ही उस वृद्ध राजर्षि ने पांडवों के सभी साथियों पर एक विहङ्गम दृष्टि डाल ली फिर कुछ निराशा के स्वर मे बोले—"बेटा कौन-कौन आये हो तुम लोग ?"

धर्मराज पितामह का अभिप्राय समझ गये। वे भी अनुभव करने लगे, कि मेरे पितामह की बूढ़ी आँखें जनार्दन को खोज रही है, अतः बोले—"बाबाजी ! हम सब भाई आये हैं और श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण भी आये है।"

इतना सुनते ही वृद्ध का मुख मण्डल अत्यन्त प्रसन्नता के कारण दमकने लगा। साथ ही उनके मुख पर विद्युत् की तरह आनन्द की आभा दौड़ गई। अपनी उत्सुकता को दबाते हुए वे बोले—"अच्छा श्यामसुन्दर भी पधारे है वे तो दिखाई नहीं देते।" पितामह इतना कह ही रहे थे, कि बहुत सारथियों के साथ हाथ में तोत्र (कोड़ा) लिये श्यामसुन्दर ने दूर से ही कहा—"पितामह के पूजनीय चरणो में अर्जुन के सारथि का प्रणाम पहुँचे।"

इतना सुनना था, कि पितामह की आँखें बरसने लगी, उनका कण्ठ भर आया, हृदय की गति वेग के साथ चलने लगी। गद्-गद् कण्ठ होने से वे बड़े कष्ट से इतना ही कह सके अर्जुन के सारथि का ही मैं चिन्तन कर रहा था। कृपा करके उन्होंने मुझे दीन हीन, साधन बिहीन समझ कर स्वयं आकर प्रत्यक्ष दर्शन दिये। वासुदेव ! आओ मुझे कृतार्थ करो। इतना कह कर वे बाणों के विंधे अपने हाथों को उठाने

की चेष्टा करने लगे। उसी समय तुरन्त वासुदेव ने हाथ ' चाबुक फेंक दिया और दौड़कर जैसे बच्चा माँ की गोदी चिपक जाता है, उसी प्रकार उन्होंने अपना सिर पितामह के विशाल वक्षःस्थल पर रख दिया, जिस पर कि श्वेत दाढ़ी फहरा रही थी। श्वेत दाढ़ी के बालों में श्यामसुन्दर की काली घुँघराली लटें लिपट कर ऐसी शोभायमान होने लगीं मानों प्रयागराज में गङ्गा-यमुना का सङ्गम हो रहा हो। पितामह ने बड़े कष्ट से, रक्त से रञ्जित बाणों से बिंधा अपना हाथ
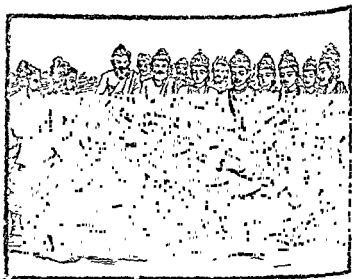
श्यामसुन्दर के चरणों की ओर बढ़ाया, किन्तु वे चरणों को पा न सके। बीच में ही श्यामसुन्दर ने उसे उठा कर अपनी भीगी हुई आँखों पर रख लिया।

इतने में ही क्या देखते हैं, कि बहुत से जटा जूटधारी बड़े बड़े ऋषि महर्षि भीष्म पितामह के दर्शनों के लिए आ रहे है। वे सभी अपनी अपनी तपस्या के प्रभाव से मूर्तिमान अग्नि की तरह प्रकाशित हो रहे थे। उनमें बहुत से देवर्षि थे, बहुत से राजर्षि थे, बहुत से ब्रह्मर्षि और महर्षि भी थे। उनमें पर्वत, नारद, धौम्य, व्यास, बृहदश्व, भरद्वाज, परशुराम, वशिष्ठ, इन्द्रप्रमद, त्रित, गृत्समद, असित, कक्षीवान् गौतम, अत्रि, विश्वामित्र, सुदर्शन सुकदेव, कश्यप, अङ्गिरा, अकृतवृण, आदि मुख्य-मुख्य थे। सभी के शिष्य प्रशिष्य पुत्र-पौत्र भी साथ ही थे। सभी भाँति-भाँति के नियमों के धारण करने वाले थे। उन महर्षियों को आते देख धर्मराज अपने भाइयों सहित, संभ्रम के साथ आदर पूर्वक उठ कर खड़े हो गये। भगवान् वासुदेव ने भी उठकर उन महर्षियों को अभ्युत्थान दिया।

उठने में असमर्थ शन्तनु पुत्र भीष्म ने पड़े-पड़े ही उन सब ऋषि महर्षियों का सत्कार किया तथा धर्मराज के द्वारा उन सबकी यथोचित् पूजा कराई और उन्होंने स्वयं पुराण पुरुष श्रीकृष्ण की मानसी पूजा की, क्योंकि वे तो उनके अन्तःकरण मे सदा स्थिति ही रहते थे। उन्होने यह भौतिक शरीर तो अपनी माया से लोगो को भुलाने के लिये बना सा रखा है। वास्तव में तो वे माया से परे माता के स्वामी हैं, जगन्नाथ है।

सब मुनियों ने आकर गङ्गा पुत्र-भीष्म से उनकी कुशल पूछी। कुशल प्रश्न के अनन्तर वे धर्मराज युधिष्ठिर की ओर देखने लगे।

छप्पय

शरशैया पै परे भीष्म विद्युत सम दमकें।
शोणित,शर,कच,कांति इन्द्र धनु सम मिलि चमकें॥
बन्धु सहित ढिँग जाय युधिष्ठिर शिशु सम रोये।
अश्रुविन्दु बरसाय, युगल पद पङ्कज धोये॥
पांडु पुत्र पद पास में, पग पकरें रोवत निरखि।
बोले उनते पितामह, नन्दनँदन की ओर लखि॥

भीष्म पितामह द्वारा श्रीकृष्ण महिमा वर्णन

[३३]

स देवदेवो भगवान् प्रतीक्षताम्,
कलेवरं यावदिदं हिनोम्यहम्।
प्रसन्नहासारुणलोचनोल्लसन्—
मुखाम्बुजो ध्यानपथश्चतुर्भुजः ॥*

(श्री भा० १ स्क० ६ अ० २४ श्लो०)

छप्पय

जिन्हें सारथी सुहृद सखा सेवक तुम मानों।
उन्हें सगुण साकार सर्व स्वामी करि जानों॥
कैसे-कैसे कठिन काज सब करे तुम्हारे।
भाववश्य भगवान् भक्त भय हरने हारे॥
कमठ अण्ड सेवे सदा, भाव रखें त्यों दास में।
दर्शन देवें-दयानिधि, आए सेवक पास में॥

यद्यपि प्रेम प्रकट करने की वस्तु नहीं है। हृद्गत् भावों को भाषा यथावत् व्यक्त करने में असमर्थ है। फिर भी यह प्राणी इतना अधूरा है, कि वह अपने हृद्गत् भावों को रोक

* भीष्म पितामह भगवान् से प्रार्थना करते हैं—"हे देव ! मैं अब शरीर छोड़ना चाहता हूँ। जब तक मैं शरीर न छोड़ूँ तब तक

नहीं सकता। अवर्णनीय प्रेम का वर्णन करने को विवश हो जाता है। न व्यक्त होने वाले भावों को व्यक्त करने की व्यग्रता होती है। जैसे हमको जिससे ईर्ष्या होती है उसकी निन्दा करने और सुनने से हृदय में एक प्रकार का सुख होता है, उसी प्रकार जो हमारे प्रेमास्पद हैं, जो हृदय की कोठरी में हमारे साथ भाव शान्ति से निवास करते हैं, जो एकान्त में मन से मन मिलाकर घुल-घुल कर प्रेम की सरस बतोड़ियाँ करते हैं, उनकी प्रशंसा सुनने से हृदय में आनन्द की लहरें उठने लगती हैं। उनकी स्तुति करने से एक प्रकार का आत्म सन्तोष सा होता है। उनकी प्रशंसा करने में प्रसन्नता, गुणगान करने में चित्त प्रसाद और उनके यश वर्णन में अन्तःकरण उल्लास से भर जाता है। चित्त चाहता है—यदि सहस्रों जिह्वा हों, तो रात्रि दिन इसी प्रकार इनका यशगान करते रहें।

भीष्म पितामह के सर्वस्व श्रीकृष्ण ही थे। शरशैया पर पड़े हुए भी उनका चित्त परमपुरुष पुरुषोत्तम के पादपद्मों में ही लवलीन रहता था, वे अपनी वेदनापूर्ण वाणी से उन्हीं का साक्षात्कार करते और उनसे भाँति-भाँति की बातें करते रहते अन्तःकरण में उनके सुखदस्पर्श का अनुभव करके, उनके रोमांच हो जाते और वे सदा उन्हीं के भाव में भावित रहते। जिनका अन्तःकरण में सदा ध्यान करते रहते थे, वे सर्वत्र वास करने वाले वासुदेव अपना बड़प्पन छोड़कर मृत्यु

आप अपनी उसी बाकी छटा में, उसी प्रसन्न हास घरुए नयन युक्त उल्लासित मुखारविन्द चतुर्भुजी मूर्ति से मेरे ध्यान पथ में स्थिर रहें। मेरे मन मन्दिर से चन्चलतावश भाग न जायँ।"

के समय मुझे सशरीर साक्षात् प्रत्यक्ष दर्शन देने आये हैं—यह स्मरण करते ही भीष्म जी गद्-गद् हो उठे। उनकी आँखों के अश्रुओं का वेग वर्षा की गङ्गा-यमुना के समान हो गया और वे सिसक-सिसक कर सरल शिशु की भाँति रोने लगे। श्यामसुन्दर ने अपने पीताम्बर से उनके आंसुओं को पोंछा और बड़ी ममतापूर्ण वाणी में बोले—"पितामह ! देखो, ये तुम्हारे पौत्र पांडव आये हैं। इन्हें कुछ अन्तिम उपदेश दीजिये। इन्हें राजकाज समझाइये। अपने उत्तम उपदेशों से धर्मराज के शोक को दूर कीजिये।"

रुँधी हुई वाणी से वह बूढ़ा बालक बिलखते हुए बोला—"वासुदेव ! देख रहा हूँ मैं सब, कौन किसका पौत्र, कौन किसका पितामह, सबके एकमात्र स्वामी तो हे देवकीनन्दन आप ही हैं। आपके सम्मुख मैं क्या कह सकता हूँ। ये पांडव ही संसार में भाग्यशाली हैं, जिन पर आपका इतना अधिक स्नेह है। संसार में पांडवों का ही जन्म सार्थक है जिनके रक्षक, स्वामी, सेवक सभी श्यामसुन्दर ही है। मैं अपने को भी धन्य मानता हूँ कि चराचर जगत् के जो पिता, पितामह प्रपितामह हैं वे मुझे मुँह भर कर पितामह कहते हैं और जिनके पादपद्मों की पराग के लिये ब्रह्मादिक देवता भी तरसते रहते हैं वे मेरे पैरों मे सिर रखकर श्रद्धा से प्रणाम करते हैं। मुझसे वड़ा भाग्यशाली संसार में कौन होगा, जिसकी मृत्यु के समय स्वयं साक्षात् जनार्दन उपस्थित हों।" इतना कहकर पितामह चुप हो गये और उनके नेत्र बहने लगे।

अपने भाइयों सहित धर्मराज शिष्य, सेवक और सूतों के सहित समस्त ऋषि-मुनि गङ्गापुत्र भीष्म को घेरे बैठे थे। सफेद

स्वच्छ वस्त्र पहिने, सफेद माला धारण किये, सफेद दाढ़ी मूँछ और केशवाले पितामह बाणों के ऊपर उसी प्रकार शोभित होते थे, मानों भोजपत्र के वन में कोई हिमालय का शिखर टूट कर गिर गया हो, और उसके : . . . उसे अधर मे ही रोक लिया हो। नीलम... के शिखर के समान श्यामसुन्दर उनके सिर के समीप बैठे थे पाँचों पांडव पादपद्मों से सटे इस प्रकार बैठे थे, मानों कमलो के सहारे से शीत से ठिठुरे पाँच पक्षी बैठे हों चारों ओर बैठे हुए ऋषि मुनि ऐसे ही शोभित होते थे, जैसे अमरनाथ के शिवलिंग को अथवा केदारनाथ के शीतकालीन शिखर को घेरे ८८ हजार ऋषि बैठे हुए हों। समुद्र के समान गम्भीर और हिमालय के शिर के समान निश्चेष्ट पड़े हुए भीष्म के मुख कमल की ओर सभी एकटक निहार रहे थे। उस समय पक्षियों ने भी बोलना बन्द कर दिया था। सर्वत्र शांति का साम्राज्य छाया हुआ था। प्रकृति स्तब्ध थी मानों भीष्म के अवसान समझ कर उसने भी उनका अंतिम उपदेश सुनने के लिये मौन व्रत धारण कर लिया हो! उसी नीरवता को भंग करते हुए, मेघ गंभीर वाणी से रुक-रुक कर कष्ट के सहित पितामह, पांडवों को लक्ष्य करते हुए अपने आप ही बोले—मानों वे आकाश से बातें कर रहे हों। उनकी आँखें बार-बार अश्रुपूर्ण हो जाती और उन्हें श्यामसुन्दर अपने पीताम्बर से पोंछ देते और वे तत्काल ही फिर भर जातीं।

पांडवों को सम्बोधित करते हुए उन्होने कहा—"पांडु के पुत्रों! देखो, मैं सदा से यही सुनाता आया हूँ, कि धर्म करने से सुख मिलता है और पाप करने से दुख किन्तु तुम्हारे सम्बन्ध मे मैं विपरीत ही बात देखता हूँ तुम सब धार्मिक हो

हीं हो. धर्म की सन्तान हो। ये युधिष्ठिर तो साक्षात् धर्म के पुत्र ही हैं, मूर्तिमान् धर्म ही है। इतना सब होने पर भी तुमने कितने-कितने क्लेश सहे, दुष्टों ने तुम्हें कैसे-कैसे दुख पहुँचाये, तुम सदा राज्य से भ्रष्ट होकर अनाथों की तरह इधर-उधर भटकते ही रहे। इसमे मैं किसी को दोष नहीं देता, सब काल की महिमा है। नहीं तो तुम सब निर्दोष थे, धर्म से तुमने अपना मन नही हटाया, गुरुओ की वृद्धों की, श्रद्धा सहित सेवा सुश्रूषा की, सर्वान्तर्यामी श्र कृष्ण का साहरा लिया, फिर भी जो कष्ट तुम्हें कभी भी नही सहन करने चाहिए थे, उन कष्टों को सब ने सहा और दु ख से दिन बिताये।

क्या भगवान् की लीला है? मेरी पुत्र वधू कुन्ती, महाराज भोज की पालिता प्यारी पुत्री, सदा महलों में सुख से पाली-पोसी गई, राजाओं के भी महाराज पांडु के साथ उसका विवाह हुआ। जैसे एक सुन्दर सरोवर से कमलिनी दूसरे सुन्दर सरोवर में सावधानी के साथ लाई जाय, उसी प्रकार वह मेरे द्वारा बड़े आदर से शूरसेन देश से हस्तिनापुर लाई गई थी। हम सबने भी उसे राजरानी बना कर उसका यथोचित स्वागत तथा सम्मान किया, किन्तु काल की कराल गति के कारण उसके प्यारे पति परलोकवासी हो गये। तुम सब बहुत छोटे-छोटे बच्चे थे। अरण्यवासी मुनि दयावश तुम सब को मेरे पास लाये। तुम सब मुझे ही अपना पिता समझते और अपने धूलि भरे हुए शरीरों से, मेरे सब सफेद वस्त्रों को धुलि धूसरित बना देते थे और प्रेम मे 'पिता पिता' कहकर पुकारते थे। तब मैं तुम्हारा मुँह चूम कर कहता—'पुत्रो! मैं तुम्हारा पिता नही,तुम्हारे पिता का पिता हूँ। मुझे पितामह कहा करो,तब से तुम सब लोग मुझे पितामह, पितामह कहकर बुलाने

लगे। कुन्ती अपने पति के असह्य वियोग को तुम सब का मुँह देखकर भूल गई थी। सदा सुख में ही जिसका लालन पालन और पोषण हुआ है, उस पुत्रवती कुन्ती ने भी तुम्हारी उसी तरह रक्षा की, जैसे पक्षियों की माँ अपने अंडों को छाती से लगाकर रक्षा और वृद्धि करती है। तुम सब अनजान थे, तुम्हें लिये हुए वह उसी तरह दुःख के सहित वनों और जंगलों में मारी-मारी फिरी, जिस प्रकार यूथपति के मर जाने पर हथिनी अपने बच्चों को लेकर इधर-उधर घूमती है।

मैं यह बात मरते समय कैसे कहूँ, कि तुम्हें ये सब क्लेश दुर्योधन के कारण सहन करने पड़े। भैया, कौन किसे दुःख-सुख दे सकता है। इस प्रकार तुम्हारे कष्ट के कारण को मैं तो कालकृत ही मानता हूँ। ये काल रूप भगवान् कब, किससे, कहाँ, क्या कराना चाहते हैं, इसे कोई कह नहीं सकता। बड़े-बड़े विद्वान, ज्ञानी, ध्यानी मुनि भी काल की चेष्टाओं को यथावत् समझने में असमर्थ हैं। प्रायः लोग कह देते हैं—"अजी, ये तो अपने पापों का फल भोग रहे हैं, जब कोई पराजित होकर दुखी होता है. तो उसकी उपेक्षा करते हुए कहते हैं—"निर्बल की यही दशा होती है। बल के बिना विजय प्राप्त होती ही नहीं।' कोई कहते है—"कलाकौशल अस्त्र-शस्त्र की चतुरता से ही सुख प्राप्त होता है।' किसी किसी का मत है—"सच्चे सहायक के बिना ही क्लेश सहन करने पड़ते हैं। यदि सर्व समर्थ सच्चा सहायक साथ हो तो मनुष्य को कभी क्लेश हो ही नहीं कोई-कोई कहते हैं—'समुचित साधन सामग्री से ही सुख मिलता है।' किन्तु तुम लोगों के सम्बन्ध में इनमें से एक भी बात का मैं अभाव नहीं पाता, तुम्हारे पास ये सभी वस्तुएं उत्तम से उत्तम उपस्थित थीं।

पहले धर्म को ही लो, जिसे सुख का मूल कहते हैं। तुम्हारे यहाँ धर्म की क्या कमी थी। साक्षात् धर्मावतार युधिष्ठिर तुम्हारे बीच में सदा उपस्थित रहे। जिनका मन स्वप्न मे भी अधर्म की ओर जाने वाला नही है। अब रही बल की बात, सो, भीमसेन के सदृश संसार में बलवान् कौन होगा, जो गेंद की तरह हाथियों को उठाकर आकाश में फेंक देता है और फिर बीच में ही उन्हें हाथों में गेंद की भाँति ले लेता है, जो महावेगवान् वायु का औरस पुत्र है।

कलाकौशल के द्वारा भी सब को वश में करके मनुष्य सुख प्राप्त करता है। सो, अर्जुन के सदृश सर्व अस्त्र-शस्त्र का ज्ञाता ससार में दूसरा कौन होगा? जिसको सहायता की अपेक्षा स्वर्गलोक मे इन्द्र तक को अपेक्षित है। निवात कवच असुर, देवताओं से भी अवध्य थे, उन्हे उसने अमोघ गाँडीव धनुष के द्वारा मारकर यमपुर पहुँचा दिया, जो इन्द्र के प्रिय पुत्र हैं। एक ही बाण में त्रैलोक्य का संहार करने वाला विश्वविजयी जिसके पास गांडीव धनुष है इतना सब होते हुए भी वही अर्जुन झोली बनाकर भिकारी की तरह घर घर से, एक दो दिन नही १२ वर्षों तक मुट्ठी-मुट्ठी अन्न की याचना करते रहे और मुट्ठी भर अन्न की आशा से कृपण गृहस्थियों के द्वार पर खड़े रहे। इन सब को देखकर कौन कह सकता है कि कलाकौशल और समुचित साधन सामग्री के द्वारा मनुष्य सदा सुखी रह सकता है।

अब रही, सहायक की बात। मनुष्य एक छोटे से राज्य कर्मचारी का सहारा पाकर, संसार में अपने को सर्वश्रेष्ठ समझने लगता है। सो, इनके सहायक तो सम्पूर्ण संसार के

स्वामी, सर्व समर्थ, सच्चिदानन्द स्वरूप, साक्षात् श्यामसुन्दर ही थे, इनसे बढ़ कर सहायक कौन हो सकता था ? ये इनके सहायक ही नहीं थे—सखा, स्वामी, सुहृद, सेवक सभी कुछ थे । इतना सब होने पर भी तुम दुःख में पड़े वन-वन भटकते फिरे, नाना क्लेशों को सहते हुए घूमते रहे । इससे तो मैं इसी परिणाम पर पहुँचा हूँ कि काल की गति दुर्निवार है । वे काल इन श्रीकृष्ण से कोई दूसरे देव हों, सो बात नहीं । काल स्वरूप ये ही कृष्ण-वर्ण के सबको अपने ओर कर्षण करने वाले श्रीकृष्ण ही हैं । इन्हें कब, किससे, क्या करना है इसे कोई बिना इनकी कृपा के जान ही नहीं सकता । तुम्हें ये मेरे पास किस लिये लाये हैं ? तुमसे, मुझसे ये क्या कौतुक कराना चाहते हैं ? इसे तुम अभी नहीं जान सकोगे ।"

समीप में ही बैठे श्यामसुन्दर मुस्कुराते हुए बोले—"पितामह ! मेरी कौन, सुनता है ? देखिये, दुष्ट दुर्योधन से मैंने बार-बार कहा—'सन्धि कर ले । उसने मेरी बात नहीं मानी । अब इन धर्मराज से कितने दिनों से कह रहा हूँ—धर्म पूर्वक प्रजा का पालन करो, सो ये मानते ही नहीं । सदा शोक सागर में निमग्न रहते हैं । आप ही बताइये, शोक करने से इनके मरे हुए भाई अब स्वर्ग से लौट सकते हैं । मैं तो इनसे छोटा ही ठहरा । छोटों की बात बड़े मानते ही नहीं । छोटा होना ही बड़ा अपराध है । छोटों को सदा बड़ों की सेवा में ही लगा रहना पड़ता है और बार-बार यही सुनना पड़ता है 'अभी तुम बच्चे हो, तुम इस बात को क्या समझो ?, यह परम्परा ऐसी चली आती है, कि जो हमसे बड़े हैं वे हमें बच्चा कहते हैं । अपने से छोटों को हम भी इसी तरह कहते हैं । व्यासजी आपको डाँटते हैं, आप धर्मराज को डाँट सकते हैं और वहीं अधिकार

धर्मराज का मेरे ऊपर है। अतः मेरी बात तो ये अनसुनी कर देते हैं, आप इन्हें राज काज करने की आज्ञा दें।"

भगवान की बात सुनकर पितामह हँसे और कहने लगे— 'श्यामसुन्दर ! तुम से बड़ा कौन हो सकता है ? तुम बड़ों के भी बड़े हो और अपनी इच्छा से छोटों से भी छोटे बन जाते हो। तुम्हारी यह बान है, कि अपने भक्तों को सदा सम्मान देते दिलाते रहते हो। अपने सम्मान से तुम उतने सन्तुष्ट नहीं होते जितने अपने सेवक के सम्मान से सन्तुष्ट होते हो। अपनी कीर्ति तुम्हें उतनी प्रिय नहीं, जितनी अपने भक्तों की प्रिय है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यही है, कि आप निग्रह अनुग्रह करने में सर्व समर्थ होने पर भी धर्मराज को मेरे पास धर्म शिक्षा दिलाने लाये है। वेद आपकी निःश्वास हैं, सभी शास्त्र आपके हृदय से उत्पन्न हुए है। आपके सामने कोई कह ही क्या सकता है, किन्तु आप तो संसार में मेरा यश फैलाना चाहते है। मुझे ही यह गौरव प्रदान करना चाहते है। धर्म-राज तो आपके आज्ञाकारी है। उन्हें आप जैसी आज्ञा करेगे उसका वे सिर श्रद्धा सहित पालन करेंगे।

हँसते हुए भगवान् बोले—"कहाँ करते हैं ? बाबा जी ! मुझे तो ये घुड़क देते हैं।"

सामने बैठे हुए धर्मराज ने आँखों में ही प्रेम के रोप से भगवान् को बरजा, कि आप पितामह के सामने मेरी शिकायत कर रहे हैं।" तब तो श्यामसुन्दर भीष्म की ओर देखकर कहने लगे—देखिये, पितामह ! आपके सामने ही मुझे डाँट रहे हैं। कहते हैं—'मेरी शिकायत पितामह से क्यों करते हो ?, अब बताइये, हम आप से ही न कहें, तो और हमारा बड़ा बूढ़ा कौन है ?"

वाणों की वेदना से व्यथित उस बूढ़े वीर के मुखमंडल पर हँसी की स्पष्ट रेखा दौड़ गई, वे बोले—'श्यामसुन्दर! मेरी बगल में होने से, मुझे आपके हास्ययुक्त प्रसन्न वदन' भली भाँति दर्शन नहीं होते, अतः आप मेरे सामने आ जायँ।' इतना सुनते ही पीताम्बर फहराते हुए श्यामसुन्दर ने अबोध बालक की भाँति पितामह की आज्ञा का पालन किया। वे उनकी दृष्टि के सामने ही—उनसे सटकर, उनके अङ्ग से अङ्ग मिलाकर—बैठ गये और अपना दुःख सन्तापहार कोमल कर कमल पितामह के वाणविद्ध अङ्गों पर शनैः शनै फिराने लगे। तब पितामह ने धर्मराज युधिष्ठिर से कहा—"बेटा युधिष्ठिर! दूर होने से मुझे बोलने में कष्ट होता है। तुम यहाँ मेरे पास आजाओ।" इतना सुनते ही परो के पास बैठे हुए धर्मराज पितामह की बगल में आकर बैठ गये। तब तो श्यामसुन्दर कहने लगे—"शास्त्रों का यह वचन है कि बिना वृद्ध के सभा शोभा नही देती, मुझे सत्य ही प्रतीत होता है। वृद्धो के बिना तथ्यातथ्य का, नीति अनीति का, सदाचार और मर्यादा का यथावत् ज्ञान बालक या युवक पुरुप रख ही नही सकता। इसी समय मैंने एक अविनय कर डाली, सम्राट् से ऊँचा बैठ गया। मेरी इस त्रुटि का मार्जन वृद्ध पितामह ने कैसे कौशल से कर दिया।"

इस पर धर्मराज और भी असन्तुष्ट हुए। वे अत्यन्त प्रेम भरे कोप के स्वर मे कहने लगे—"आपके लिये तो ससार मे कुछ शोक मोह की बात है ही नही। आप तो दुख, शोक संताप से सदा रहित ही बने रहते है, किन्तु हम तो संसारी हैं। हमें तो दुःख भी होता है, हर्ष शोक भी होता है। हँसी के समय हँसी अच्छी लगती है। हर समय की हँसी ठीक नहीं।"

पितामह धर्मराज को बरजते हुए बोले—"ना, बेटा ! ऐसे नही कहते हैं। तुम इतने दिन साथ रहे, फिर भी तुम इसके प्रभाव से अभी तक पूर्णरीत्या परिचित नहीं हुए।"

धर्मराज बोले—"इनका प्रभाव ही समझता होता तो केवल इस अनित्य शरीर के पालन पोषण के लिये. अपने करोड़ों सगे सम्बन्धियों और भाई बन्धुओंका वध क्यों करता ? मैं तो इन्हें इतना ही जानता हूँ, कि मेरे मामा वासुदेव के पुत्र हैं, मेरे छोटे भाई अर्जुन के सारथि हैं और मेरे रक्षक, कृपालु और भयत्राता हैं।"

पितामह बोले—"हाँ, ये तो सब हैं ही किन्तु ये इतने ही नही हैं, इससे भी और अधिक है। अर्जुन का सारथ्य इन्होंने प्रेम के वशीभूत होकर ही किया है। तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न होकर ही ये हस्तिनापुर तुम्हारे दूत बनकर गए थे। सेवक भृत्य का कार्य इनके अनुरूप न होने पर भी तुम्हारे स्नेहवश इन्होंने उसे प्रसन्नता के साथ किया। तुम क्या,बड़े बड़े ब्रह्मादिक देवता भी इनके सम्मुख सदा हाथ बाँधे आज्ञा की प्रतीक्षा में खड़े रहते हैं। इतना होने पर भी ये तुम्हारे सेवक, पहरेदार, मंत्री, दूत, भृत्य, सारथि सब कुछ बने। यह सब करने पर भी इनके महत्व में कोई अन्तर नही आया। ये आकाश की भाँति उसी प्रकार निर्मल निर्लेप बने रहे।"

धर्मराज बोले—"महाराज, इन्हें आप आदि पुरुष, नारायण, निर्लेप, अज, अविनाशी बताते हैं, फिर इन्होने वृष्णिवंश में अवतार क्यों धारण किया ?"

आँखों में आँसू भरकर पितामह बोले—"बस यही तो इनकी अद्भुत अचिन्त्य क्रीड़ा है. इसी को देखकर तो

अज्ञानी मोहित हो जाते हैं । वे इसी कारण इन्हें व्यवहार कुशल, मायावी, कूटनीतिज्ञ, सामान्य पुरुष समझने लगते हैं। अपनी मोहिनी माया का आश्रय लेकर—गूढ़ रूप से छिप कर—कपट से इन्होंने नर रूप धारण कर लिया है ।

धर्मराज हँसते हुए कहने लगे—"तब तो महाराज ! ये बड़े मायावी हैं । तभी तो इन्होने मेरे नाकों दम कर रखा है। संसार को अपने संकेत पर नचा रहे हैं । लोग रोते हैं चिल्लाते हैं, दुख करते है, किन्तु ये उसी तरह सदा मुस्कुराते रहते हैं। इनके मुख-मण्डल पर कभी मैंने म्लीनता देखी ही नहीं। दिन रात्रि वह पूर्ण चन्द्र के समान, शारदीय कमल के समान खिला ही रहता है । ये अपने त्रैलोक्य सुन्दर हास्य से सभी का मन अपनी ओर खींचते रहते हैं ।"

पितामह बोले-"भैया, इनके लिये शोक विषाद की क्या है ? पर्दे के भीतर सूत्रधार शान्त उदासीन बैठा रहता है। उसके नाटक को देख कर दर्शक कभी हँसने लगते हैं, कभी करुणा के प्रसंग पर आँसू बहाने लगते हैं । सूत्रधार शान्त बैठा सब देखता है । वह कभी दर्शकों के साथ हँसता, रोता सा भी प्रतीत हो, तो उसके हँसने रोने में और दर्शकों के हँसने रोने में बड़ा अन्तर है । संसारी नाट्य-स्थली के सूत्रधारों को मान प्रतिष्ठा के लिये हर्ष शोक का होना संभव भी है किन्तु इस जगत् नाटक के सूत्रधार श्यामसुन्दर तो, हर्ष शोक से सर्वदा परे ही हैं । इसलिये भैया, अब तुम इनकी आज्ञा पालन करो । जैसा ये कहें वैसा करो । दुःख सुख सब इन्हीं भगवान् वासुदेव के अधीन हैं । दैवरूप से ये ही सब को काल की प्रेरणा द्वारा कर्मों का फल भुगवाते हैं । तुम इसे इनकी ही प्रेरणा समझकर

अनाथ प्रजा का प्रेम के साथ पालन करो। भरत वंश में तुम्हीं ज्येष्ठ हो, समर्थ हो, विजयी हो, पराक्रमी हो, धर्मात्मा हो, प्रजावत्सल हो। प्रजा तुमसे हार्दिक प्रेम रखती है। उसका पुत्रवत् पालन करो और इस मोहजनित शोक का परित्याग करो इन अहङ्कार हीन, सर्वात्मा, समदर्शी, सर्व-शुद्धि, अद्वितीय ईश्वर में विषमता नहीं है। ये कच्छ, मच्छ, सूकर बन कर भी ज्यों के त्यों बने रहते हैं। भक्तों के अधीन होकर ही ये उनके पुत्र, सेवक, सारथि सब कुछ बन जाते है। दूर कहाँ जाते हो? अभी देख लो, मुझ दीन, हीन साधन विहीन, कंगाल के ऊपर कृपा करके ये यहाँ मरते समय मुझे अपने देव दुर्लभ दर्शन देने दौड़े आये।

योगी लोग इनके एक बार दर्शनों के लिये सहस्रों युग तपश्चर्या करते हैं। अनन्त काल तक जप तप पूजा पाठ करने का एक मात्र उद्देश ही यह है, कि अन्त समय श्यामसुन्दर के सुमधुर नामों का इस जिह्वा से उच्चारण हो जाय। मन में इनकी यह त्रिभंग ललित, टेढी, काले-काले घुंघराले बालों वाली विश्वमोहिनी मूर्ति एक बार आ जाय तो हमारे सभी साधन सफल हो जायँ। अन्त समय में जिनके नाम का संकीर्तन करने से, मन में भी भावमयी जिनकी छटा आने से सभी कर्म बन्धनों से छूट जाते है, वे भगवान् मुझ क्षत्रबन्धु के सम्मुख स्वयं साक्षात् साकर रूप से, इन चर्म चक्षुओं के सामने हँसते हुए आकर उपस्थित हो गये हैं। यह सौभाग्य किसी साधन के द्वारा साध्य नहीं, यह इनकी एक मात्र कृपा के ही ऊपर अवलम्बित है।"

धर्मराज आँखों में आँसू भर कर बोले—"पितामह! हम सब प्रकार अनाथ हो गये हैं। अब आप भी हमें परित्यग करके

परलोक पधारने को प्रस्तुत हैं। हम ऐसे अभागे रहे, कि पिता बाल्यकाल में ही स्वर्गगामी हुए। उनकी कुछ भी सेवा शुश्रूषा न कर सके। आप हमारे वृद्ध पितामह थे, प्राणपन से हमें आपकी इस वृद्धावस्था में सेवा करनी चाहिये थी, सो वह न करके हमने आप को अन्याय से आहत करके शरशैया पर सुला दिया। प्रभु ! हमसे अधिक पापी कौन होगा ? हम गुरु जनों की कुछ भी सेवा न कर सके। अब इस अन्तकाल में परलोक पधारते समय यदि आप कोई सेवा हमें बतावें, कोई आपकी अन्तिम अभिलाषा हो, तो उसे प्राणपन से पूर्ण करने का हम प्रयत्न करेंगे।"

रुँधे हुए कंठ से अश्रु विमोचन करते हुए, बाणों से विद्ध वृद्ध पितामह, अपनी वेदनापूर्ण वाणी से रुक-रुक कर कहने लगे—"कुन्ती नन्दन ! आज तुम्हें समुद्र पर्यन्त पृथ्वी का एक छत्र सम्राट देखकर मेरी सभी अभिलाषायें पूरी हो गईं। तुम सब श्रीकृष्ण की कृपा से दुःख सागर से पार हो गये, यही मेरे हर्ष के लिये पर्याप्त है। फिर भी तुम यदि मेरी कोई अन्तिम अभिलाषा पूर्ण करना चाहते हो,तो वह एक ही है।"

अत्यन्त ही उत्सुकता और उल्लास के स्वर में धर्मराज ने कहा— हाँ, हाँ, प्रभु ! हमें आज्ञा दीजिये, हम कठिन से कठिन कार्य को करके भी, आपके मनोवांछित पदार्थ को आपके पाद पद्मों में प्रस्तुत करके आपकी इच्छा पूर्ति करेंगे।"

पितामह बोले—"यदि मेरी अन्तिम इच्छा पूरी करना चाहते हो, तो वह एक ही है। वह यह कि तुम अर्जुन के सारथि, अपने सखा, सम्बन्धी, मन्त्री बने हुए इन श्यामसुन्दर से मेरी ओर से यही प्रार्थना कर दो, कि जब तक मैं अपने

[illegible]ख भौतिक शरीर का परित्याग न करूँ, तब तक वे इसी प्रकार पीत पट फहराते हुए वनमाला धारण किये हुए, शारदीय कमल सदृश विकसित नेत्रों से मेरी ओर देखते हुए, मंद मंद मुस्कराते हुए, चतुर्भुज रूप से मेरे सम्मुख ही उपस्थित रहें। इन्हें देखते हुए, इनका ध्यान करते हुए, इनके जगन्मंगल नाम को उच्चारण करते हुए, मैं इस शरीर का परित्याग करना चाहता हूँ। अब मुझे बहुत विलम्ब नहीं है। शीघ्र ही शरीर छोड़ दूँगा।"

हँसते हुए भगवान् वासुदेव बीच में ही बात काटते हुए बोले--'पितामह ! इसके लिये आपको धर्मराज से कहलाने की आवश्यकता न पड़ेगी। मैं तो आया ही इसी लिये हूँ, कि जिन प्राणों को लोग अत्यन्त दुःख के साथ विवश होकर विलखते हुए छोड़ते हैं, उन्हें आप स्वेच्छा से हँसते हुए कैसे परित्याग करेंगे? जैसे सर्प स्वेच्छा से अपनी केंचुली छोड़ कर और अधिक चमकीला बन कर उसकी ओर बिना देखे ही भाग जाता है, उसी प्रकार आप इस नश्वर पञ्च भौतिक देह का त्याग कर, देदीप्यमान दिव्य शरीर से किस प्रकार विमान पर चढ़ कर देवलोक जायेंगे—यही मेरे मन में बड़ी उत्कंठा है। मुझे आपकी इच्छा मृत्यु की बात पर बड़ा कुतूहल हो रहा है। मैं उस दुर्लभ दृश्य को देखने के लिये ही दौड़ा हुआ आया हूँ।"

भगवान् की इस कृपालुता को स्मरण करके वहाँ बैठे सभी ऋषि मुनियों सहित भीष्म पितामह आनन्द में विभोर हो गये। तब वहाँ बैठे हुए समस्त ज्ञानी ऋषि मुनियों ने धर्मराज युधिष्ठिर से कहा—'राजन् ! अब ये शांतनुसुत गांगेय अपने पाँच

भौतिक शरीर का परित्याग करना चाहते हैं। इनके समान ज्ञानी, ध्यानी, नीति विशारद, भक्तितत्व के ज्ञाता, इस भूमण्डल पर दूसरे नहीं है। अतः आप इनसे नाना धर्मों को पूछ लें। यहीं भगवान् व्यास भी बैठे हैं। वे उन सभी उपदेशों को संगृहीत करके उनका संसार में प्रचार और प्रसार करेंगे। नहीं तो इनका यह अमोघ ज्ञान--धर्म, नीति, आचार, विचार की समस्त विद्या-इनके शरीर के साथ ही नष्ट हो जायगी।"

ऋषियों की आज्ञा शिरोधार्य करके धर्मराज ने सरशैया पर शयन करते हुए गंगासुत भीष्म पितामह से; वर्ण और आश्रमों के धर्म, सभी पुरुषों के स्वाभाविक धर्म, वैराग्य प्रधान निवृत्ति मार्ग, कर्म प्रधान प्रवृत्त मार्ग, दानधर्म, राजधर्म, मोक्षधर्म, स्त्रीधर्म और भगवद् धर्म, इन सभी बातों को पृथक-पृथक सक्षेप और विस्तार के साथ पूछा। भीष्म ने भी भगवान की प्रेरणा से समस्त प्रश्नों का बड़ी ही सुन्दरता और सरलता के साथ किसी को संक्षेप में कहकर, किसी का विस्तार के साथ उत्तर दिया। उन्होंने सब को साधनों सहित और धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष सम्बन्धी अनेक इतिहास सुनकर दृष्टान्त देकर सभी विषयों को भली भाँति समझाया। सभी शंकाओं का शास्त्रीय युक्तियों द्वारा समाधान किया। इन सबका वर्णन भगवान् वेदव्यास ने अपने महाभारत नामक पचमवेद के 'शान्तिपर्व' में किया है।

यह सुनकर शौनकजी ने सूतजी से पूछा—"महाराज सूतजी! ऋषि मंडली से श्यामसुन्दर के सम्मुख धर्मावतार युधिष्ठिर के पूछने पर, वसु रूप से मानुष देह में आये हुए गंगापुत्र भीष्म ने जो धर्म कहे होंगे, वे तो अत्यन्त ही दिव्य

गे उन सबका हमारे सम्मुख आप विस्तार के साथ वर्णन कीजिए। ऐसे पवित्र संम्वाद को सुनने की सभी उपस्थित ऋषियो की अत्यधिक उत्कंठा है।

ऋषियों की ओर से शौनकजी के ऐसा कहने पर सूतजी बोले—"महाभाग यथार्थ ही वह सम्वाद बड़ा ही दिव्य है, उसमें सभी विषयों के प्रश्न और उत्तर हैं। उसे तो आपको पृथक ही महाभारत के प्रसंग में सुनना चाहिए। यहाँ भागवती कथा के प्रसंग मे उनका प्रश्न करना अनुकूल नहीं। वह उपदेश स्वार्थ,परमार्थ,इहलोक परलोक के सभी साधनों से मिला जुला है। उसमें परमार्थ की अपेक्षा नीति और व्यवहार की बातें बहुत है। जैसे राजनीति में साम, दाम, दन्ड, भेद आदि के वर्णन, काम्य कर्मो का वर्णन, स्त्रियों का स्वभाव, उनकी बड़ी-बड़ी विलक्षण बातें, उनके कर्तव्याकर्तव्य आदि-आदि बातों का विस्तार है। यहाँ तो प्रसंग केवल भगवत् सम्बन्धी कथाओं का ही है। आपकी आज्ञा है, कि सब शास्त्रों का सार सिद्धान्त, भक्त और भगवान् की ही लीला तथा गुण कर्मो का वर्णन करूँ अतः यहाँ उन नीति व्यवहार की बातों का अवसर नही है। हाँ, जो उसमें भगवद्धर्म है, उसका सार तो आगे उद्धव सम्वाद में सुनाऊँगा ही। इसलिए यहाँ मैं उसका विस्तार करना उचित नही समझता और यदि आपकी आज्ञा हो, तो मैं उसे भी सुनाने को प्रस्तुत हूँ।"

शौनकजी बोले—"ना ना, सूतजी! जब ऐसी बात है, तो उसे इस भागवती कथा के प्रसंग में कहने की आवश्यकता नही। हमें साम, दाम, दंड, भेद सुनकर क्या करना है? स्त्रियों के भी स्वभाव, धर्म हम क्या सुनें। हम सब तो ऊर्ध्वरेता बाल ब्रह्मचारी हैं। हम तो इन सबको भगवान् की माया समझ

कर दूर से ही प्रणाम कर लेते हैं। इनके स्वभाव धर्म और कर्तव्याकर्तव्य को तो वे ही सुनें, जिन्हें इनके साथ रहना हो, इनसे व्यवहार संपर्क रखना हो। अपने तो इन सब से दूर ही रहते है। हमें तो आप विशुद्ध कृष्ण कथा या उनके पद-पद्मों के मकरन्द के लोभी भक्तों के सुखद संवाद ही सुनाइये। हाँ, तो आगे क्या हुआ इसका कथन करें।"

सूतजी बोले—"आगे क्या हुआ ? भीष्मदेव ने भगवान् की बड़ी अद्भुत स्तुति की, भगवान् को देखते-देखते इस पाँच भौतिक शरीर का त्याग किया। इसे मैं आगे सुनाऊँगा। आप सब सावधानी के साथ श्रद्धा सहित श्रवण करें।"

छप्पय

है नटनागर नवल नित्य नाटक नव खेलें।
देखि दया के दृश्य दुःख दर्शक बहु झेलें॥
कब करवावें कहाँ कौन तें कैसो कारज।
भेद न जानें देव दैत्य दानव शंकर अज॥
अंतकाल में कृष्ण कहि, नर अघ तजि हरि पुर गये।
ते मम मृत्यु समय समुझि, स्वयं श्याम सम्मुख भये॥

पितामह का परलोक प्रयाण

(३४)

विशुद्धया धारणया हताशुभ—
स्तदीक्षयैवाशु गतायुधव्यथः ।
निवृत्तसर्वेन्द्रियवृत्तिविभ्रम—
स्तुष्टाव जन्यं विसृजञ्जनार्दनम् ॥१

(श्री भा० १ स्क० ६ अ० ३१ श्लोक)

छप्पय

भये अशुभ सब छीन शुद्ध मनमोहन धारे ।
शस्त्र शूल सब शान्त भयो प्रभु निकट निहारे ॥
इन्द्रिय वृत्ति विलास रुकी हरि हिय में आये ।
गद्‌गद् गिरा गँभीर गीत गोविन्द के गये ॥
मति हो मेरी कृष्ण में, गति हो गोवरधन धरन ।
चंचल चित चितवें चरन, रटि रसना राधा रमन ॥

ये मनस्वी, तपस्वी, यशस्वी धन्य हैं, जिनके मुख से मृत्यु काल में मनमोहन सुमधुर नामों का उच्चारण हो जाता है। फिर उनके भाग्य का तो कहना ही क्या, जिन्हें अन्तकाल में

---

१ विशुद्ध धारणा के कारण जिनके अखिल अशुभ क्षीण हो गये हैं। नयनाभिराम नन्दनन्दन के निरीक्षण से जिनकी समस्त शस्त्र व्यथा

उन काले कृष्ण की हृदय में मानसी झाँकी ... है। फिर जिनकी मृत्यु समझकर स्वयं साकर ... के सम्मुख श्यामसुन्दर अपने आप ही आकर उपस्थित हैं। उनके भाग्य के सम्बन्ध में, उनकी तपश्चर्या, साधन और भक्ति भाव के सम्बन्ध में कुछ कहना, मानों गिरा की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती को लज्जित करना है वे मूर्तिमान तप और धर्म हैं, साधना के साकर स्वरूप हैं, भक्ति भागीरथी की आत्मा ही हैं, वे जगद्वन्द्य, ब्रह्मादिक देवताओं के भी पूज्य और भगवान् के दूसरे स्वरूप ही हैं। हमारे भीष्म पितामह भी उन्हें भाग्यवान् भक्तों में से हैं। उनके पुत्र नहीं हुआ, किन्तु आज समस्त वेद शास्त्रों के मानने वाले उनके पुत्र तुल्य हैं। अपने पितरों को जलाञ्जलि देते समय सभी शास्त्रज्ञ पुरुष

वैयाघ्रपदगोत्राय शंतनुप्रवराय च।
अपुत्राय ददाम्येतत् जलं भीष्माय वर्मणे ॥
भीष्मः शान्तनवो वीरः सत्यवादी जितेन्द्रियः।
अद्भिरद्भिरवाप्नोतु पुत्र पौत्रोचितां क्रियाम् ॥*

दूर हो गई है। जिनकी समस्त इन्द्रियों का वृत्ति विलास निवृत्त हो गया है वे भीष्मजी इस शरीर को परित्याग करते समय जनार्दन श्रीयदुनन्दन की गद्गद कंठ से स्तुति करने लगे।

* वैयाघ्रपद जिनका गोत्र है, शान्तनु प्रवर है, उन पुत्र रहित क्षत्रिय भीष्म को मैं जलांजलि देता हूं। जो भीष्म शान्तनु के सुत हैं, सत्यवादी और जितेन्द्रिय है, वे इस जल के द्वारा जो पुत्र पौत्रों के जल देने से क्रिया होती है, उसे ही प्राप्त हों।

उन्हें कहकर अन्त मे तिल सहित अञ्जलि देते हैं। स्वयं श्याम-सुन्दर ने जिनकी समस्त आज्ञाओं का—भक्तवत्सल होने के कारण—बालकवत् पालन किया, उन महाभाग भीष्म के भाग्य की सराहना किन शब्दों में, क्या कहकर की जाय ?

धर्मराज के पूछने पर पितामह भीष्म ने उनके सभी प्रश्नों का उत्तर यथावत् दिया। देवकीनन्दन भगवान् वासुदेव की कृपा से उनके शरीर की समस्त शर-पीड़ा विलीन हो गई। शरशैया पर पड़े-पड़े वे ऐसा अनुभव करने लगे, मानो मैं पुष्प शैया पर सुख से सो रहा हूँ। उनके क्लम श्रम, वेदना, चित्त विभ्रम आदि सभी उपद्रव शान्त हो गये। निश्चल एकाग्र मति होकर धर्म उपदेश करते रहे। जब उपदेश करते-करते उन्होंने समझ लिया कि अब मेरे प्राण त्याग का समय आ गया है, तब वे उस कार्य से भी उपराम हो गये। स्वेच्छा मृत्यु वाले योगिजन जिनकी प्रतिक्षा में अपने प्राणों को अटकाय रहते हैं, वह उत्तरायण का उत्तम अवसर आकर उपस्थित हुआ। पितामह ने अपनी वेद-शास्त्र सम्मत बोलने वाली वाणी को विश्राम दिया। वे मौन हो गये, जिन्होंने युद्ध में बड़े-बड़े वीरों को बात की बात में यमपुर का द्वार दिखा दिया था, जिन्होंने प्रबल पराक्रमी योद्धाओं को हँसते-हँसते युद्ध में मार डाला था, जिनकी बराबरी का १८ अक्षौहिणी सेना में दूसरा बली वीर नहीं था, जो वृद्ध होने पर भी बड़े-बड़े युवकों के भी दाँत खट्टे कर देते थे। वे धर्म युद्ध में किसी से भी पराजित न होने वाले पितामह आज उसी तरह शांत हो गये जैसे तेल के समाप्त होने पर दीपक शान्त हो जाता है बोल बन्द होने पर उनकी अश्रु पूर्ण आँखें एकटक हो गईं। उनमें निमेष उन्मेष होना

बन्द हो गया। पलक न गिरने से उनके कमल नयन ऐसे प्रतीत होते थे, मानों मयूर के पख में बने नेत्र हों अथवा चित्र में लिखित नयनाभिराम दो सुन्दर आँखें हों। वे सामने बैठे हुए भगवान् वासुदेव की ही ओर निहार रहे थे। वासुदेव के अतिरिक्त उनकी दृष्टि में समस्त ससार शून्य सा हो गया था, वे पास में बैठे पांडवों और ऋषि मुनियों को भी नही देख सकते थे। उनकी दृष्टि तो आनन्दकन्द नन्दनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र के चरणारविन्दो मे अटकी हुई थी। कण्ठ में कफ आने से उनकी वाणी भली भाँति स्पष्ट नहीं निकलती थी। खाँसकर उन्होंने भगवान् की बड़े ही मर्मस्पर्शीय शब्दों में स्तुति की।

मुनियों! उस भीष्म स्तुति का एक-एक शब्द अमूल्य है। उन सब का भाव कहने लगूँ, तो मैं उसे ही कहता रह जाऊँगा। आगे की कथा का प्रवाह रुक जायगा। अतः मैं भीष्म स्तुति को यहाँ न कह कर प्रसङ्गानुसार स्तुति के प्रकरण मे फिर कहूँगा। यहाँ तो मैं कुछ स्वल्प शब्दों में उसका दिग्दर्शन मात्र ही करा कर आगे बढ़ूँगा।

उस समय भीष्म जी के नेत्रों के सम्मुख तो पीतपट धारी, बनवारी वैजन्ती माला धारण किये हुए स्वयं उपस्थित थे, किन्तु उनके हृदय पटल पर श्याम सुन्दर की वही रणांगण की अर्जुन के रथ को हाँकने वाले मनमोहनी मूर्ति नृत्य कर रही थी। जैसे नाटक की रङ्गभूमि पर एक के अनन्तर एक इस प्रकार सभी अङ्कों के दृश्य आते रहते है, उसी प्रकार युद्ध में भगवान् ने जो-जो लीलायें की। जो जो नाट्य किये, वे सब अन्तकाल में भीष्म के हृदय पटल पर आने लगे। कभी तो वे अपने सामने दौड़ते हुए यदुनन्दन को देखते, कभी वेग से

अर्जुन का रथ हाँकते हुए निहारते। कभी किसी योद्धा को मार ने के लिये अर्जुन को प्रेरित करते देखते। इस प्रकार श्याम सुन्दर की ही लीलाओं को चिन्तन करते हुए वे गद्गद् कण्ठ से स्तुति करने लगे।

भीष्म बोले—हे वासुदेव ! मैं इस शरीर का परित्याग कर रहा हूँ। हे गोपीजनवल्लभ ! मेरी दृष्टि तुम्हें छोड़ कर कहीं अन्त न जाय और दूसरे स्थान में उसके चिन्तन के लिये आपकी ललित लीलाओं से बढ़कर लावण्य युक्त कौन सा विमल और अत्यन्त लुभावना विषय होगा।"

हे घन श्याम ! अर्जुन के रथ को हाँकते समय रथ के पहियों से उड़ी हुए धूलि से आपकी काली-काली घुंघराली अलकावली धूलि धूसरित हो गई थी। उस समय मैंने अपना सब बल लगाकर तुम्हारे कवच को छिन्न-भिन्न कर दिया था, तुम्हारे सम्पूर्ण शरीर से रक्त की धाराये बह रही थी। अनेक योद्धाओं के बिन्दु उड़-उड़ कर तुम्हारे मुखमण्डल पर पसीनों के बिन्दुओं से मिले हुए वे ऐसे ही शोभित होते थे, जैसे मोतियों में, लाल के टुकड़े मिला दिये जायें। उस समय तुम बड़ी व्यग्रता से रथ को हाँक रहे थे। जिस प्रकार अत्यन्त रागासक्त गृहस्थी अपने बाल बच्चों की रक्षा आदि में लगा रहता है, उसी प्रकार तुम अर्जुन के रथ की रक्षा मे प्रवृत्त थे। वह तुम्हारी मनमोहनी ममत्व वाली मूर्ति मेरे मन मन्दिर में सदा निवास करती रहे।

आपने जब देखा, कि मैं निर्दयतापूर्वक सभी शत्रु सेना का सहार कर रहा हूँ, तब आप से नहो रहा गया और

अपने सखा अर्जुन से क्रोध करके आज्ञा के स्वर में बोले– "इस बूढ़े को मार डालो।" उसने जब आनाकानी की, तो आपने उसे अत्यन्त ही डाटा-डपटा और कहा–"यदि तू नहीं मारता, तो मैं मारूँगा इस बूढ़े व्याघ्र को!' उसी समय का क्रोध से पूर्ण वह तुम्हारा तमतमाता मुखमण्डल मेरे मन में सदा बसा रहे।

तुमने प्रतिज्ञा की थी—मैं संग्राम में शस्त्र ग्रहण न करूँगा।' मैंने प्रतिज्ञा की थी–'यदि मैं श्रीकृष्ण से शस्त्र न ग्रहण कराऊँ तो अपने को भरतवंशी शन्तनु का पुत्र कहना छोड़ दूँ। गङ्गाजी की कोख को कलुषित करने वाला कहलाऊँ।' भक्त और भगवान् की दो परस्पर में विरुद्ध प्रतिज्ञायें थीं। संसार आश्चर्य-चकित था कि भला भगवान् के सामने इस अल्प प्राण पुरुष की क्या शक्ति है, जो अपनी प्रतिज्ञा को पूरी कर सकें। किन्तु हे भक्त-वत्सल! उस समय आपने मेरी ही विजय कराई। अपने को आपने भक्तों से परास्त ही मानकर अपनी कृपालुता—भक्त-वत्सलता—का परिचय दिया।

उस समय आप अपनी प्रतिज्ञा को भूलकर रोष में भरकर अत्यन्त कुपित होकर मुझ आततायी के ऊपर रथ का पहिया लेकर बड़े वेग से टूट पड़े। जैसे कोई सिंह मतवाले हाथी पर टूटता है अथवा बाज अन्य पक्षी पर झपटता है। उस समय आपकी ये घुँघराली अलकें हिल रही थी, वनमाला वक्षस्थल पर लहरा रही थी, पीताम्बर पृथ्वी पर लटका हुआ घिसटता हुआ आ रहा था। अर्जुन आपको निवारण करने के लिये रथ से कूदकर आपके पैरों को पकड़े हुए था। उस समय उसे घसीटते हुए जब आप मुझ आततायी की ओर आये और मैंने हाथ

जोड़कर आपका स्वागत सत्कार किया। उसी तरह, हे दीनबन्धो! सदा मैं आपका स्वागत सत्कार करता हूँ। वही कृपा से भीगी हुई प्रेम रोप युक्त अनुपम छटा मेरे चित्त में सदा बसी रहे।

आप मेरे सम्मुख हैं—मेरे नेत्र आपकी माधुरी का पान कर रहे हैं, वाणी आपके गुणानवाद के गान मे लगी है। चित्त मे आपकी माधुरी मूरत बसी है, मन आपके ध्यान में मग्न है। अब मुझे और चाहिये ही क्या? अब मैंने सब कुछ पा लिया। अपने मनुष्य जीवन को सफल बना लिया, शरीर का सम्पूर्ण कर्त्तव्य कार्य कर लिया। अब तो आप मुझे अपने में मिला ले। अपने विश्ववन्दित चरणारविन्दों में सदा के लिये आश्रय दें।

इस प्रकार पितामह अनेक प्रकार से भगवान् की स्तुति करके भगवान में लीन हो गये। उनके शरीर त्याग करते ही सबके सब; शांत हो गये। वहाँ सर्वत्र सन्नाटा छा गया, जैसे सायंकाल कोलाहल करके वृक्षों पर बैठे हुए पक्षी अपने-अपने घोसलों में शांत हो जाते हैं। भीष्म के इस निर्याण को देखकर पृथ्वी और आकाश के सभी जीव परम विस्मित हुए। उन्होंने अपने योगबल से काल को वश में कर रखा था। उनकी इच्छा के बिना मृत्यु उनके पास भी नही फटक सकती थी। उनके शरीर त्याग करते ही पांडवों के सभी सेवक भेरी, दुन्दभी, पणव, गोमुख आदि वाद्यों को बजाने लगे। उधर देवताओं ने भी भीष्म के स्वागत में भाँति-भाँति के वाद्य बजाये। अनेक देवता, सिद्ध, चारण, गन्धर्व जो भीष्म के निर्याण को देखने के निमित्त अपने-अपने विमानों में बैठ कर

आकाश मे ही ठहरे हुए थे, उन्होंने भीष्म के शरीर प
नन्दन वन के पारिजात आदि वृक्षों के दिव्य पुष्पों की
वर्षा की। गन्धर्व अपने सुरीले कण्ठ से भीष्म के गुणगान
सम्बन्धी गीत गाने लगे। अप्सरायें नृत्य करने लगी। सिद्ध,
चारण साधु-साधु कह कर उनकी प्रशंसा करने लगे और
समुपस्थित ऋषियों और मुनियों ने भी उनके प्रति सम्मान
प्रदर्शित किया। सभी उनके निमित्त भगवान् के सुमधुर मङ्गल-
मय नामों का पाठ करने लगे। इस प्रकार पितामह ने अपनी
इहलौकिक लीला समाप्त की।

भीष्म की निर्जीव देह उसी प्रकार बाणों से विद्ध हुई चेष्टा
शून्य वहाँ की वही पड़ी रही, किन्तु उनकी कान्ति मलिन
नहीं हुई।

छप्पय

हे अनाथ के नाथ ! ज्ञान गीता के दाता।
हे अर्जुन के सखा ! सारथी, दुख के त्राता॥
हे बूढ़े की कठिन प्रतिज्ञा पूरन कर्ता।
हे ब्रज वल्लभ ! अखिल विश्व के हर्ता भर्ता॥
हरि हिय में धारन करें, करत विनय विह्वल भये।
कृष्ण! कृपालो! कृपानिधि, कहत भीष्म सुर पुर गये॥

भगवान् का द्वारका जाने का विचार

(३५)

पित्रा चानुमतो राजा वासुदेवानुमोदितः ।
चकार राज्यं धर्मेण पितृपैतामहं विभुः ॥१

(श्रीभा० १ स्क० ६ अ० ४६ श्लोक)

छप्पय

भये भीष्म जब शान्त कृष्ण पांडव पछिताये ।
दाह-ऊर्ध्व संस्कार करे कुल कर्म कराये ॥
सेवक स्वजन समेत हस्तिनापुर में आये ।
भये युधिष्ठिर भूप विविध विधि हरि समझाये ॥
सबको सब सन्तोष करि, श्याम सकुचि बोले वचन ।
जाउँ द्वारिका वहाँ भी, चिन्तित होंगे सब स्वजन ॥

काल की गति दुरत्यय है । उसे कोई मिटा नहीं सकता, अन्यथा नहीं कर सकता । कितने भी शूरवीर हों कितने भी ज्ञानी, ध्यानी, तेजस्वी, तपस्वी क्यों न हों, काल किसी का शील संकोच नहीं करता । जिसका, जिससे, जब तक, जितना, जहाँ,

---

१ तदनन्तर अपने चाचा धृतराष्ट्र के समझाने बुझाने से तथा श्रीकृष्ण के अनुमोदन करने से धर्मराज युधिष्ठिर अपने पिता पितामह से चले आये हुए राज्य को धर्मपूर्वक करने लगे ।

जैसा, सम्बन्ध होगा, उसका उससे, तब तक, उतना वहीं ही सम्बन्ध होकर रहेगा। जहाँ काल पूरा हुआ तुम अपने रास्ते, हम अपने रास्ते। नदी पार करने के लिये बहुत से नर नारी एकत्र होते हैं। नौका के छूटने में अभी कुछ समय शेष है, सभी घुल मिलकर बाते करते है। परस्पर स्वभावानुसार प्रेम और कलह भी करते हैं—'यहाँ तो रोटी बनाने को मेरी जगह है आपने चूल्हा क्यों बना लिया?' वाह जी, आपके बाप की जगह है, मैंने इसे स्वच्छ किया है। बस, झगड़ा हो गया। मारपीट तक की नौबत आ गई। रक्तपात भी कभी-कभी हो जाता है, दूसरी ओर, 'आप कहाँ जायँगे?' जी, मैं वत्स देश की राजधानी में जाऊँगा। 'आप कहाँ जायँगे?' 'मैं तो बन्धुवर, त्रिवेणी स्नान के ही लिये आया हूँ। अभी नौका खुलने में देर है।' आइये भोजन करलें।' जी मैं भोजन करके ही आया हूँ।' 'नही जी, थोड़ा तो करना ही पड़ेगा।' अच्छी बात है, आपकी आज्ञा शिरोधार्य्य है।'

दोनों मिल कर सगे भाई की तरह भोजन करते हैं, घुल-घुल कर बातें करते है। परस्पर पता ठिकाना लिखते हैं। बार-बार एक दूसरे को सावधान करते है—'देखिये, भूल न जाइयेगा—सन्देश भेजते रहें। कभी-कभी मेरे यहाँ अवश्य-अवश्य पधारें।' मल्लाहों ने पुकारा—'चलो, चलो, नौका खुलती है। समय हो गया, अब रुक नही सकता।' सभी उसमें जल्दी-जल्दी जाकर बैठते है, एक दूसरे को ढकेलते हैं—'अन्धे हो क्या? ऊपर ही चले आते हो? यहाँ कहाँ जगह है?, वाह जी तुम बड़े कहीं के चक्रवर्ती चले आये, मानों आपने नौका मोल ही लेली है। हमने, उतराई नहीं दी है क्या? ऐसे दूना लक्कड़ थे, तो अपनी अलग नौका करते।' "अजी

आपने उतराई दी है, तो क्या किसी के सिर पर चढोगे। आप तो, ऐसे बिगड़ रहे हैं मानों हम आपके राज्य में ही बसते हों। दूसरे समझदार वृद्ध लोग कहने लगते हैं – 'अरे, भैया! लड़ते क्यों हो, घड़ी भर की बात है, उस पार पहुँचे, कौन इसे सिर पर लाद कर ले जायगा?" मल्लाह इन बातों पर ध्यान ही नहीं देते। वे अपने डाँड़ लगाने में, बल्ली ठीक करने में पाल बाँधने में व्यस्त हैं। "बोल गङ्गा माई की जय।" नौका चलने लगी। बात कि बात में उस पार पहुँच गई! अच्छा जी राम-राम जी! राम राम साहब। अच्छा, भूलियेगा नहीं, राजी खुशी के समाचार देते रहें। बस, सबने अपना-अपना रास्ता पकड़ा। फिर कौन किसे समाचार देता है?

आये एकहिं घाट तो, उतरे एकहिं घाट।
अपने-अपने कर्म ते, ह्वै गये बारह बाट॥

भीष्मजी शान्त हो गये। सब के मुख म्लान हो गये। सब को अपने पूर्व कृत्यों पर पश्चात्ताप हुआ। पांडव बालकों की तरह रोने लगे। आज उनके पिता के पिता भी चल बसे। हाय हम अनाथ हो गये। काल की कैसी कुटिल गति है! भगवान् ने सब समझाया, धैर्य बँधाया। भीष्म पितामह के मृतक शरीर का सभी और्ध्व दैहिक कृत्य कराया। सभी उनके शव को बड़े ठाठ-बाट से, राजसी सम्मान के साथ गङ्गा तट पर ले गये। धर्मराज ने सोचा—ये हमारे कुल के सर्वश्रेष्ठ देवता हैं। ऐसा धार्मिक और दृढ़प्रतिज्ञ पुरुष संसार में दूसरा मिलना दुर्लभ है, जो इतने बड़े साम्राज्य को सम्हालते हुए भी उसके भोगों से सदा तटस्थ हो रहे। जल में रह कर

कमल की भाँति विषयों से उदासीन ही रहे। घर में रहते हुए भी, राज-काज करते हुए भी त्यागी, तपस्वी, संन्यासी की भाँति इन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन सदाचार के साथ बिताया। इसलिए इनका दाह-संस्कार ऐसे स्थान पर हो जहाँ आज तक कोई शव न जलाया गया हो। शुद्ध शव के लिए विशुद्ध भूमि ही चाहिए। गङ्गा किनारे कोसों तक भूमि शोधी गई, किन्तु कभी किसी को किसी प्रकार का सन्देह होने से वह छोड़ दी जाती थी। अंत में एक बड़े ऊँचे से टीले पर जिसमें बहुत से पेड़ खड़े थे, जो स्थान गुल्मलताओं से अच्छादित था—सबकी सम्मति से वहीं उनका दाह संस्कार करना निश्चित किया गया। भूमि शोधी गई, तृण गुल्म हटाये गये। लीप कर उस पर चिता बनाई गई। ज्योंही पितामह के प्राणहीन शरीर को उस पर रखा, त्योंही आकाश वाणी हुई कि इस स्थान पर इतनी लाख बार भीष्म का शरीर जलाया गया है। सभी आश्चर्य चकित होकर श्यामसुन्दर की ओर देखने लगे। तब मन्द-मन्द मुस्कराते हुए माधव बोले—"धर्मराज, इस संसार में नई तो कोई वस्तु है ही नहीं। घटाओं की पुनरावृत्ति का ही नाम इतिहास है वर्षा के बाद शरद, शरद के बाद हेमन्त, जैसे ये क्रमशः छः ऋतुएँ बीतती हैं, फिर वर्षा आ जाती है—यह आ जाने का क्रम अनादिकाल से लगा है, अनन्त काल तक लगा रहेगा। जब यह शरीर ही नया नहीं है, तो नई भूमि तुम कहाँ से लाओगे। यह तो ऐसे ही संसार का अनादि प्रवाह चल रहा है, इसमें कौन किसका पिता, कौन पितामह? आज जो पिता है, दूसरे जन्म में ही पुत्र बन जाता है। यह संसार ऐसे ही उलटता पुलटता रहता है। इसलिए अब आप शोक मोह छोड़ कर इस निर्जीव शरीर को जला दीजिये। अब

तो यह मिट्टी है, मिट्टी में मिल जाना है, इसके लिए अब अधिक विचार वितर्क करने की आवश्यकता नहीं।"

भगवान् के उपदेश से धर्मराज का शोक मोह दूर हुआ और उन्होंने शास्त्र विधि से पितामह की सभी पारलौकिक क्रियायें की पितामह का शरीर भी जलकर अग्निदेव ने भस्म बना दिया। सभी उनके गुणगान करने लगे। धर्मराज का हृदय शून्य सा हो गया। संसार की असारता उनके आंखों के सामने प्रत्यक्ष नाचने लगी। देखो, जीवित अवस्था में सभी राजा महाराजा, सेवक, सम्बन्धी पितामह से जिस शरीर का इतना सम्मान करते थे, उसका अन्तिम परिणाम दो मुठ्ठी राख ही हुआ।

आये हुए सब ऋषि मुनियों ने भगवान् की स्तुति की। उनके जगन्मंगल मधुरातिमधुर नामों का पाठ और गायन किया। फिर वे धर्मराज और भगवान् से अनुमति लेकर अपने अपने-हृदयो मे भव भय हारिणी श्री हरि की मूर्ति को धारण करके अपने-अपने आश्रमों को चले गये। इधर पांडव भी भगवान् की आज्ञा से अपने सगे सम्बन्धी और सेवकों के सहित गङ्गा तट से हस्तिनापुर में आ गये।

धर्मराज ने देखा उनके ताऊ धृतराष्ट्र और उनकी ताई गांधारी अत्यन्त ही शोक से व्याकुल है। तब धर्मराज ने उनके चरण पकड़ कर कहा— 'पिता जी! अब आप अपने शोक को दूर कीजिये। हमारे अपराधों की ओर ध्यान न दीजिये। जैसे दुर्योधनादि आपके पुत्र थे, उसी प्रकार हमें भी आपना पुत्र ही समझें। जिस प्रकार आप पहिले रहते थे, उसी प्रकार आप अब भी रहे। आप के रहते हम सिंहासन पर

कैसे बैठ सकते हैं ? हम सब के आप ही राजा, रक्षक, गुरु और पालन कर्ता है । हम तो आप के सेवक बन कर आपके चरणों में बैठ कर जैसी भी आप आज्ञा देंगे वैसा ही करेंगे। आप हम पर प्रसन्न हो जायँ ।''

भगवान् ने भी कहा……''हे कुरुकुल तिलक ! आप मुझ पर भी रोष न करे कि इसी ने मेरे पुत्रों को मरवा दिया है। कौन किसे मरवाता है ? आप तो सब जानते हैं। सभी का निश्चित काल होता है। उससे अधिक कोई कितना भी प्रयत्न करे, नही जी सकता और उससे पहिले चाहे विष पीले, अग्नि में कूद पडे, पहाड़ से गिर पड़े, तो भी बच जाता है। अतः काल की गति समझ कर आप शोक को दूर करिये और अब पांडवों को ही अपना पुत्र समझ कर राज्य-काज कीजिये ।''

धृतराष्ट्र ने आँसू पोंछते हुए कहा—'वासुदेव ! मेरे क्रूर कर्मा पुत्र अपने पाप से ही मारे गये । उनके अधर्म ने ही उनका नाश किया। मैं उनके कर्मों से कभी भी हृदय से सन्तुष्ट नहीं था, किन्तु पुत्र मोह के वशीभूत होकर और अन्धा होने के कारण उन पर शासन नही कर सका । हे देवकीनन्दन ! आप तो सर्वज्ञ, सर्वसमर्थ हैं। आप जो कराना चाहते हैं, वही होता है। आपने मेरे पुत्रों की बुद्धि ही ऐसी भ्रष्ट कर दी, कि उन्होंने आपकी बात भी नही मानी । पांडवों को तो मैं पहिले भी पुत्रो की ही तरह मानता था, ये सबके सब समर्थ हैं, धर्मज्ञ हैं, सदाचारी तथा सुशील हैं और सबसे श्रेष्ठ बात यह है कि ये सब आप के भक्त हैं, अनुयायी हैं। इनकी विजय तो होनी थी। मुझे उन पापी पुत्रों की मृत्यु का उतना शोक

नहीं है। दुःख इस बात का है, कि मरने का समय मेरा था। मैं न मर कर मेरे सामने ही मेरे सौ के सौ पुत्र मर गये राज्य-काज तो मैं पहिले भी नहीं करता था। अंधा होने से मैं राज्य के योग्य ही नहीं। जैसे पहिले दुर्योधन प्रजापालन का कार्य करता था वैसे ही अब धर्मराज करें। आप इन्हें ऐसी आज्ञा दें। अब तो ये ही मेरे पुत्र, रक्षक और सब कुछ हैं।"

इस प्रकार धृतराष्ट्र के कहने से और भगवान् के अनुमोदन तथा आग्रह करने से धमराज धर्मपूर्वक सभी राज्य-काज करने लगे। थोड़े ही दिनों में सब लोग कौरवों को भूल गये। सर्वत्र धर्मराज के शासन की प्रशंसा होने लगी।

इतना सुनकर शौनकजी ने सूतजी से पूछा—"महाभाग! जब पांडवों के राज्य को हड़प जाने वाले कौरवों का नाश हो गया, तब धर्मराज ने किस प्रकार शासन किया? भगवान् कितने दिनों तक और उनके साथ रहे? भगवान् फिर द्वारिका गये या नहीं? इन सब सरस और सुखद बातों का वर्णन आप हमारे सम्मुख करें।"

शौनकजी के ऐसा पूछने पर सूतजी कहने लगे—"मुनियो! वह युद्ध क्या था भरतवंश रूपी बांस के बन में लगी हुई दावाग्नि थी। जैसे बांस अपने आप ही वायु के द्वारा रगड़े जाते हैं, उनसे अग्नि उत्पन्न होती है, उसी अग्नि से सबके सब भस्म हो जाते हैं। उसी प्रकार कौरव, पांडव वंश में क्रोध रूपी अग्नि ने उत्पन्न होकर दोनों कुलो का नाश कर दिया। दोनों कुलों में आगे को कोई भी नाम लेवा, पानी देवा नहीं रहा।"

उत्तरा के गर्भ में छिपा हुआ बीज था, उसे भी अश्वत्थामा का ब्रह्मास्त्र रूपी मूसा खा जाना चाहता था, किन्तु भगवान् ने

कृपा करके अपने चक्र से उस मूसे को मारकर अंकुर उठे हुए बीज को बचा लिया। अब सर्वत्र आनन्द फैल गया। धर्मराज राज्य भार के भय से राज्य नहीं त्याग रहे थे। वे तो अधर्म समझ कर राज्य से उपराम हुए थे। जब धृतराष्ट्र ने, भगवान् ने, व्यास आदि ऋषि मुनियों ने धौम्य, कृपाचार्य आदि पुरोहित विप्रों ने, मन्त्री और अमात्यों ने तथा समस्त प्रजाजनों ने उनको राज्य करने के लिए विवश ही किया, तो वे धर्म समझ कर राज्य-काज करने ही लगे।

जब पृथ्वी पर कोई धर्मात्मा राजा हो जाता है तो पृथ्वी प्रसन्न होकर सबदुधा बन जाती है, सभी प्राणी परस्पर का वैर भाव भुलाकर आनन्द पूर्वक सभी कार्य करते हैं, तो फिर धर्मराज के राज्य में तो पूछना ही क्या। वे तो साक्षात् धर्म के अवतार ही थे। दुर्वासा के शाप वश धर्म ने ही पृथ्वी पर तीन स्थानों में अवतार लिया था। एक बार तो काशी में धर्म चंडाल रूप से उत्पन्न हुए थे, जिन्होंने राजा हरिश्चन्द्र को विश्वामित्र से मोल लिया था। दुबारा शूद्र योना में विदुर रूप से उत्पन्न हुए और तीसरी बार पांडु पुत्र युधिष्ठिर के रूप में। इसीलिए धर्मराज कभी धर्म विरुद्ध कार्य का अनुमोदन भी नहीं करते थे। भीष्म पितामह ने प्राण त्याग करते समय उन्हें उत्तम राजनीति का उपदेश दिया था, फिर साक्षात् भगवान् उन्हें प्रत्येक कार्य में अपनी सम्मति देते थे। इन सभी कारणों से वे अपने आज्ञाकारी भाइयों के सहित समुद्र पर्यन्त समस्त पृथ्वी का एक छत्र शासन करने लगे। पृथ्वी के समस्त भूप उनकी आज्ञा को सिर से स्वीकार करते थे। उनकी आज्ञा चारों दिशाओं मे समान रूप से मानी जाती थी। उनके राज्य मे मनुष्यों को आधिभौतिक, आधिदैविक और

आध्यात्मिक तीनों प्रकार के तापों में से एक भी ताप संताप नहीं था। न कोई दरिद्र था, न रोगी। समय पर आवश्यकतानुसार इन्द्र वर्षा करते थे। सभी देवता उनके अनुकूल आचरण करते थे। मनुष्य सब उनकी आज्ञा का पालन करते थे। मनुष्य हो नहीं—नदी, पर्वत, समुद्र वनस्पति, लताएँ समस्त औषधियाँ सभी वृक्ष उनके प्रतिकूल कोई कार्य न करते थे। वृक्ष समय पर फूलते फलते थे। सभी ऋतुयें अपने-अपने समय पर अपने-अपने स्वभावानुसार सर्दी, गर्मी और वर्षा करती थी। गौयें यथेष्ट दूध देती थीं, जिनसे पृथ्वी पर दूध की धारायें वहती थी। सभी के घर में अतिथि-पूजा होती थी। परदेशों में जाने वाले पथिक भोजन बाँध कर नहीं चलते थे, क्योंकि जहाँ वे जाते थे, वहीं उनका स्वागत सत्कार होता था। खाने-पीने का उन्हें कोई कष्ट न होता था। वे किसी से पीने को पानी माँगते, तो उन्हें उसके स्थान में सुन्दर मिश्री मिश्रित दुग्ध मिलता था। इसी प्रकार धर्मराज का शासन रामराज्य के समान हो गया। द्वापर में भी उन्होंने सतयुग बना दिया।

अब तो सब कार्य हो गये। भगवान् फिर द्वारिका चलने को उद्यत हुए। अब धर्मराज क्या कहते, द्वारिका में भी तो कार्य है। यह बात फिर महलों में फैल गई कि श्यामसुन्दर अब जाना चाहते हैं। तब तो भगवान् को वहिन सुभद्रा अपनी विधवा पुत्रवधू को पीछे करके उनके सामने आँसू बहाती हुई आकर खड़ी हो गई। उनके शरीर की आड़ में लजाती हुई

नीचे मुँह किये हुए उत्तरा खड़ी थी भगवान् ने कहा—'तुम क्या कुछ कहना है ?"

रोती हुई बहिन बोली—मैंने सुना है, तुम द्वारिका जा चाहते हो ?"

हँसते हुए भगवान् बोले—तेरी क्या इच्छा है ? सदा यहं बना रहूँ ? देख बहिन, बहुत दिन रहने में प्रेम नहीं रहता। 'ए दिन का मिहमान, दूसरे दिन का सहमान और तीसरे दिन क असल बेईमान।' अब बहुत दिन हो गये। वहाँ भी तो काम धन्धा देखना है।"

रोती हुई सुभद्रा बोली—"भैया, तुम तो हँसी करते हो। हमारा और सहारा कौन है ? भैया, तुम्हारे ही सहारे से हम जी रहे है। मेरा अभिमन्यु जबसे मुझे छोड़कर चला गया, तबसे मुझसे संसार सूना ही सूना दीखता है। इस छोटी सी बहू का ही मुँह देखकर मैं जी रही हूँ। इसकी रक्षा करना भैया! तुम किसी तरह।"

भगवान् बोले—"अरे सुभद्रा, तू तो बड़ी पगली है। तेरा अकेला ही लड़का मरा है ? इस युद्ध में कौन बचा है। गांधारी के तो सौ पुत्र मारे गये। द्रौपदी के पाँचो पुत्र मर गये। यह सब पर ही बीती है। फिर तू इतनी अधीर क्यों होती है? इस तेरी बहू के गर्भ से ऐसा राजर्षि पुत्र उत्पन्न होगा, कि तुम्हारे समस्त कुल को पवित्र कर देगा। मैं वहाँ का कामकाज करके फिर आऊँगा। अब तो मेरा आना जाना लगा ही रहेगा। इस प्रकार भगवान् ने सुभद्रा को अनेक प्रकार से समझा बुझा कर महलों मे जाने को कह दिया। वह अपनी बहू के

गाय रोती हुई भगवान् को प्रणाम करके चली गई। बात की बात में सम्पूर्ण महलों में यह समाचार फैल गया। सत्यवती, कुन्ती, द्रौपदी, गांधारी सभी इस समाचार से अत्यन्त ही दुखी हुईं। नगर में भी यह बात वायु वेग की भाँति फैल गई, कि अब भगवान् द्वारिका जाने वाले हैं।

छप्पय

जावेंगे यदुनाथ बात फैली घर-घर में।
व्याप्यो सब थल शोक राज्य रनिवास नगर में॥
सब ही कहने लगे "कृष्ण कब दर्शन देंगे।
सब फल पुण्य पराग पाद पद्मनि को लेंगे॥
नरतनु फल है नयन ये, नन्दनन्दन निरख्यो करें।
काज करें कर कृष्ण के, मनमोहन मन कूँ हरें॥"
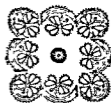
भगवान् का द्वारका गमन

(१६)

सत्संगान्मुक्तदुःसङ्गो हातुं नोत्सहते बुधः।
कीर्त्यमानं यशो यस्य सकृदाकर्ण्य रोचनम् ॥
तस्मिन्न्यस्तधियः पार्थाः सहेरन् विरहं कथम्।
दर्शनस्पर्शसंलापशयनासनभोजनैः ॥*

(श्री भा० १ स्क० १० अ० ११, १२, श्लो०)

छप्पय

दुखित भये नर नारि नयन तें नीर बहावें।
नाथ अनाथ बनाय बिलखते तजि घर जावें ॥
हाय विधाता बाम श्याम को साथ छुड़ावे।
हमकूँ कुटिल कराल काल क्यों करि नहिं आवे॥
भोजन, भाषण, शयन में साथ, श्याम के सब रहे।
पांडव पालित प्रेम के, प्रभु वियोग कैसे सहें॥

विधि का बलवान विधान अनिवार्य न होता, तो कौन अपने प्रियतम से पृथक् होने की इच्छा करता। किन्तु विधाता ने संयोग के साथ ही वियोग को बाँध दिया है। जन्म के साथ

---

* कोई भी बुद्धिमान पुरुष जिसका सत्संग के द्वारा दुःसंग नष्ट हो गया है, वह उस सत्संग को छोड़ने की इच्छा नहीं करता। फिर जिन

पीछे ही मृत्यु सटो हुई है और सुख के साथ ही दुःख जुटा है। इसलिये प्राणी सभी कर्म करने में विवश है। जब जीव गर्भ में रहता है तभी जाति कर्म, आयु, विद्या और मृत्यु—ये सब पहिले से ही—पूर्व कर्मानुसार—निर्माण हो जाते हैं। उन्हीं के अनुसार प्राणी इच्छा न होने पर भी कार्यों में प्रवृत्त होता है।

भगवान् को बहुत दिन हो गये, पांडव उनमें ऐसे घुल-मिल गये कि उनमें और भगवान् में कोई भेद भाव ही न रहा। वे भी अपने को छः भाई समझने लगे और सब लोग भी पाँचों पाण्डव छठे नारायण की जय! कहकर जय घोष करते थे। वे इस बात को भूल ही गये, कि भगवान् को द्वारिका भी जाना है। उन्हें अनुभव होने लगा कि भगवान् इसी तरह सदा हमारे बीच में रहेंगे, किन्तु अब वियोग का समय आ गया। भगवान् ने धर्मराज से कहा—"राजन्! मेरा मन तो नहीं चाहता कि तुम्हें छोड़कर कहीं जाऊँ, किन्तु करूँ क्या, वहाँ द्वारका में भी सब लोग मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे, अतः मुझे जाने की आज्ञा दोजिये अब बहुत दिन हो गये।" इतना सुनते ही धर्मराज का हृदय भर आया, कण्ठ गद्‌गद

भगवान् का कीर्त्यमान मनोरम यश जिसने एक बार भी सुन लिया है, वह उसे कैसे छोड़ सकता है। उन्ही पुण्य यश वाले प्रभु के पादपद्मों मे जिन्होने अपना चित्त निरन्तर लगा दिया हैं। जिसका मन उन्ही के दर्शन, स्पर्श संभाषण मे लगा है, जो उन्ही के साथ साथ खाते पीते तथा उठते बैठते और शयन करते हैं, वे पांडव भगवान् के वियोग को कैसे सह सकते हैं।

हो गया। वे कुछ कहने में भी समर्थ नहीं हुए। अब कब तक रोकते ? भगवान् को द्वारावती जाना ही है, अतः धर्मराज उनकी विदाई का प्रवन्ध करने लगे। जैसे समुद्र में पर्व के दिन ज्वार भाटा आता है उसी प्रकार समस्त हस्तिनापुर में हलचल मच गई। सभी के नेत्र अश्रुपूर्ण थे, सभी भगवान् के वियोगजन्य दुःख से दुखी थे। भगवान् की आज्ञा से सारथी रथ तैयार करके द्वार पर ले आये।

व्यासजी, कृपाचार्य, पुरोहित धौम्य तथा अन्य वेदज्ञ ब्राह्मणों ने भगवान् का स्वस्त्ययन किया। वस्त्र, आभूषण और सुगन्धित मालाओं से सुसज्जित श्रीनिवास भगवान् के विशाल भव्य मस्तक पर पुरोहित धौम्य ने कुंकुम से श्री बनाई, उसमें केशर से रँगे अक्षत लगे थे, दही दुवा, लाजा खील से उनको-उनके शिर को-अलंकृत किया। डबडबाई आँखों से, ऊपर से मन्द-मन्द मुस्कुराते, पान चबाते, श्यामसुन्दर भवन से निकल कर बाहर हुए। सभी ब्राह्मणों ने पांडवों तथा बन्धु बांधव, मन्त्री और अमात्य और प्रजाजनों ने उनका अनुगमन किया। रत्नखचित प्रांगण में आकर भगवान् ने झुककर महाराज युधिष्ठिर के चरण स्पर्श करने चाहे बीच में ही झपट कर धर्मराज ने दोनों विशाल बाहु फैलाकर भगवान् को अपनी छाती से चिपटा लिया। जिस वक्षःस्थल में श्रीवत्स का चिन्ह है और कौस्तुभमणि शोभा दे रही है, भगवान् के उस विशाल वक्षःस्थल को धर्मराज ने अपने वक्षःस्थल से लगाकर गाढ़ आलिगन किया। वे बहुत देर तक श्यामसुन्दर को अपनी छाती से लगाकर अपना ताप सन्ताप मिटाते रहे। आँखों से निकले हुए अश्रुओं ने श्यामसुन्दर के सिर के—उनके काले-काले घुँघराले—बालों को भिगो दिया। धर्मराज के नेत्रों से

निकले हुए प्रेमाश्रु उन कुटिल काले बालों में ऐसे प्रतीत होने लगे, मानों किसी ने मोती पिरो दिये हों।

इसके अनन्तर भीमसेन को भी भगवान् ने प्रणाम किया, अर्जुन को गले से लगाया। नकुल सहदेव ने आकर भगवान् के चरण छुए। उन्हें स्नेह से अपने चरणों में उठाकर भगवान् ने आशीर्वाद दिया और आलिंगन करके कहने लगे— "देखो, धर्मराज की प्रत्येक आज्ञा का बड़ी सावधानी से तुम सब लोग पालन करना। सब लोग पृथ्वी की ओर देखते हुए अश्रु बहा रहे थे। इसके अनन्तर और भी प्रजाजनों ने

भगवान् की यथोचित प्रणाम नमस्कार किया, ब्राह्मणों को उन्होंने स्वय प्रणाम किया।' उत्तर में वेदज्ञ ब्राह्मणों ने उन्हें भाँति-भाँति के आर्शीवाद दिये। तब महलों में भगवान्

अपनी बुआ के पास गये। वृद्धावस्था के कारण पलँग प
पड़ी हुई अपनी बुआ के भगवान् ने पैर पकड़े। शीघ्रता से
उठकर उन्होंने भगवान् को उसी तरह प्यार किया,जैसे गौ अपने
बछड़े को प्यार करती है। कुन्ती ने भगवान् के सिर पर हाथ
फेरा और रोती हुई बोलीं—"क्या वासुदेव ! अब तुम
जाओगे ही ?" भगवान् भर्राये हुए कंठ से कहने लगे—"हाँ
बुआजी, अब तो जाते ही है, फिर आऊँगा।' इतने में ही
सत्यवती जी भी आ गईं, सुभद्रा के कंधे पर हाथ रखे हुए—
आँखों मे पट्टी बाँधे—गांधारी ने भी प्रवेश किया। उनके पीछे
घूँघट से अपना मुँह ढके उत्तरा भी आ रही थी। पांडवो
की अन्य स्त्रियाँ भी द्रौपदी को आगे करके भगवान् के समीप
आईं। सबके नेत्र लाल थे और वे आँसुओं से उसी प्रकार
भरे थे, जैसे अधिक ओस पड़ने से कमल की कलियाँ ओस से
भर जाती हैं। गांधारी ने अपने काँपते हुए हाथों से टटोल कर
भगवान् के श्रीअङ्ग पर हाथ रखते हुए कहा—"जनार्दन !
पुत्र-शोक से दुखी होकर, मैंने जो कुछ अनुचित कह दिया
हो उसे आप मन में न लायें, भूल जायें, क्योंकि वासुदेव !
मैं तो तुम्हारी माया से मोहित अज्ञा स्त्री ही ठहरी।"

भगवान् ने अत्यन्त ही स्नेह से कहा—"यह आप कैसी
बातें कह रहीं हैं ? आप मेरी हर प्रकार से पूज्या हैं। बच्चों से
कहीं क्षमा माँगी जाती है ? जैसे युधिष्ठिर आपके बच्चे हैं
वैसा ही मैं हूँ। आप मुझे दूसरा समझ कर ऐसी बातें क्यों
कह रही हैं ?"

इतने में ही प्रेम-कोप में भरी हुई द्रौपदी जी ने कहा—
"आप दूसरे तो हैं ही। अपने होते तो हमें ऐसे छोड़ कर क्यों
चले जाते ? आपके लिये हम दूसरे, हमारे लिये आप दूसरे।'

भगवान् हँसे और बोले—"सम्राट् की पत्नी सम्राज्ञी, भले ही हमें दूसरा समझें, हम तो उनकी प्रजा ही ठहरे।

और कुपित होकर द्रौपदीजी बोलीं—"रहने दो चलो। तुम्हें हर समय हँसी ही सूझती है। क्या सचमुच जा रहे हो? देखो आज शकुन भी ठीक नहीं, दिन भी अच्छा नहीं है।

भगवान् बोले—सब शकुन शुभ है, दिन भी बड़ा मङ्गलमय है। अब तुम मुझे प्रेमपूर्वक अनुमति ही दो।

सुभद्रा आगे बढ़ कर भगवान् से लिपट गई और रोने लगी। भगवान् बोले—"अरे सुभद्रा! तेरा अभी लड़कपन नहीं गया। जाते समय रोना चाहिये कि अपने भाई को प्रेम पूर्वक प्रसन्नता से विदा करना चाहिये?

इतने में ही आगे बढकर अपने वस्त्रों को सावधानी से समेट कर घुटने टेक कर, सिर को पृथ्वी में लगाकर, हाथ जोड़ कर, उत्तरा ने भगवान् को प्रणाम किया। भगवान् आशीर्वाद देते हुए कहने लगे—"बेटो! तुम किसी प्रकार की चिन्ता मत करना। तुम्हारे गर्भ से भरत वंश की कीर्ति को फैलाने वाला परम भागवत राजर्षि पुत्र होगा।

इस प्रकार सभी को समझा बुझा कर सभी को संतोष करके, सबको यथोयोग्य प्रणाम नमस्कार, आशीर्वाद और प्यार करके भगवान् चले। महल के दरवाजे तक सभी स्त्रियाँ उनके पीछे-पीछे आईं। द्वार के बाहर तो सबके सामने आर्य ललनायें जा नहीं सकतीं। अतः वहीं से—दरवाजे और खिड़कियों के सामने खड़ी होकर—भगवान् के रथ को देखने लगीं।

पांडवों की तो बुरी दशा थी। उनका हृदय विकीर्ण हो रहा था। वे भगवान् की ओर देख भी नहीं सकते थे। वार-बार पोंछने पर भी नेत्र अश्रुओं से भरे हुए ही प्रतीत होते थे। कोई इधर से उधर आ रहा था, कोई इधर से उधर जा रहा था। इस प्रकार सम्पूर्ण नगर वासी भगवान् की यात्रा में व्यग्र हो रहे थे। धर्मराज ने बड़ी व्यग्रता के साथ कहा—"भीम सेनापति से कहो, चतुरङ्गिणी सेना सजावें।"

हँसते हुए वासुदेव ने पूछा—",क्यों, सेना सजाने का क्या प्रयोजन है ? क्या कोई अब शत्रु शेप रह गया ? क्या किसी पर फिर चढ़ाई करनी है ? "

धर्मराज सरलता के साथ बोले—"चढ़ाई अब किस पर करनी है, आपके साथ सेना जायगी।"

हँसते हुए मदनमोहन बोले—"मेरे साथ सेना का क्या काम ? मैंने रास्ता नही देखा है क्या ?"

अत्यन्त ही प्रेम के वेग में माधुर्य मिश्रित वाणी से धर्मराज बोले—"देखो, वासुदेव ! आपको मेरी यह बात माननी पड़ेगी। अकेले मैं आपको नहीं जाने दूँगा। अभी अभी विश्वव्यापी संग्राम हो चुका है। सभी राजाओं से हमने शत्रुता कर ली है। जिन राजाओं के सम्बन्धियों को हमने संग्राम में मारा है, वे हमारा समय पाकर अनिष्ठ भी कर सकते हैं। यदि आपका किसी ने कुछ भी अप्रिय कार्य व्यर्थ है।"

ऋषियो ! इसी का नाम है—माधुर्य, माधुर्य में ऐश्वर्य की महत्ता की गंध भी नही रहती। चराचर के निग्रह अनुग्रह में

समर्थ सर्वान्तर्यामी वासुदेव की रक्षा सेना कर सकेगी ? जिनके भृकुटि विलास से सृष्टि, स्थिति और प्रलय आदि कार्य स्वतः ही होते रहते हैं, उनका अनिष्ट ये पृथ्वी के क्षुद्र प्राणी कर सकते हैं ? किन्तु माधुर्य में तो अपना इष्ट अपने अधीन है। उसके पालन पोषण का भार तो अपने ही ऊपर है। माधुर्य में तो इष्ट अपने ही समान गुणवाला आहार, निद्रा, भय वाला बन जाता है। अतः धर्मराज का यह कार्य उचित ही था। उनकी इस बात को सुनकर वासुदेव बोले—"अच्छी बात है। हाँ, चतुरंगिनी सेना चले साथ।"

देवकीनन्दन की अनुमति पाकर बात की बात में सेना तैयार हो गई। वर्षाकालीन मेघ के समान उमड़ती हुई सेना ने अपने भीषण कलरव के द्वारा हस्तिनापुर में शरद्काल में भी वर्षा की दृश्य उपस्थित कर दिया। अब भगवान् की सवारी चली। आज अर्जुन स्वयं रथ हाँकने बैठ गये आज रथी सारथि रथी। और सारथि रथी। कौरव कुल की कामिनियों जो झरोखों से झाँक रही थी, उनका हृदय फटने लगा। उमड़ते हुए आँसुओं को उन्होंने बड़ी कठिनता से भीतर ही भीतर पी लिया, कि कहीं यात्रा के समय अश्रु विमोचन करने से रास्ते में देवकीनन्दन का कुछ अनिष्ट न हो।

रथ के आगे-आगे मृदंग, वीणा, शंख, भेरी, गोमुख धुन्धरी, आनक, घन्टा और दुन्दुभी आदि बाजे बजने लगे। अनेक लय और स्वरों के सहित बाजा बजाने वाले वाद्यों को बजाने लगे। भगवान के पीछे -पीछे और सभी लोग अपने अपने वाहनों पर उनका अनुगमन कर रहे थे। प्रजा के लोग पैदल ही प्रभु के पीछे-पीछे दौड़ रहे थे। धर्मराज ने आज

पांडवों की तो बुरी दशा थी। उनका हृदय विकीर्ण हो रहा था। वे भगवान् की ओर देख भी नहीं सकते थे। बार-बार पोंछने पर भी नेत्र अश्रु ओं से भरे हुए ही प्रतीत होते थे। कोई इधर से उधर आ रहा था, कोई इधर से उधर जा रहा था। इस प्रकार सम्पूर्ण नगर वासी भगवान् की यात्रा में व्यग्र हो रहे थे। धर्मराज ने बड़ी व्यग्रता के साथ कहा—"भीम सेनापति से कहो, चतुरङ्गिणी सेना सजावें।"

हँसते हुए वासुदेव ने पूछा—',क्यों, सेना सजाने का क्या प्रयोजन है ? क्या कोई अब शत्रु शेष रह गया ? क्या किसी पर फिर चढ़ाई करनी है ? "

धर्मराज सरलता के साथ बोले—"चढ़ाई अब किस पर करनी है, आपके साथ सेना जायगी।"

हँसते हुए मदनमोहन बोले—"मेरे साथ सेना का क्या काम ? मैंने रास्ता नहीं देखा है क्या ?"

अत्यन्त ही प्रेम के वेग में माधुर्य्य मिश्रित वाणी से धर्मराज बोले—"देखो, वासुदेव ! आपको मेरी यह बात माननी पड़ेगी। अकेले मैं आपको नहीं जाने दूँगा। अभी अभी विश्वव्यापी संग्राम हो चुका है। सभी राजाओं से हमने शत्रुता कर ली है। जिन राजाओं के सम्बन्धियों को हमने संग्राम में मारा है, वे हमारा समय पाकर अनिष्ट भी कर सकते हैं। यदि आपका किसी ने कुछ भी अप्रिय कार्य व्यर्थ है।"

ऋषियो ! इसी का नाम है—माधुर्य, माधुर्य में ऐश्वर्य की महत्ता की गंध भी नहीं रहती। चराचर के निग्रह अनुग्रह में

समर्थ सर्वान्तिर्यामी वासुदेव की रक्षा सेना कर सकेगी ? जिनके भृकुटि विलास से सृष्टि, स्थिति और प्रलय आदि कार्य स्वतः ही होते रहते हैं, उनका अनिष्ट ये पृथ्वी के क्षुद्र प्राणी कर सकते हैं ? किन्तु माधुर्य्य में तो अपना इष्ट अपने अधीन है। उसके पालन पोषण का भार तो अपने ही ऊपर है। माधुर्य्य में तो इष्ट अपने ही समान गुणवाला आहार, निद्रा, भय वाला बन जाता है। अतः धर्मराज का यह कार्य उचित ही था। उनकी इस बात को सुनकर वासुदेव बोले—"अच्छी बात है। हाँ, चतुरंगिनी सेना चले साथ।"

देवकीनन्दन की अनुमति पाकर बात की बात में सेनातैयार हो गई। वर्षाकालीन मेघ के समान उमड़ती हुई सेना ने अपने भीषण कलरव के द्वारा हस्तिनापुर में शरद्काल में भी वर्षा की दृश्य उपस्थित कर दिया। अब भगवान् की सवारी चली। आज अर्जुन स्वयं रथ हाँकने बैठ गये आज रथी सारथि रथी। और सारथि रथी। कौरव कुल की कामिनियाँ जो झरोखों से झाँक रही थीं, उनका हृदय फटने लगा। उमड़ते हुए आँसुओं को उन्होंने बड़ी कठिनता से भीतर ही भीतर पी लिया, कि कहीं यात्रा के समय अश्रु विमोचन करने से रास्ते में देवकीनन्दन का कुछ अनिष्ट न हो।

रथ के आगे-आगे मृदंग, वीणा, शंख, भेरी, गोमुख धुन्धरी, आनक, घन्टा और दुन्दुभी आदि बाजे बजने लगे। अनेक लय और स्वरों के सहित बाजा बजाने वाले वाद्यों को बजाने लगे। भगवान के पीछे -पीछे और सभी लोग अपने अपने वाहनों पर उनका अनुगमन कर रहे थे। प्रजा के लोग पैदल ही प्रभु के पीछे-पीछे दौड़ रहे थे। धर्मरा[illegible]

खुले हुए रथ पर श्यामसुन्दर को विठाया, जिससे नगर के सभी नर-नारी उनके देव दुर्लभ दर्शनों से वंचित न रह सकें। महलों की अटा अटारी, छज्जे, तिवारी, ओखा मोखा, जारी झरोखों से मृगनयनी, नगर वासिनी नारियाँ नन्दनन्दन की छटा निरख रही थी। हस्तिनापुर की सड़कें बड़ी विस्तृत थी। उनके दोनों ओर धनिको के एकखने, दुखने, चौखने सतखने भवन बने थे। उनकी सभी खिड़कियां खुली थी, उनमें नगर की नारियां अपनी अपनी सखी-सहेलियों के साथ बैठी
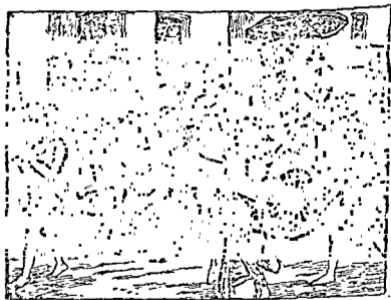
हुई श्यामसुन्दर की सुहावनी सवारी की शोभा देख रही थीं। सड़कें खचाखच भरी थीं, उधर का आदमी इधर निकल नही सकता था। सभी उच्च स्वर से श्यामसुन्दर के सुमधुर नामों को लेकर जय घोस और नाम संकीर्तन कर रहे थे।

अश्वारोही अपने-अपने भालों में रङ्ग-विरङ्गी पताकायें लगाये घोड़ों को नचा रहे थे। वायुवेग से ध्वजायें उसी प्रकार हिल रही थीं। जिस प्रकार भगवान् के वियोग में नारियों के कोमल हृदय हिल रहे थे। वे खिड़कियों में बैठी हुई अपने नीचे तो अश्रुरूपी मोतियों की वर्षा कर रही थी और श्यामसुन्दर को लक्ष्य करके सड़क पर सुगन्धित पुष्पों को विखेर रही थीं। पुष्पों से भगवान् ढक गये। इतने में ही भगवान् के सारथि ने हाथ जोड़कर अर्जुन से कहा—"महाराज! आप भगवान के समीप ही विराजें। इस भीड़-भाड़ में घोड़े वहुत बिदकते है।" कुन्तीनन्दन अर्जुन ने भी देखा भगवान् को धूप लग रही है और फूल तथा फूलों के गुच्छे आ आकर भगवान् के श्रीअङ्ग में व्यथा पहुँचाते होंगे, यह सोचकर वे झट से भगवान् के समीप आये। मोतियों की मालाओं से सुसज्जित, जिसकी तानों में भी हीरा-मोती जड़े हुए हैं और दण्ड में अनेक प्रकार के वहुमूल्य रत्न जड़े हुए हैं और ऐसे हंस के पङ्खों के समान शुभ्र श्वेत राजसी छत्र को अर्जुन ने भगवान् पर लगाया, जब अर्जुन छत्र लेकर वासुदेव के पीछे खड़े हो गये, तब एक ओर उद्धव और दूसरी ओर से सात्वकी कृष्ण और श्वेत गङ्गा यमुनी चँवरों को डुलाने लगे। उस समय भगवान् ऐसे प्रतीत होते थे, मानों जल भरे हुए नूतन मेघ के ऊपर सूर्य उगा हो और एक ओर सफेद वादल का टुकड़ा तथा दूसरा ओर कृष्ण बादल उसे घेरे हुए हों। इस प्रकार भगवान की विचित्र सवारी नगर की सभी मुख्य मुख्य सड़कों से होकर आगे बढ़ने लगी।

भगवान के अनुपम सौन्दर्य तथा माधुर्य को दे मनोरमायें मुग्ध हो गईं। वे परस्पर में भगवान्

गुणों का वर्णन कर रही थीं। वे सभी मानों वेद की श्रुतियाँ साकर स्वरूप धारण करके, परात्पर प्रभु के गुणगान में लगी हों। उनकी स्तुति बड़ी ही सार गर्भित थी। मुनियो! भगवान विदाई के समय पुराण पुरुषोत्तम प्रभु की जो स्तुति पुरवासिनी नारियों ने की सचमुच ही वह श्रुतियों का सार है। अतः यहाँ उसका विस्तार से वर्णन करने का अवसर नहीं है। यदि उसका अब वर्णन करते हैं तो भगवान को भी रास्ते में खड़े खड़े कष्ट होगा और हमारी कथा का प्रवाह भी रुक जयगा। द्वारका शीघ्र पहुँचने की जो उत्कंठा है, वह भी पूरी न होगी। अतः उस स्तुति का वर्णन प्रसंगानुसार फिर ही किया जायगा अब तो सरलता के साथ सवारी के साथ-साथ इधर-उधर विहङ्ग दृष्टि डालते हुए चलें। वे हस्तिनापुर की नगर नारियाँ नव नागर नन्दनन्दन को उन प्रिय पत्नियों की प्रशंसा कर रही थ जिन्हें पुरुषोत्तम की प्रेयसी होने का देव-दुर्लभ पद प्राप्त हुआ है वे परस्पर में कह रही थी—"सखियो! श्यामसुन्दर का कैसा त्रैलोक्य मोहन रूप है! इनका कैसा अद्भुत सौन्दर्य माधुर्य है। सखियों! वे स्त्रियाँ धन्य हैं, जिनका पाणिग्रहण करके वासुदेव ने अग्नि प्रदक्षिणा की होगी। हाँ? उनके सौभाग्य की सराहना शेष भी अपने सहस्र फणों से सृष्टि के अनन्तकाल तक नहीं कर सकते। वे भाग्यशालिनी बहिनें, इन श्यामसुन्दर के अरुण वर्ण के चिकने चरणों को अपने कर कमलों से धोती होंगी और उस त्रैलोक्य पावन पय का प्रेम पूर्वक पान करती होंगी। इनके इन काले-काले घुँघराले बालों में सुगन्धित तेल डालती होंगी। सुन्दर अंगराग इनके श्रीअङ्ग में लगाती होंगी। अनेक औषधियों से युक्त निर्मल जल से स्नान कराती होंगी उनकी ओर ये जब मंद मंद मुस्कुराकर उनका मान रखते होंगे,

तब वे अपने जीवन को धन्य-धन्य समझती होंगी। हाँ! ऐसा सौभाग्य किस तपस्या से, किस व्रत से, किस नियम से, किस संयम से किस अनुष्ठान से प्राप्त हो सकता है। स्त्री जाति को एक तो वैसे ही, स्मृतिकारों ने हेय माना है। फिर उसका भी पाला किसी प्रेम हीन पुरुष से पड़ जाय, तो कहना ही क्या? उसकी दुर्दशा ही है, किन्तु इन कृष्णपत्नियों ने तो स्त्री जाति का मुख उज्ज्वल कर दिया है। जिस स्त्री ने अपना सर्वस्व नन्दनन्दन को अर्पण कर दिया, जिनका सम्बन्ध श्यामसुन्दर के साथ हो गया, जिन्होने अपना सुहृद, सम्बन्धी सर्वेश्वर श्रीकृष्ण को समझ लिया, वे तो त्रैलोक्य में पूजित, ब्रह्मादि देवताओं द्वारा वन्दित बन गईं। स्त्री शरीर से यही एक सुकृत बन सकता है; कि वह स्वयं भगवान की भक्ति करे और भगवद् भक्त पुत्र पैदा करे। नहीं तो स्त्रियों को जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त क्लेश ही क्लेश है। यदि पति रूप परमात्मा में प्रेम हुआ, यदि भगवत् भक्त पुत्र हुआ, यदि हृदय में भक्ति रस का सचार हुआ, तब तो स्त्री जन्म सार्थक है नहीं निरर्थक तो है ही। इस प्रकार रथ के शनैः शनैः चलने के कारण श्यामसुन्दर भी सुन्दरियों के इन सवादों को सुनते जाते थे और बीच बीच में मन्द-मन्द मुस्कराते हुए, उनकी ओर देखते भी जाते थे। जिधर ही भगवान् की दृष्टि उठती, उधर ही उन्हें कंकण और नूपुरों की खनखनाहट के साथ पुष्पों की होती हुई वर्षा दिखाई देती। उस समय समस्त आले, मोखे, जाली झरोखों से शब्द सुनाई देने के कारण नगर के सभी भवन सजीव से दिखाई देते थे। मानों मूर्तिमान् नगर साकार शरीर धारण करके श्यामसुन्दर का सहस्रों कण्ठों से वाद्यों के सहित गुणगान कर रहा हो। इधर तो स्त्रियाँ गीत गा रही थीं। उधर वेदज्ञ ब्राह्मण

देश वासियों ने जब सुना, कि भगवान् आ रहे हैं, तो अपने-अपने हाथों में अनेक प्रकार के उपहार लिये हुए भगवान् के सम्मुख आये। इतनी दूर चलने के कारण सभी घोड़े वाहन थक गये थे। सारथि और सैनिक भी शिथिल हो गये थे। भगवान् भुवनभास्कर भी अस्ताचल में प्रस्थान करने को प्रस्तुत थे। उसी समय सन्ध्यावन्दन करने के लिये वसुदेवनन्दन द्वारकापुरी के निकट ही ठहर गये।

छप्पय

नयन नीर तें धूरि कीच भइ चली सवारी।
पीछे पुरजन पांडु पुत्र अति चले दुखारी॥
साग्रह सब लौटाइ सैन सँग श्याम सिधारे।
पथ के नृप नर-नारि निरखि अति भये सुखारे॥
पद रज तें पावन करत, देश नगर, पुर वन बिकट।
पहुँचे प्रभु सन्ध्या समय, दिव्य द्वारिका के निकट॥

द्वारावती में स्वागत की धूमधाम

(३४)

यर्ह्यम्बुजाक्षापससार भो भवान् ।
कुरून्मधून् वाथ सुहृद्दिदृक्षया ॥
तत्राब्दकोटिप्रतिमः क्षणो भवेद् ।
रविं विनाक्ष्णोरिव नस्तवाऽच्युत॥*

(श्री भा० १ स्क० ११ अ० ६ श्लोक)

छप्पय

पाञ्चजन्य को शब्द सुन्यो अति भये सुखारे ।
स्वागत को सामान सजायो सर्वाह सिधारे ॥
नगर द्वार गृह द्वार मार्ग सब सुघड़ सजाये ।
दधि, अक्षत फल लाइ, सजल घट दीप जराये ॥
रथ में शोभित श्याम सिर, छत्र श्वेत माला गले ।
नयन सफल सबके करत, हरत चित्त चितवत चले ॥

अपना प्रेमास्पद चिरकाल में कहीं से आता है तो हृदय में हर्ष की एक बाढ़ सी आ जाती है चित्त चाहता है, इसे आखों से पी जायें। हृदय चाहता है, इसे अपने में मिला लें। मन

---

* भगवान् को चिरकाल में लौटा हुआ देखकर पुरवासी कह रहे हैं—"हे कमलनयन ! जब आप अपने आत्मीय बन्धुओं से मिलने

मे आती है, रास्ते मे अपने पलकों के पांवड़े बिछादें, जिस पर प्रियतम के पाद-पद्म पड़ें। शरीर चाहता है इसे लिपटा कर एक कर लें। उस समय एक विचित्र ही दशा होती है, जो मानवीय भाषा मे वर्णन नही की जा सकती।

आनर्त देश की सीमा पर पहुँचकर प्रभु ने अपना पाञ्चजन्य नाम का यशस्वी शंख बजाया। उस समय, प्रभु की शोभा अतुलनीय थी। कोमल-कोमल कमल के सदृश सुहावने, चिकने मृदु लाल-लाल युगल करों में उठाकर बिम्बाफल के समान अरुण अधरों पर रखकर उस दुग्ध के फेन के समान स्वेत पंख में फूँक मारी। फूँक मारते ही वह बोलने लगा। उस समय ऐसा प्रतीत होता था, मानो खिले हुए अरुण कमल पर बैठा हुआ राजहंस शब्द कर रहा हो। समस्त आनर्त देश के नरनारी पाञ्चजन्य के शब्द से परिचित ही थे। सुनते ही समझ गये कि श्यामसुन्दर आ गये। शंख के शब्द को सुनते ही सभी उसी प्रकार भगवान् की ओर दौड़े जैसे छोटे-छोटे बच्चे विदेश से अपने पिता को आते हुए देखकर उसकी गोदी मे दौड़ते हैं। गङ्गाजी के समीप पहुँच कर हम अपना भक्ति भाव दिखाने के लिये उन्हीं का जल लेकर "गङ्गाजी को नमस्कार है, यह हमारा पाद्य ग्रहण करो" ऐसा कह कर गङ्गाजल से ही पाद्य देते हैं। आचमन, स्नान के लिये जल देते

हस्तिनापुर अथवा मथुराजी चले जाते हैं, तब आपके बिना हमारा एक-एक क्षण कोटि-कोटि वर्षों के बराबर व्यतीत होता है। क्योंकि हे अच्युत! जैसे नेत्रों के रहते हुए भी यदि सूर्य न हों, तो वे व्यर्थ ही है। उनसे कोई काम नही हो सकता। उसी प्रकार आपके बिना हम द्वारावती मे रहते हुए भी बेकाम से बने रहते हैं।

है। सूर्य देव की पूजा करते समय त्रैलोक्य के प्रकाशदाता को हम दीपक दिखाते हैं। यद्यपि ये बातें हास्यास्पद है। चुल्लू भर गङ्गाजल से ही गङ्गाजी को जल पिलाने से क्या उनकी प्यास बुझ जायगी? क्या विश्व के प्रकाशक सविता को क्षुद्र दीपक प्रकाशित कर सकेगा, किन्तु हम अपनी भक्ति भी तो किसी प्रकार प्रकाशित करे। इसी प्रकार प्रजाजन भी उन सम्पूर्ण सामग्रियों के स्वामी, अपनी आत्मा मे ही रमण करने वाले सर्वथा परिपूर्ण भगवान् वासुदेव के लिये, फल-फूल तथा अन्य प्रकार के और भी उपहार भेंट कर रहे थे। उन सब ने अपनी भक्ति दर्शाते हुए भगवान् की स्तुति की।

वे सब श्याम सुन्दर को ही अपना माता, पिता सुहृद, सखा, स्वामी सद्गुरू और एक मात्र देव समझते थे। उन प्रजाजनों के लिये जगत् के सभी सम्बन्ध देवकीनन्दन के ही सम्बन्ध से थे। उनके एक मात्र आश्रय भगवान् वासुदेव ही थे। बड़े ही स्नेह से अपने हृदयवल्लभ, परमधन, द्वारकाधीश के सम्मुख आकर कहने लगे—"प्रभो! आप आ गये, बड़ा मङ्गल हुआ। हम सब प्रतिक्षण आपकी प्रतीक्षा करते थे। जिन चरणारविन्दों में पितामह ब्रह्मा, दक्षादि प्रजापति सनकादि योगीन्द्र, देवराज इन्द्र तथा अन्य सभी लोकपाल नत मस्तक होकर अपने मुकुटों की मणियों से आपके अरुण नखों को प्रकाशित करते हुए प्रणाम करते हैं, आज उन्हीं पाद पद्मों में प्रणाम करके हम सब कृत-कृत्य हो गये। हे अशरण शरण! आप ही हमारी शरण है। आप ही हमारे सर्वस्व हैं। हम अपने को देवताओं से भी श्रेष्ठ समझते है, क्योंकि देवताओं को तो आपके चरणारविन्दों के दर्शन कभी-कभी ही होते

हैं और हम सब जब आप द्वारका में निवास करते हैं तो नित्य ही दर्शन करके अपने नयनों को सफल करते हैं।"

इस प्रकार प्रजा के लोगों की स्तुति सुनकर यादवेन्द्र मुस्कुराये और जैसे पिता पुत्र के प्रति प्रेम प्रदर्शित करता है, उसी प्रकार प्रगाढ़ प्रेम प्रदर्शित करके उन्होने उन सबका अभिनन्दन किया, सभी को सभी प्रकार से सांत्वना दी। अब भगवान् ने अपनी उस प्यारी पुरी द्वारावती में प्रवेश करने का विचार किया, जिसकी उपमा चौदह भुवन की पुरियों में से किसी की नहीं दी जा सकती। द्वारका एक तो वैसे ही चारों ओर से समुद्र से सुन्दर सलिल से घिरी हुई थी। वह समुद्र के बीच में ऐसी दिखाई देती थी, जैसी सृष्टि के आदि में सलिल में पड़ा हुआ हिरण्यमय ब्रह्माण्ड। वह सभी सुवर्ण की बनी हुई थी। देवताओं के शिल्पी विश्वकर्मा ने अपनी समस्त कारीगरी का कौशल इसमें प्रदर्शित किया था। दस योजन में बसी हुई वह पुरी अमरावती से भी बढकर थी उसके सभी भवन सुवर्ण मय थे। चारों ओर सुवर्ण और मणियों से चित्रित परकोटा था। उसमें भगवान् के वंश के बड़े-बड़े बली और सभी समृद्धियों से सम्पन्न माध, भोज, दाशार्ह, कुकुर, अन्धक और वृष्णिवंशी यादवों के पृथक-पृथक समूह सुखपूर्वक निवास करते थे। समुद्र के ऊपर जाने आने के लिये ऐसा विचित्र पुल था, जिसे जब चाहें हटा लें, जब चाहें लगादें। उस पुल को पार करके एक बड़ा भारी गोपुर था। वह दूर से ऐसा प्रतीत होता था, मानों सुवर्ण का सुमेरु पर्वत खड़ा हो सुवर्ण के बीच बीच में स्फटिक पद्मराग आदि मणियों की विचित्र कारीगरी की गई थी। वे मणियाँ अन्धकार में भी ऐसी दिखाई देती थीं, मानों आकाश में एक साथ सैकड़ों सूर्य्य और

चन्द्रमा उदित हो गये हों। उसका बड़ा फाटक मतवाले हाथियों के मस्तकों के प्रहार से भी नहीं हिलता था। गोपुर (मुख्य द्वार) से एक बहुत विस्तृत राजपथ था, जिसके चारों ओर चन्दन, मौलश्री अशोक, पारिजात आदि के दिव्य सुगन्धित पुष्प लगे हुए थे, जिनकी सुवास योजनों तक वायु के साथ-साथ दौड़ जाती। राजपथ के अलग-बगल बीच-बीच में ऐसे उत्तम उद्यान थे, जिसमें सभी ऋतुओं के फल सदा ही फले रहते थे। कोई चाहो तोड़कर खाओ। किसी प्रकार की रोक टोक नहीं थी। सभी वृष्णिवंशी वीरों के महलों के सामने छोटे-छोटे उपवन थे। उनमें भाँति-भाँति के स्वर्ग से लाकर पुष्पों के वृक्ष लगाये गये थे। सुवर्ण की दण्डियों से छोटे-छोटे दरवाजे बनाकर उन पर लतायें चढ़ाई गई थीं। सघन फूली हुए लताओं के कारण वे कमनीय कुँजें, कामदेव की क्रीड़ा-स्थली सी ही प्रतीत होती थीं। ऐसा कोई भवन नहीं था, जिनके आगे उत्तम उपवन न हो नगर के बाहर बड़े-बड़े आराम थे, जिनमें हरी-हरी दूब ऐसी प्रतीत होती थी, मानों हरी मखमल का गुदगुदा गलीचा बिछा हो। उनमें यदुवंशी बालक वृद्ध युवा आ आकर क्रीड़ायें किया करते थे। कुछ आराम पुरुषों की क्रीड़ा के थे, कुछ कामिनियों के आमोद प्रमोद के लिए सुरक्षित थे। उनमें पुरुषों का प्रवेश निषिद्ध था। कुछ ऐसे भी आराम थे, जिनमें स्त्री-पुरुष साथ-साथ विहार करते थे। आरामों के बीच-बीच में छोटे-छोटे सरोवर थे, जिनमें सब ऋतुओं के, सब जाति के कमल खिल रहे थे। हंस, सारस, चक्रवाक, जलकुक्कुट आदि जलपक्षी विहार कर रहे थे। सर्वत्र सुगन्धि फैली हुई थी। फलों की कमी नहीं थी। पुष्प पृथ्वी पर पड़े हुए थे, जिनसे पृथ्वी भी सुगन्धित हो गई थी।

ऐसी समृद्धिशालिनी पुरी में यदुवंशी बड़े सुख से दिन व्यतीत कर रहे थे। उन्हें सभी प्रकार के सुख थे। किसी भी वस्तु का उन्हें अभाव नहीं था कोई भी चिन्ता उन्हें नहीं थी। केवल श्रीकृष्ण वियोग रूपी ज्वाला में वे रात्रि दिन जल रहे थे। जब उन्होंने सुना कि श्यामसुन्दर आ गये, तो पाञ्चजन्य शख का घोष सुनकर उनका संकुचित कमल रूपी मन उसी प्रकार खिल गया जैसे सूर्य के उदित होने पर सरोवरों में स्थित कमल खिल जाते हैं।

भगवान् के स्वागत मे सभी ने अपनी सभी प्रकार से सजो हुई नगरी को और भी अधिक सजाया। गोपुर और प्रधान-प्रधान द्वारों पर झडे, पताकाएँ तथा वन्दनवारें बाँधी गईं। सर्वत्र सड़कों पर सुगन्धित जल का छिड़काव किया गया। स्थान-स्थान पर कपूर, गुग्गुल और घृत मिलाकर जलाया गया, जिसका धूम्र आकाश में कपोतों के समान दिखाई देता था। राजपथ और सार्वजनिक स्थान तो राज्य की ओर से सजाये गये थे, किन्तु अपने अपने घरों को सभी ने स्वय ही अपनी इच्छा से—बिना किसी की आज्ञा के—ही सजाया था। सभी ने अपने घरों को झाड़ बुहार कर स्वच्छ किया था। उसके सामने सुन्दर सुगन्धित जल का छिड़काव करके सफेद, हरे काले रङ्गों से स्वस्तिक आदि बनाकर चौक पूरे थे। उसके आस पास सुगन्धित पुष्प बिछाये थे। द्वारों पर आम, अशोक, कनेर आदि के पल्लवों को लगाकर पुड़े हुए दरवाजे बनाये थे। उनमें बीच-बीच में पुष्पों के गुच्छे लगाकर वन्दनवार बाँधे थे। केलों के फल वाले वृक्षों के खम्बे गाड़ दिये थे। दोनों ओर जल से पूर्ण घड़े रख कर उन पर अन्कुरित जव रखे थे। ऊपर घी के दीपक जल रहे थे। एक बड़े थाल में खील के लावा, दधि, बिना

टूटे केशर में में रंगे अक्षत, कुंकुम, फल, फूल, दूर्वा, धूप, दीप आदि मंगल के पदार्थ रखे थे। ईख के पत्तों सहित गन्ने, केले के खम्भों से सटाकर खड़े कर दिये थे। इस प्रकार सभी ने श्यामसुन्दर के स्वागत की तैयारियाँ की थी। उस समय द्वारावती नगरी चित्र विचित्र रङ्ग के वस्त्राभूषण से सुसज्जित नव वधू के समान दिखाई देती थी।

भगवान् का आगमन सुनते ही सभी ने अपने-अपने काम उसी प्रकार छोड़ दिये जैसे विवाह के वाद्यों का शब्द सुनकर, बच्चे सभी कार्य छोड़कर उन्हें ही देखने को दौड पड़ते हैं। जो भोजन कर रहा था, उसके मुख का ग्रास मुख में, हाथ का हाथ में ही है, बिना कुल्ला किये दौड़ पड़ा। जो शैया पर शयन कर रहे थे, वे बिना आचमन किये ही भाग खड़े हुए। जो नहा रहे थे, वे गीले वस्त्रों से ही दौड़े। सभी मारे हर्ष के अपने आपे में नहीं रहे। नाना उग्रसेन, पिता वासुदेव, चाचा अक्रूर, भाई बलदेव—ये सभी बड़े हर्ष के सहित भगवान् के स्वागत के लिये नगर के द्वार की ओर चले। बलदेव जी ने अपने पुत्रों और भतीजों से कहा—"देखो, तुम लोग मंगल के सभी द्रव्य एकत्रित करके लाओ। अपना जो सबसे बड़ा हाथी है, उसे सजाकर उस पर विशाल पताका फहराकर स्वागत समारोह के आगे-आगे रखो। बाजे वाले अभी तक सुसज्जित होकर नहीं आये। उन सबके सरदार से कहो, कि हाथी के पीछे-पीछे वे सब एक स्वर ताल में बाजे बजाते हुए चलें।"

बलदेवजी की आज्ञा पाकर प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, साम्ब आदि सभी नवयुवक, वृद्ध ब्राह्मणों को आगे करके अपने अपने वाहनों पर चढ़कर, अत्यन्त उत्कण्ठा के सहित भगवान् का स्वागत करने चले। उस समय सभी इतने व्यग्र हो रहे थे, कि किसी को

किसी से कुछ कहने का अवकाश ही नहीं था। राज्य के जो नट, नर्तक, गाने बजाने वाले थे, वे भी अपनी-अपनी मंडली बना कर गाते बजाते, हर्ष से नृत्य करते हुए यादवेन्द्र श्रीहरि के दर्शनों को चले।

दूर से ही सबने देखा—जैसे सूर्य के रथ पर साकार नव जलधर विराजमान हो, उसी प्रकार श्यामसुन्दर अपनी शोभा से दशो दिशाओं को प्रकाशित कर रहे थे। अपने बन्धु-बान्धवों को व्यग्रता के सहित अपनी ही ओर आते देखकर भगवान् रथ से उतर पड़े। उन्होंने पहिले वेदज्ञ वृद्ध ब्राह्मणों को सिर से प्रणाम किया, फिर वसुदेव उग्रसेन आदि गुरुजनों के चरण छुये। जो अपने समवयस्क या थोड़े बड़े चाचा आदि थे, उन्हें हँसते हुए वैसी ही वाणी से प्रणाम किया। बराबर वालों से वे गले लगकर मिले जो अपने संकोच रहित सखा थे उनसे हाथ मिलाया। उनके पंजे को अपने पजे में कस कर उसे जोर जोर से मसला और फिर हँसते हुए उनके शरीर से लिपट गये। जो उनके छोटे भाई, पुत्र, पौत्र आदि थे उन्होंने स्वयं आकर भगवान् के चरण छुए। उनके सिर पर हाथ फेर कर भगवान् ने सब को यथोचित आशीर्वाद दिया, प्यार किया। जो अपने सेवक, भृत्य और आश्रित थे उन्होंने दूर से ही भगवान् को प्रणाम किया। उनसे हँसते हुए भगवान् ने पूछा—"कहो भाई, तुम सब अच्छी तरह से हो न ?" जो गाने बजाने नाचने वाली सुन्दरी युवतियाँ थीं, उनके प्रणाम के बदले में भगवान् ने उनकी ओर देखकर केवल मुस्कुरा दिया। उनका यही सर्वोत्तम सम्मान था। इस प्रकार उन सर्वान्तरयामी प्रभु ने थोड़े ही काल में ब्राह्मण से लेकर चाण्डाल पर्यन्त, अपने समस्त प्रजा का यथोचित सत्कार किया। उस समारोह में

एक भी पुरुष ऐसा नहीं था जिसे यह अनुभव होता हो, कि भगवान् ने हमारी बात नहीं पूछी। सभी समझते थे कि भगवान् ने हमारा ही सबसे अधिक सत्कार किया।

सब के सम्मान करने के अनन्तर अब भगवान् की सवारी ने द्वारका के राजमार्ग में प्रवेश किया। आगे आगे का पहाड़ के समान विशाल वारणेन्द्र चल रहा था। उस पर विशाल पताका फहरा रही थी। पीछे अनेक प्रकार के वाजे बज रहे थे। नृत्य करने वाली अपने हाव भाव दिखाती हुई आगे आगे नृत्य करती जाती थीं। गायक ताल-स्वर के सहित गीत गाते जाते थे। सूत, मागध और वन्दीगण भगवान् की विरुदावली का बखान कर रहे थे। बीच बीच में समस्त पुरवासी भगवान् के जयघोष से आकाश मंडल को गुंजा देते थे। इस प्रकार बड़े समारोह के साथ भगवान् की सवारी आगे बढ़ने लगी। द्वारिकापुरी की कुल कामिनियाँ जो सबके सामने सड़कों पर नहीं आ सकती थीं, वे अपनी अटा अटारी छज्जे तिवारियों में चढ़कर भगवान् के दर्शनों से अपने नेत्रों को सफल करने लगी। कितना सौंदर्य है उन श्यामसुन्दर का कैसे मनोहर हैं वे मदनमोहन, कितने सुघर हैं वे सर्वेश्वर, कितने मलूक है वे माधवमुरारी—स्त्रियाँ उन्हें देखते देखते अघाती नहीं थीं। रूप उसीको कहते हैं जो क्षण क्षण में नूतन हो नूतन दिखाई दे जिसका सौन्दर्य माधुर्य प्रतिपल बढ़ता ही प्रतीत हो। यद्यपि वे कुलकामिनियाँ सदैव ही श्यामसुन्दर को देखती थीं, सदा ही उन्हें अपने नयनों से निहारा करती थी तो भी उनकी तृप्ति नहीं होती थी। कैसा विशाल वक्षःस्थल है वासुदेव का, जिसमें श्रीवत्स का चिह्न है, लक्ष्मी सदा चंचलता छोड़ कर जिसमें निवास करती है। उनका मुख ज्या

है, सौन्दर्य रूपी अमृत के पीने का गोल-गोल नील मणियों से मढ़ा हुआ कटोरा है, जिसमें भर भरकर बार-बार अमृत पीने पर भी तृप्ति नहीं होती। उनकी आजानुलम्बित विशाल बाहुएँ लोकपालो की भी आश्रयदातृ हैं। वे सब इन्हीं के सहारे अपने को स्वतंत्र और सुखी समझते हैं। जिनके पुण्य पराग से पूरित पाद-पद्म, भौरे रूपी भावुक भक्तों के रस पान करने की आश्रय भूत हैं, उन्हें देखकर भला किसकी तृप्ति हो सकती है?

उस समय वर्षा ऋतु न होने पर भी द्वारका में वर्षा ऋतु की ही छटा दिखाई देती थी। स्वयं श्यामसुन्दर अमृत रूपी जल से भरे नवीन वर्षा करने वाले मेघ हैं। नगर वासियों और कुल कामिनियो द्वारा फेंके गये उनके ऊपर के फूल जो नीचे गिरते हैं, वे ही सफेद जल की बूँदें हैं। सुवर्ण वर्ण का उनका फहराता हुआ पीताम्बर ही मानो चमकती हुई बिजली है। रंग बिरंगी गले की वनमाला ही मानों इन्द्र धनुष है। जनता का जयघोष ही मानो मेघ की गर्जना है और भीड़ के पैरों की उड़ी हुई धूलि ही मानों अन्धकार है। इस प्रकार वे घनश्याम अमृत की वर्षा से सभी को प्रसन्न करते हुए द्वारका के राजपथों से जा रहे थे। नगरवासी बार-बार दर्शन करके भी तृप्त नहीं हो रहे थे। वे चाहते थे—भगवान् इसी प्रकार सवारी पर चढ़े हुए सदा राजपथों में घूमते ही रहें, किन्तु अन्तःपुर में बैठी हुई भगवान् की पत्नियो के कानों में उन बाद्यों का बजना और जनता का जयघोष शूल के समान चुभ रहा था। वे चाहती थीं—कब यह धूमधाम समाप्त हो और कब प्राण धन अन्तःपुर में पधारें। वे कुलवधू, आर्य ललनायें न तो सड़क पर आ सकती थीं, न झरोखे से ही ताक सकती

थी, वहीं मन मारे मदनमोहन के आगमन की प्रतीक्षा करने लगी। अब तक श्यामसुन्दर परदेश थे, अतः उनकी सभी पत्नियाँ क्रीड़ा, शरीर संस्कार, समाजोत्सव दर्शन, हास्य और परगृह गमन, इन सबका त्याग—जो प्रोषितभर्तृका के नियम है, वे धारण किये हुए थीं। आज जब श्यामसुन्दर पुरी में पधार गये, तो उन्होंने अपने व्रत का त्याग किया। विधिवत् स्नान करके केशपाशों को सम्हाल कर उन्होंने सोलहों शृङ्गार किये और वे अपने प्राणनाथ के दर्शनों के लिये अत्यन्त ही उत्कण्ठित हो रही थीं। उनका एक एक क्षण युग के समान व्यतीत हो रहा था।

छप्पय

नव जलधर सम श्याम सुभग वर बरसा बरसें।
जनता करि जय घोष दरस तें अति ही हरसें॥
श्याम अङ्ग पटपीत गरे वनमाला सोहे।
मानों घन में तड़ित इन्द्र धनु मन कूँ मोहे॥
प्रेम सुधा बरसावते, हिय में सुख सरसावते।
पुरवासिनि हरसावते, सुने श्याम गृह आवते॥

अन्तःपुर में घनश्याम

(३८)

तमात्मजैर्दृष्टिभिरन्तरात्मना,
दुरन्तभावाः परिरेभिरे पतिम् ।
निरुद्धमप्यास्रवदम्बु नेत्रयो,
विलज्जतीनां भृगुवर्यवैक्लवात् ॥*

(श्री भा० १ स्क० ११ अ० ३२ श्लोक)

छप्पय

अति-उत कण्ठित महल माँहि महिषी मातायें।
आके कब यदुनाथ पुरावें चिर आशायें॥
इतने में घनश्याम, महल माता के आये।
सब मातनि मृदुल चरन में शीश नवाये॥
अङ्क बिठा सिर सूँघि सब, प्रेम वारि बरसा करति।
चूमि चाटि गौ वत्स सम, विरह विथा हिय की हरति॥

प्रतिक्षा की घड़ियाँ कितनी मनोहर, कितनी विकलता पैदा करने वाली, कितनी तन्मयता प्राप्त करा देने वाली होती हैं। उस समय दृष्टि में वही रहता है जिसकी प्रतीक्षा की जाती

* श्रीनिवास श्यामसुन्दर जब माता के महलों से अपनी महिषियों के मन्दिरों में गये, तो गूढ़ भाव वाली लज्जाशील कुलवती ललनाओं ने

है। उस काल में अन्य सभी राग-रङ्ग, सुखकर विषय फीके प्रतीत होते हैं। किसी को पार जाने की शीघ्रता हो, फाल्गुन का मास हो, नौका वाले अपने राग-रङ्ग और आमोद-प्रमोद में मस्त हों, समय होने पर भी नौका न खुली हो, तो उस समय उस पर जाने वाले पथिक का एक-एक क्षण एक-एक कल्प के समान व्यतीत होता है। जो समय दूसरों को सुखकर है वही पात्र भेद से आवश्यकतानुसार दूसरों को दुखकर है। जो कार्य एक को आनन्द दे रहा है, परिस्थिति के अनुसार वही दूसरे को निरानन्द बना रहा है। इससे सिद्ध होता है, आनन्द किसी वस्तु में नहीं है। वस्तु तो सभी पञ्चभूतों की ही बनी हुई है। समय में भी आनन्द नहीं, वह तो सदा अपनी एक ही गति से बहता रहता है। आनन्द का स्थान है अपना अन्तःकरण और परिस्थिति। परिस्थितियों के अनुसार ही हृदय में आनन्द और निरानन्द की लहरें उठती रहती हैं। वाह्य उपकरणों का समष्टि सुख दुःख के साथ कोई स्थाई सम्बन्ध नहीं।

महलों में श्यामसुन्दर की सातों मातायें, सोलह हजार एक सौ आठ पत्नियाँ प्रतीक्षा में बैठी व्यग्र हो रही थी, कि कब यह धूमधाम समाप्त हो और कब यदुनाथ महल में पधार कर हम सबको सनाथ करें। स्वयं श्यामसुन्दर भी चिर वियोग

पहिले अपने प्रियतम का मन से आलिंगन किया, पुनः टेढ़ी चितवन से उनकी आँखों में अपनी दृष्टि घोलकर एकीभाव को प्राप्त हुई। इसके अनन्तर अपने बच्चों के द्वारा उनका आलिंगन किया। सूतजी कहते हैं—"हे शौनक जी! यद्यपि उन्होंने अपने नयनों में उमड़ते हुए अश्रु प्रवाह को बहुत रोका, तो भी वे लज्जावश ढुलक ही पड़े।

में व्याप्त अपनी माताओं और पत्नियों से मिलने को उत्कण्ठि
थे। सुधर्मा सभा के सम्मुख आकर वह समारोह सम
हुआ। भगवान् ने सभी का यथोचित सत्कार और सन्त
करके, सेवकों और आश्रितों को मनोवांछित पारितोषि
देकर विदा किया। पुनः सबसे मिल-जुल कर, वड़ों
अनुमति और आयसु लेकर, उन्होंने उद्धव और सात्यकि
सहित अपने अन्तःपुर में उसी प्रकार प्रवेश किया जै
सिंह अपनी गुफा में प्रवेश करता है। स्वजनों के सम्मिल
से उनका पूर्णचन्द्र के समान विकसित मुखारविन्द और
भी अधिक विकसित हो रहा था। सर्व प्रथम वे अपनी
माताओं के महलों में गये। दूर से ही अपने वाह्य प्राण,
हृदय के टुकड़े त्रैलोक्य वन्दित, यशस्वी पुत्र को आते देख कर
माताओं के हर्ष का ठिकाना न रहा। श्यामसुन्दर शीघ्रता
से आकर माताओं के चरणों में लिपट गये। उन्होंने अपनी
गोल-गोल, सुडौल, विशाल बाहुओं से अपनी माताओं के रक्त
वर्ण किन्तु वृद्धावस्था के कारण सिकुड़े हुए पैरों को पकड़ा।
माताओं ने उनका सिर झुकाकर सूँघा। उस पर दोनों हाथ
रखे। उनके स्तनों से अपने आप स्नेह का दूध बहने लगा,
जिससे श्यामसुन्दर का पीताम्बर भीग गया। अत्यन्त स्नेह
से अपने बच्चे का उन्होंने आलिंगन किया। शिशु की भाँति
गोद में विठा कर उनके सम्पूर्ण शरीर पर हाथ फेरा। स्नेह के
कारण जिनका गला रुक गया था, ऐसी माता देवकी कुछ
रुक-रुक कर बोली—"भैया, तुम तो इतने दिन लगा देते हो।
हम सब लोगों का तुम्हें तनिक भी ध्यान नहीं रहता। तुम्हारे
बिना हमारी क्या दशा होती है। तुम अपने शरीर का भी
ध्यान नहीं रखते, कितने दुबले हो गये हो। हस्तिनापुर में

ऐसा क्या काम अटक गया कि वहाँ इतने दिनों तक रहे? वहाँ सब लोग कुशल से है? बीबी कुन्ती जी अच्छी हैं? उनके पाँचों बच्चे अच्छी तरह हैं? सुभद्रा तो बहुत रोती होगी? उसका युवा पुत्र मारा गया और सब लोग अच्छे हैं?"

भगवान् ने कहा—"हाँ,सब लोग अच्छे हैं। क्या बताऊँ? वह दुर्योधन बड़ा दुष्ट था। बहुत समझाने-बुझाने पर भी वह पांडवों को उनका राज्य लौटाना नहीं चाहता था। पहिले तो मैंने ऐसा ही प्रयत्न किया, कि दोनों में परस्पर मेल-जोल हो जाय, किन्तु बहुत प्रयत्न करने पर भी मैं इस कार्य में सफल न हो सका। तब विवश होकर युद्ध ही करना पडा। उसमें सभी कौरवों के पक्ष के लोग मारे गये। पांडव विजयी हुए। अब धर्मराज सम्राट हो गये हैं। उन्हें सिंहासन पर बिठा कर, राज्य की सभी व्यवस्था करके ज्यों ही निवृत्त हुआ, त्यों ही चला आया। इन्हीं सब कार्यों के कारण देरी हो गई।"

सब माताओं ने कहा—"अच्छा हुआ, भैया! पांडवो को फिर राज्य मिल गया। बीबी कुन्ती जी ने उनके पीछे कितने कितने क्लेश सहे, कहाँ-कहाँ उन्हें जङ्गल पहाड़ों में लिये-लिये फिरीं, पाण्डवों ने सदा दुःख ही उठाये हैं। अब वे अन्त समय में सुख का उपभोग करेंगे। बीबी कुन्तीजी भी अब अपने बच्चों को सुखी देख कर सुखी होंगी।"

जो भगवान् की पत्नियाँ अत्यन्त ही उत्कण्ठित हो रही थीं, जिनके हृदयों को महोत्सव के मनोहर बाजे भी विष बुझे बाणों के समान वेध रहे थे, उन्होंने जब देखा कि प्राणवल्लभ तो माताओं के ही समीप अटक गये, माताओं के समीप वे

अपने प्राणनाथ के समीप जा सकतीं ? जब वे भीतर से ही बार-बार झाँकने लगी, किन्तु उन्हें वह त्रैलोक्य मोहिनी माधुरी मूरत ओट में से अच्छी तरह दिखाई नहीं देती थी। मातायें और बूढी दासियाँ उन्हें घेरे खडी थी श्यामसुन्दर का मुख भी माताओं की ओर था। केवल फहराते हुए पीताम्बर का छोर ही छोर दिखाई देता था। शौनकजी ! आर्यललनाओ का कैसा उत्कृष्ट सदाचार है ? वे अपने प्रेम का प्रदर्शन नही करती। वे उत्कण्ठा के साथ शील और लज्जा को मिला कर प्रेम का पान करती है। वे निर्लज्ज होकर सबके सामने प्रेम की विडम्बना नही करती। प्रेम ऐसा अद्‌भुत रस है, कि इसे जितना ही शील सकोच के साथ, जितना ही एकान्त से एकान्त में पान किया जायगा उतना ही अधिक स्वादिष्ट प्रतीत होगा। शील संकोच से उसकी मधुरिमा अत्यधिक बढ़ जाती है।

मातायें नूपुरों की झंकार और कड़े, छड़े पाईजेबों की खन-खनाहट तथा चूड़ियों की झनझनाहट से समझ गईं, कि बहुएँ अत्यधिक उत्कंठित हैं अतः बात के प्रवाह को रोकती हुई देवकी जी बोली—"अच्छा भैया, अब फिर बातें होंगी इस समय तो तुम दूर से आये हो, बहुत थके होगे। मुँह भी कुम्हला रहा है। अब भीतर जाओ, भैया ! वस्त्र बदलो। स्नान आदि करके भोजन करने जाओ। अभी प्रातः से कुछ खाया भी न होगा।"

इतना कह कर मातायें स्वयं ही उठ खड़ी हुईं। पास में खड़े उद्धव और सात्यकि मातओं को प्रणाम करके भगवान् से अनुमति लेकर लौट गये। अब अकेले श्यामसुन्दर रह गये। महलों की दासियों और कंचुकियों उन्हे श्री सत्यभामाजी के समस्त समृद्धिपूर्ण विशाल

भवन का मार्ग दिखाया । दास दासियों से घिरे श्यामसुन्दर ऐसे ही प्रतीत हो रहे थे, मानों साक्षात् मन्मथ अपनी सेना के सहित चिरवियोगिनी रति के पास जा रहा हो ।

अपने हृदयघन को आते देखकर वे बड़े संभ्रम के साथ उठ कर खड़ी हो गईं । आर्य ललनाओं की भाँति वे लजाती हुई, भूमि की ओर देखती हुई, अञ्चल की आड़ से मनमोहन की माधुरी को निहारती हुई, चुपचाप खड़ी हो गईं । उन्होंने बहुत चाहा कि नेत्रों में अश्रु न आने पावे, किन्तु आँखें भी तो कमलनयन के स्वागत के लिये समुत्सुक थी। उन्हें भी तो अपने को सार्थक बनाने वाले मदनमोहन को अर्घ्य देना था अतः रोकने पर भी वे न मानी और उन्होंने अश्रु बिन्दुओं के द्वारा अपने सर्वस्व को अर्घ्य प्रदान कर ही डाला । जो अकुलीन अनार्य वंश वाले होते है, वे ऐसे समय पर धैर्य और लाज दोनों को तिलांजलि दे देते हैं, किन्तु आर्य सभ्यता ने सभी विषय की मर्यादा स्थापित कर दी है । सर्वदा मर्यादा के भीतर ही रहकर व्यवहार करना चाहिये ।

इतने दिनों के पश्चात् आये हुये अपने स्वामी का आलिंगन कैसे करें ? घर में बच्चे भी है, दासियाँ भी है । अतः स्त्रियो के जो सबसे छोटे शिशु थे, उन्हें सकुचाते हुए अपनी गोद से लेकर श्यामसुन्दर को गोदी में दे दिया । फूल की तरह खिले हुए मुख वाले अपने ही अनुरूप सुन्दर शिशु का श्यामसुन्दर ने स्नेह से आलिंगन किया, उनका मुँह चूमा । उँगली से उसके मुँह को हिलाते हुए कहने लगे—"देखो, बच्चा दुबला हो गया हैं, इसकी भली प्रकार देख रेख भी नही की जाती है ।" मुँह लगी दासी कहने लगी…"अपने पिता की याद करते करते बच्चा दुबला हो गया है । पिता की गोद मे पहुंचते :

खिल-खिलाने लगा है।" इस प्रकार बच्चे को हृदय से लगाकर समस्त प्रेम उस पर उड़ेल कर दोनों हाथों से लेकर उसे आगे बढ़ाया। समीप ही सकुचाती और मन ही मन सिहाती हुई प्राणवल्लभा ने भी दोनों हाथ आगे कर दिये। बच्चे को लेते समय श्यामसुन्दर के नील कमल के नील के समान उँगलियाँ छूट गईं। पीताम्बर में चुन्दरी का छोर उलझ गया और भूल में सिर की चन्द्रिका मोरमुकुट से भी सट गई। बच्चे को लेकर उन्होंने अपने हृदय से लगाया, मानो प्रेम के आदान प्रदान में यह शिशु ही मध्यस्थ है। बच्चे को प्यार करते समय, हृदय से लगाते समय, जो दिव्य सुगंधित केशर उसके अङ्गों में लग गई थी, उनकी माताओं ने अपने हृदयों पर धारण किया। इस प्रकार बच्चों को बीच में करके, मानों उन्होने अपने जीवन धन का ही आलिङ्गन कर लिया हो।

इस प्रकार भगवान् एक श्री रुक्मिणीजी के ही महलों में अटके रह गये हो, सो बात नही। उन्होने उसी समय अपनी योगमाया के प्रभाव से सोलह हजार एक सौ आठ रूप बनाये और सभी के महलो मे एक ही समय में प्रवेश किया। सभी को ऐसा प्रतीत हुआ कि देखो, श्यामसुन्दर मेरे ऊपर कितना स्नेह करते है। परदेश से आते ही सर्वप्रथम मेरे महलों में पधारे। मेरी सौतों को यह सर्वश्रेष्ठ सौभाग्य प्राप्त नही हुआ। उन्हें क्या पता था, कि सभी को समान सौभाग्य प्रदान करने वाले सर्वान्तर्यामी प्रभु की यह लीला है।

शौनकजी! इस अवतार मे तो भगवान् सौन्दर्य माधुर्य की पराकाष्ठा कर दी। जो भी उनके भुवनमोहन रूप को

देखता, वही आपे से बाहर हो जाता था। फिर इन महारानियों के भाग्य का तो कहना ही क्या, जिनके महलों में सदा श्याम-सुन्दर समान रूप से निवास करते हैं। वे रानियाँ निरन्तर भगवान् को निहारती हैं, किन्तु निहारने से उनकी तृप्ति नही होती, और भी उत्सुकता बढ़ती ही जाती है। उन्हें अनुक्षण उनका रूप नवीन ही नवीन दिखाई देने लगता है। यही कारण है कि इन्हीं चरणों में आकर चंचल चपला लक्ष्मी ने अपना चंचलता का स्वभाव छोड़ दिया है। वह इन चरणों की दिव्य गंध में इतनी अनुरक्त हुई हैं कि कभी स्वप्न मे भी इन्हें छोड़कर नहीं जातीं। जब स्वभाव से चंचला लक्ष्मी की यह दशा है, तो अन्य महर्षियों का जो जन्म से ही उन्ही में अनुरक्त हैं, ऐसा विलक्षण भाव होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

इस प्रकार सबको सब प्रकार से सन्तोष देकर भगवान् अपने वस्त्र बदले, स्नान किया, अंगराग लगाया और पुनः अनेक रूपों से अपनी पत्नियों के घर, माताओं के घर भोजन किया और रात्रि में फिर अपनी प्रेयसियों से बिना संकोच घुल-घुल कर प्रेम को बातें करते रहे। इस प्रकार भगवान् हस्तिनापुर से आकर सुखपूर्वक वैकुण्ठ के समान अपनी द्वारावती पुरी मे रहने लगे। वे सभी स्त्रियाँ समझती थीं कि भगवान् हमारी मुट्ठी में हैं, हमारी कठपुतली बने हुए हैं। हम उन्हें जैसे चाहें नचा सकती हैं, जिधर चाहें घुमा सकती हैं, जो चाहें करा सकती है। उनका ऐसा समझना उचित ही था, क्योंकि भगवान् का व्यवहार ही ऐसा कपटपूर्ण था। वे बेचारी क्या जानती थीं कि ये विश्व को नचाने वाले हैं। पृथ्वी पर जब नर रूप में बहुत से असुर पैदा हो गये, तो

आपस में ही भिड़ा दिया, जैसे बाँस आपस में ही रगड़-रगड़ कर अग्नि उत्पन्न करते हैं और उसी अग्नि मे सबके सब भस्म हो जाते है। अत: वायु की तरह अरूप होकर, तटस्थ होकर एक दूसरे को लड़ा दिया। आप नि.शस्त्र होकर केवल रथ को हाँकते हुए इस द्वन्द रूपी पहियों वाले संसार रथ को अलग बैठ कर चलाते रहे। वहाँ सबने उन्हें अर्जुन का सारथि ही समझा और वहाँ द्वारावती में साधारण मनुष्य के समान, हजारों रति से भी बढ़कर सुन्दरियों के साथ रमण करते रहे। वे स्त्रियाँ साधारण सौन्दर्य वाली नहीं थी। उनके रूप सौन्दर्य से परास्त होकर कामदेव निहत्था हो जाता था। वह भी अपना ऊख का धनुप और पुण्य पुष्पों के शर को रख कर अन्यमनस्कता हो जाता था। जब वे अप गूढ अभिप्रायों को सैनों के सकेतों द्वारा व्यक्त करती जब वे अपनी निर्मल सुन्दर स्वाभाविक हँसी से हँस पड़तीं, जब वे अपनी तीखी, कटीली लजीली, चितवन से देखने लगती, तब और की तो बात ही क्या, कामदेव भी लज्जित होकर मूर्छित हो जाता। उन्हें अपने अपार सौन्दर्य पर अत्यधिक गर्व था। किन्तु वे श्यामसुन्दर के मन को मोहने में समर्थ नहीं हुईं

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! इतना सौंदर्य तो कहीं सुना नहीं। फिर भी भगवान् उनमे निर्लिप्त भाव से कैसे रहे? भगवान् होने पर भी वे लीला तो मनुष्यों की सी कर रहे थे। उनके मन में कभी चञ्चलता नहीं आई थी क्या?"

सूतजी हँस कर बोले—"शौनकजी! आपने भी कैसा असङ्गत प्रश्न कर डाला? क्या भगवान् के विषय में ऐसा प्रश्न करना आप सर्वज्ञ के लिये उचित है? आप सब जानते

हैं संसार का समस्त सौंदर्य श्यामसुन्र के अखिल सौंदर्य राशि का कण मात्र है। एक बिन्दु सिन्धु को कैसे भिगो सकता है ? एक कण मिश्री क्षीरसागर को मधुर बनाने में कैसे समर्थ हो सकती है ? एक सरसों का दाना सुमेरु को कैसे ढक सकता है ? इसी प्रकार यह संसारिक सौन्दर्य श्यामसुन्दर को मोहित किस प्रकार कर सकता है। जो भगवान् का वास्तविक तत्व नही जानते' वे ही उन्हें संसारियों की तरह कर्मो में प्रवृत्त देख कर उन्हें भी संसारिक समझने लगते है। वास्तव में तो सर्व सङ्गो से निवृत्त हैं। उनमें अविद्या, माया या प्रकृति का लेशमात्र भी संसर्ग नहीं है। आप प्रत्यक्ष देखें, बुद्धि आत्मा के आश्रित है, किन्तु आत्मा का जो सर्वदा आनन्दमय स्वरूप है, उससे वह लिप्त नहीं है। इसी प्रकार भगवान् प्रकृति में स्थित से प्रतीत होते हैं। प्रकृति को साथ लेकर भाँति-भाँति की कमनीय क्रीड़ायें करते रहते है किन्तु स्वयं उससे सदा निर्लिप्त रहते है। आप कहेंगे--यह तो असम्भव है। जल में गोता लगावें भी और शरीर में जल का स्पर्श न हो। सो शौनक जी ! भगवान् के लिये असम्भव कुछ नही है। यही तो उनकी भगवत्ता है, कि सब कुछ करते हुए भी अकर्ता बने रहे। सब के सङ्ग रहते हुए भी निःसङ्ग निर्लेप ही रहे। ऐसे भगवान् को भी वे बेचारी अबलायें एकान्त में घुल-घुल कर बातें करते देखकर समझतीं थी कि अब ये हमारे वश में आ गये। वास्तव में भक्तों को छोड़ कर भगवान् किसकी वश में आने वाले है। भक्त तो उन्हें जैसे चाहें नचा सकते हैं, शेष सब जीवों को तो वे जैसे मदारी बन्दरों को नचाता है, वैसे ही मायारूपी रस्सी में बांधकर नचा रहे हैं।

इस प्रकार भगवान् पृथ्वी का भार दूर करके सुखपूर्वक अपनी द्वारिकापुरी में रहकर, समस्त बन्धु बान्धव और प्रजाजनों को आनन्दित करने लगे।

छप्पय

सुनि नूपुर की झनक,चुरिनि की खनक मनोहर।
माँ बोली—'अब जाउ वस्त्र बदलो भीतर घर॥
मन्द मन्द मुस्कात, महल में मोहन आए।
नारि निरखि नँदनंद नयनते नीर बहाए॥
मन तें मोहन ते मिलीं, नयन ओट तें चोट करि।
शिशु सौंप्यो पुनि लाइ उर, आलिङ्गन यों किए हरि॥

महाराज परीक्षित् का जन्म

(३६)

ततः सर्वगुणोदर्के सानुकूलग्रहोदये।
जज्ञे वंशधरः पाण्डोर्भूयः पाण्डुरिवौजसा ॥*

(श्रीभा० १ स्क० १२ अ० १२ श्लोक)

छप्पय

बोले शौनक—"सूत ! सुधा सम कथा सुनाई।
कही परीक्षित् जन्म कर्म बल वीर्य बड़ाई॥
कहें सूत—सब सुनो कुक्षिगत बालक जलते।
निरखे निर्मल रूप गदा तें रक्षा करते॥
करे परीक्षा कौन ए सुन्दर श्याम स्वरूप युत।
दशम मास में तिरोहित, भये प्रकट अभिमन्यु सुत॥

श्री भगवान् के गुणों में इतना सौंदर्य है, उनमें इतनी दिव्य मिठास है, कि अधिकारी पुरुष—जिसके पूर्वकृत पाप क्षीण हो गये हैं, वह सुनता है तो अपने आपे को भूल जाता है, फिर उसे अन्य विषयों का ध्यान ही नहीं रहता। जैसे

* इसके अनन्तर जब अनुकूल ग्रहों के साथ शुभ ग्रहों का उदय हुआ, जिसमें जन्म लेने से बालक के सभी गुणों का विकास होता है ऐसे शुभ लग्न आने पर महाराज पाण्डु के वंश को बढ़ाने ...

विपयी पुरुष विषय वार्ताओं में निमग्न होने से अपने श्रेय को भूल जाता है। जैसे मद्यपी मद्य के नशे में कर्तव्याकर्तव्य को भूल जाता है। वैसे ही भगवत् वार्ता सुनते-सुनते साधु पुरुष इस संसार को भी भूल जाते है।

भगवान् की दिव्य रसीली कथाओं को सुनते-सुनते शौनकादि मुनि इतने तन्मय हुए, कि अपने मुख्य प्रश्न को भूलकर भगवत् चरित्र के प्रवाह में ही वह गये। जब सूतजी श्यामसुन्दर को द्वारकापुरी पहुंचकर उनके स्वजन, प्रिय बन्धु बान्धव और प्रियतमाओ से मिलकर चुप हो गये, तब ऋषियों को वाह्य ज्ञान हुआ। जैसे सोता हुआ पुरुष एक साथ नींद से उठकर स्वप्न की बातों को स्मरण करके इधर-उदर देखता है और जब उसे निश्चय हो जाता है कि स्वप्न की बातें विलीन हो गईं और मैं जैसे रात्रि में सोया था वैसे ही शैया पर सो रहा हूँ, तब वह अपने पूर्व व्यापारों में प्रवृत्त होता है।

अब तक तो शौनकादि ऋषि अपने को भगवान् के साथ ही साथ द्वारावती गये, वहाँ से स्वागत समारोह और धूम-धाम में भी सम्मिलित हुए। भगवान् जब अन्तःपुर मे प्रवेश कर गये, तो भी भीतर की बातें सुनने को सुधर्मा सभा के द्वार पर खड़े रहे। जब सूतजी चुप हो गये, तब उन्हें वाह्य-जगत् का भान हुआ। भाव जगत् से स्थल जगत में आये। उन्होंने देखा—अरे, हम तो नैमिपारण्य मे बैठे हैं, सूत कथा सुना रहे है और हम सब उनके मुख से श्रवण कर रहे हैं तब तो आश्चर्य चकित होकर शौनकजी कहने लगे।

परिक्षित् का जन्म हुआ। वे अपने तेज से ऐसे जान पड़ते थे, मानो स्वयं महाराज पांडु ने ही फिर से जन्म ग्रहण कर लिया हो।

सूतजी की ओर देखकर महामुनि शौनक बोले—"महाभाग सूतजी ! आप कथा क्या कह रहे हैं, मानों अपनी वाणी में अमृत घोल-घोल कर हमारे कर्णों में उँड़ेल रहे हैं महाभाग ! हम तो ऐसे तन्मय हो गये, कि भगवद् भाव भावान्वित ही हो गये। हम आपको, नैमिषारण्य को, गोमती को, सभी को भूल गये। हमने प्रश्न किया था, महाराज परीक्षित् के जन्म का और आप गर्भस्थ परीक्षित् की ब्रह्मास्त्र से रक्षा कराने की कथा सुनाते-सुनाते कृष्ण कथा का ही रसास्वादन कराने लगे। जैसे किसी मिठाई बेचने वाले से रसगुल्ला बनाने के लिये हम छेना का मोल-भाव करे और वह छेना का मोल भाव बताते बताते ही, सुन्दर स्वादिष्ट हाल के बने रसगुल्ले भी बिना मूल्य के खिलाता जाय, उसी प्रकार हमारे द्वारा भक्त का प्रसङ्ग पूछे जाने पर, आप इतना अधिक भगवत् चरित भी सुना गये। दूसरे किसी प्रसङ्ग की कथा होती, तो यह विषयांतर ही समझा जाता, किन्तु भगवत् कथा में तो विषयांतर की सम्भावना ही नहीं।

समुद्र की लहरों का आदि नहीं, अन्त नहीं। जिस दिन जिस समय से गिनना आरम्भ करो, वही आदि है, जहाँ समाप्त कर दो, वहीं अन्त है। लहरों के गिनने वाले ने न आदि देखा, न अन्त। मन से ही उसने आदि अन्त की कल्पना कर ली। इसी प्रकार भगवत् चरित अपार है। जहाँ से आरम्भ करो वही आरम्भ है। उसमें विषयान्तर की सम्भावना कैसे हो सकती है। आम चूसने में तो नियम है, कि जिस ओर डाल में लटकता है, उधर उसका मुँह होता है। नख से उसके मुँह को खोल-कर, चेंप को निकाल कर, तब चूसिये, बड़ा आनन्द आवेगा। किन्तु मिश्री की डली में तो कोई नियम नहीं, जहाँ से भी

जहाँ से भी चूसो, वहीं से मिठास। उसमें कोई हेय पदार्थ नहीं, कोई नियम नहीं, सर्वत्र मिठास ही मिठास है। इसी प्रकार भक्तों के चरित्रों में तो कुछ नियम रहता भी है, उनका चरित्र जन्म से कहो, संसारी लोगों के मोह वाली बातों को छोड़ दो, संक्षेप कर दो, किन्तु भगवत् चरित तो चारों ओर से, सुधा से परिपूर्ण है। उनमें अत्युक्ति नहीं, प्रसङ्गान्तर नहीं विषयान्तर नहीं, आदि नहीं,मध्य नहीं, अन्त नहीं। वह तो सुधा रस का सागर है, जहाँ से चाहो पीलो, जहाँ चाहो नहा लो। सर्वत्र एक सा ही गुण.एक सा ही स्वाद एक सी ही प्रसन्नता है।

हाँ, तो आप यह बता रहे थे, कि द्रोण पुत्र अश्वत्थामा ने द्वेष वश पांडुवंश को निर्मूल करने के लिये, उत्तरा के गर्भ में स्थित महाराज परीक्षित् को मारने के लिये और पांडवों को मारने के लिये ब्रह्मास्त्र से अभिमन्त्रित करके पृथक्-पृथक् छः बाण छोड़े। भगवान् ने अपने सुदर्शन चक्र से पांडवों की ओर आये हुए बाणों को तो काट दिया, किन्तु अब हमें यह बताइये कि उस गर्भ के बालक की रक्षा भगवान् ने कैसे की ? भगवान् ने ही कृपा करके जिनकी गर्भ में रक्षा की, बिना साधन के ही गर्भ में जिन्हें भगवान् के दर्शन हो गये, उन महाभाग परीक्षित् के जन्म कर्म और देह त्याग के वृतान्त को हम सब विस्तार के साथ सुनना चाहते हैं। अन्त समय व्यास नन्दन श्रीशुकदेवजी ने उन्हें कैसे और कहाँ किस प्रकार का उपदेश दिया ? यह भी समझाइये और इस बात को भी बताइये, कि अन्त में उन्हें कौन सी गति प्राप्त हुई इन सब बातों को सुनने के लिये हमें बड़ा कुतूहल हो रहा है। यदि आप उचित समझें और हमें उस कथा को सुनाने का अधिकारी मानते हों तब तो सुनाइये और यदि कोई

रहस्य की बात हो, जो सबके सामने कहने में संकोच हो, तो उसे रहने दें, और अन्य चरित्र सुनावें।"

ऋषियों के ऐसे कोमल भक्ति और उत्सुकता पूर्ण प्रश्न को सुनकर सूतजी हँसे और बोले—"मुनियो ? आप से अधिक इस कथा को सुनने का उत्तम अधिकारी और कौन होगा ? आप ही तो इसके श्रवण करने के पुनीत पात्र हैं। आपके द्वारा ही प्रकट होकर तो ये पुण्य कथाएँ संसार में प्रसिद्ध होकर माया बद्ध संसारी दुखी जीवों के पाप तापों को सदा नष्ट करती रहेंगी। मैंने विषयान्तर नहीं किया। आपने मुझ से महाराज परिक्षित् के जन्म का वृत्तान्त पूछा था, मैंने उनके पूर्वजों का वृत्तान्त बताकर भगवान् वासुदेव ने जैसे गर्भ में उनकी रक्षा की वह बात बताई। भगवान् तो द्वारका जाने को उत्सुक थे, उन्हें मैं वहीं छोड़कर आपसे आगे की कथा कैसे कहता ? अब भगवान् अपने अन्तःपुर में आ गये। सभी पुरजन, राज्य और नगर के लोग हर्षित हो गये। अब मैं भगवान् को पहुँचाकर इधर हस्तिनापुर की कथा कहूँगा। फिर हमारी कथा का मुख्य उद्देश्य तो भगवत् चरित का ही वर्णन है जो अवसर पर मुझे सहज ही प्राप्त हो गया था उसे मैं कैसे छोड़ता ?"

इतना सुनकार शौनकजी ने शंका की—"सूतजी ? हमने तो ऐसा सुना है कि ब्रह्म तेज से दग्ध होकर महाराज परीक्षित् मृतक होकर ही माता के गर्भ से निकले थे। उन्हें मृतक देख कर सब लोग विलाप करने लगे। तब श्रीकृष्ण भगवान् वहीं विराजमान थे। उन्होने अपनी योग शक्ति से उस बालक को स्पर्श करके जिला दिया और आप अब भगवान्

पहुँचा कर तब श्रीपरीक्षित् के जन्म की कथा कह रहे हैं, तो क्या परीक्षित् जी के जन्म के समय भगवान् फिर हस्तिनापुर आये थे ? हमारे इस संदेह को दूर किजिये ।'

शौनक जी के प्रश्न को सुनकर सूतजी कहने लगे—"भृगु वंशावतंश श्रीशौनकजी ! ऐसी कथा मैंने भी सुनी है। किसी कल्प मे ऐसा भी हुआ होगा । किन्तु इस भागवती कथा के प्रसंग मे ऐसी घटना का घटित होना भगवत् कृपा के महत्व घटाना है, भगवान् की भक्तवत्सलता को कम करना है। भगवत कृपा के सम्मुख ब्रह्मास्त्र की क्या शक्ति है, कि वह किसी को मार सके ? महाराज परिक्षित का गर्भ में बाल भी बाँका नही हुआ । वहाँ तो उन्होंने एक अद्भुत घटना देखी। उसकी तो परीक्षा करते-करते वे परीक्षित् के नाम से प्रसिद्ध हुए । अब सुनिये, सब वृत्तान्त मैं आपको आदि से ही सुनाता हूँ।"

भगवान् वासुदेव द्वारका को चले गये । धर्मराज युधिष्ठिर धर्म पूर्वक अपनी समस्त प्रजा का पुत्रवत् पालन करने लगे जिर पर समस्त ऐश्वर्य के निधि, समस्त कामनाओं के पूर्ण करने वाले, कल्पवृक्ष स्वरूप लक्ष्मीपति भगवान् सन्तुष्ट हैं, उनके ऐश्वर्य का वर्णन करना व्यर्थ है। पांडुपुत्र महाराज युधिष्ठिर को कमी ही किस बात की थी ? संसार में सुख के कारण धन संम्पत्ति, पुत्र पत्नी परिवार, राज्य ऐश्वर्य यश और पुण्य कार्य आदि इतने ही बताये जाते हैं। धर्मराज की सम्पति की कोई गणना ही नहीं थी, उन्होने इन्द्रप्रस्थ में रह कर भी राजसूय प्रभृति अनेक यज्ञयाग और पुण्यादि कर्म किये थे, उनकी पत्नियाँ उनके अनकूल कुलीन और सुन्दर थी, उनके

सभी भाई लोकपालों की भाँति पराक्रमी शूरवीर, विश्वविजयी और देवताओं द्वारा भी प्रशंसित और सम्मानित थे। समस्त जम्बूद्वीप के वे एकछत्र सम्राट थे। पृथ्वी पर उनका प्रतिस्पर्धी दूसरा कोई भी बली राजा नहीं था। पृथ्वी पर ही नहीं, स्वर्ग पर्यन्त उनका अमल यश व्याप्त हो रहा था। उनके चारु चरित्रों और पुण्य पराक्रमों का गायन स्वर्ग मे सिद्ध, चारण, गन्धर्व बड़े ही सम्मान के साथ करते थे। इतना सब होने पर उनका चित्त सदा श्यामसुन्दर के चरणारविन्दों में ही लगा रहता था। ये विपुल वैभव, अटूट सम्पत्ति उनके सुख का कारण नही कही जा सकतीं। उन्हें सुख तो भगवान् वासुदेव की निरन्तर स्मृति से ही मिलता था। ये संसारी सुखभोग तो उनके लिये भारभूत थे। कर्त्तव्य पालन की दृष्टि से वे इन्हें अनिच्छापूर्वक भगवत् आज्ञा समझ कर वहन कर रहे थे। आप ही सोचो—जिसने मिश्री का स्वाद चख लिया है, उसे चीनी का मैला सीरा कब अच्छा लगने लगा? जिसने गङ्गाजी स्नान कर लिया है, उसे मरुभूमि के कीच और मेढ़कों से भरे गन्दे तालाब का स्नान कैसे अच्छा लग सकता है। जिसने कमल, पाटल, गुलाब, चम्पा, जूही, चमेली आदि की मालायें धारण की हैं, उन्हें कुरूप कागजों के फूलों की बनी मालायें कैसे भा सकती हैं? फिर उनका चित्त तो एक ही है, वह तो लगा हुआ था श्यामसुन्र मे विषयों का भोग तो मन के द्वारा ही होता है न? एक आदमी भूखा है, भूख से व्याकुल हो रहा है, उसका मन स्वादिष्ट भोजन की ही चिन्ता में लगा है। उसे आप सुगन्धित मालायें पहिनाइये कस्तूरी केशर कपूर से मिश्रित चन्दन लगाइये, सुन्दर सुसज्जित शैया पर शयन कराइये, दिव्य से दिव्य अङ्गराग ?

लगाइये, नाना प्रकार के गायन वाद्यों के द्वारा उसकी स्तुति कराइये, किन्तु उसका मन तो भोजन में ही लगा रहेगा। ये सब उसे विषवत् प्रतीत होंगे। इसी प्रकार धर्मराज का मन तो भगवान् में लगा था। अतृप्त भाव से वे उन्हीं की चिन्ता में सदा संलग्न रहते थे,इसीलिये सांसारिक भोगों की वहुलता उनके सुख का कारण न बन सकी। उन्हें यदि कोई कभी चिंता होती भी तो एक ही होती कि इस भरतवंश के अनुरूप कोई भगवत् भक्त उत्तराधिकारी हमारा हो जाय, जिसके ऊपर राज्य भार डाल कर, हम सदा श्रीकृष्ण-स्मरण कीर्तन में ही अपना काल व्यतीत कर सकें।

इधर अभिमन्यु के आत्मस्वरूप महाराज परीक्षित् अपनी माँ उत्तरा के गर्भ में बढ़ने लगे। गर्भ में ही उस तेजस्वी बालक ने देखा, कि किसी अस्त्र का असह्य जाज्वल्य मान तेज बड़े वेग से उनकी ओर जलाने के निमित्त आ रहा है। किंतु अस्त्र की उष्णता उन तक पहुँचने ही नहीं पाती, क्योंकि कोई कृष्ण वर्ण बालक हाथ में गदा लिये हुए बड़े वेग से घुमाता हुआ, ब्रह्मास्त्र से उनकी रक्षा कर रहा है। महाराज परीक्षित् गर्भ में ही उस विचित्र बालक को देख कर विस्मित हो गये। वह आकार में बहुत बड़ा भी नहीं था। अँगूठे के परुए के बराबर था, किन्तु उसका तेज करोड़ों सूर्य के समान था। जैसे अलात चक्र घूमकर अपना एक तेजस्वी मण्डल बना लेता है, ऐसे ही उसने गदा घुमाते-घुमाते अपना एक प्रकाशमय मण्डल बना लिया था। उसका स्वरूप अत्यन्त ही मनोहर और निर्मल था। सिर पर सुवर्ण का सुन्दर मुकुट शोभायमान था। जिसमें असंख्यों दिव्य मणियाँ झलमल-झलमल करती हुई प्रकाशित हो रहीं थी। परम सुन्दर साँवले

शरीर पर वर्षाकालीन विद्युत के समान परम शोभायमान पीताम्बर फहरा रहा था। अत्यन्त विकसित कमल के समान सुन्दर, सुघड़, सुहावने लाल-लाल निर्मल नेत्र थे, कानों में कमनीय कुण्डल धारण कर रखे थे। वह दिव्य बालक अपनी चमकीली गदा से ब्रह्मास्त्र को उसी प्रकार शांत कर रहा था जैसे उदित हुए सूर्य कुहरे को शान्त कर देते है अथवा घर के अन्धकार को दीपक भगा देता है, अथवा रात्रि के तम को चन्द्रमा नष्ट कर देते हैं। उस इतने छोटे बालक को ऐसा अद्भुत पराक्रम करते देखकर गर्भ मे विराजमान उत्तरानन्दन सोचने लगे—यह कौन है ? मेरा कोई दूसरा भाई हो तो नहीं है ? किन्तु यह मेरी भांति जरा नामक झिल्ली से आबद्ध नहीं है, सब तरह से बन्धन मुक्त है। इनका तेज अधिक होने पर भी असह्य नहीं है। निर्मल और शांत है। यह अस्त्र जो मुझे जलाने को मेरी ओर आ रहा है, इसे नष्ट करता हुआ यह मेरी रक्षा इस प्रकार क्यों कर रहा है ? भली-भाँति की तर्कना करते-करते वह गर्भगत बालक दस महीने तक उसी विचित्र बालक का ध्यान चिन्तन करता रहा। जब दस महीने पूरे हो गये, तब वह दिव्य तेज वहीं तिरोहित हो गया और नष्ट हुए भरतवंश को बढ़ाने वाले अभिमन्यु सुत उत्तरा के गर्भ से बाहर आये।

उस समय सभी शुभ ग्रह अनुकूल थे। वायु शीतल-मंद-मन्द सुगन्धित वह रही थी। न बहुत गर्मी थी, न सर्दी। शरद्ऋतु का सुहावना समय था। जिस लग्न में जन्म लेने से बालक के सभी सद्गुणों का विकास होता है उसी परम शुभ लग्न में महाराज परीक्षित् का जन्म हुआ। जब यह समाचार

महाराज को सुनाया तो उनके हर्ष का ठिकाना नहीं रहा। उन्होंने कोषाध्यक्ष को बुलाकर आज्ञा दी—"आज खजाना खोल दो। जो भी आकर जिस चीज की याचना करे, उसे वही चीज बिना विलम्ब दे दो।'

हजारों लाखो दूध वाली सवत्सा गौएँ—जिनके खुर चाँदी से मढ़े थे, सीगों में सुवर्ण लगा था, जिनके साथ काँसे की बड़ी-बडी दोहनी थी, ऐसी वस्त्र उढ़ाई हुई पयस्विनी कपिला गौएँ-महाराज ने ब्राह्मणों को दी दान। सुवर्ण चाँदी की असंख्यों मुद्रायें, रत्न, मणि, मुक्ता—जिसने जो भी माँगा, महाराज ने सबको दिया। उस समय महाराज प्रेम मे इतने विह्वल हो गये थे, कि उनके मुख से वाणी नही निकलती थी, हाथ काँप रहे थे। उत्तरा के पुत्र क्या हुआ, मानों अपने वश को बढ़ाने लिये फिर से महाराज पांडु ही आ गये हों। उन्होंने धौम्मी कृपाचार्य आदि अपने कुल पुरोहितों को बुलाकर वेद विधि से बालक के जाति कर्म आदि संस्कार किये और जब तक नाल-छेदन न हुआ तब तक वे बराबर ब्राह्मणो को विविध प्रकार के दान देते ही रहे। वे कितना भी देते थे, फिर भी उनकी तृप्ति नही होती थी। वे चाहते थे—आज अपने सम्पूर्ण राज्य को लुटा दें। उनकी ऐसी उदारता देखकर सभी ब्राह्मण, आश्रित तथा याचक बहुत ही सन्तुष्ट हुए और अन्तःकरण से नवजात शिशु की मङ्गल कामना करने लगे, भाँति-भाँति के आशीर्वाद देने लगे।

धर्मराज हाथ जोड़े हुए बड़े विनीत भाव से ब्राह्मणो के आगे बैठे थे। उन्हें उस प्रकार विनय से युक्त और नम्र देख कर ब्राह्मणो ने महाराज युधिष्ठिर से कहा—"राजन्! यह बड़े मङ्गल की बात है, कि आज आपके घर पुत्र-रत्न का जन्म

हुआ। काल की गति दुनिवार है। देखिये, कितना समृद्धिशाली सम्पूर्ण वंश ही एक प्रकार से नष्ट प्राय हो चुका था, किन्तु विष्णु भगवान ने कृपा करके आपको यह वंशधर श्रेष्ठ पुत्र प्रदान किया। यह पुत्र विष्णुना रातः (दत्तः) इसलिये इसका नाम 'विष्णुरात' ऐसा होगा और आप इस बच्चेको साधारण बालक ही न समझें। यह संसार में बड़ा यशस्वी, श्रेष्ठ, भगवत् भक्त और सज्जनों का प्रतिपालक, कल्प वृक्ष के समान सबकी इच्छाओं को पूर्ण करने वाला होगा।"

ब्राह्मणों के मुख से अपने पौत्र के सम्बन्ध में ऐसी भविष्य-वाणी और आशीर्वचन सुनकर महाराज युधिष्ठिर को परम हर्ष हुआ। उन्होंने सभी ब्राह्मणों की श्रद्धाभक्ति सहित वन्दना की।

छप्पय

सुनत परीक्षित् जन्म हर्ष चहुँ दिशि में छाये।
नगर राज्य सर्वत्र विविध विधि बजत बधाये॥
वेद विज्ञ बहु विप्र युधिष्ठिर वेगि बुलाये।
दिये दान बहु ग्राम अन्न धन रतन लुटाये॥
कहँ विप्र–'ये जगत में, विपुल अमल यश पायँगे।
विष्णु वीर्य रक्षित नृपति, विष्णुरात कहलायँगे॥

महाराज परीक्षित् के जन्म-ग्रहों का फल

(४०)

अप्येष वंश्यान् राजर्षीन् पुण्यश्लोकान्महात्मनः ।
अनुवर्तिता स्विद्यशसा साधुवादेन सत्तमाः ॥*

(श्री भा० १ स्क० १२ अ० १८ श्लोक)

छप्पय

पृथा पुत्र पुनि कहें—पुत्र के ग्रह फल भाखें।
बोले विप्र—"तुम्हार पौत्र कुल गौरव राखे ॥
विप्र भक्त, दुर्धर्ष दयामय दाता दुस्तर।
क्षमाशील गुणवान् सत्यवादी सब सुखकर ॥
शूर सिंह सम समर प्रिय, परम वीर विजयी बड़े।
रहें द्वार पै बाँधिकर, आज्ञाहित भूपति खड़े ॥

पुत्रोत्पत्ति के समय को शास्त्रकारों ने प्रजातीर्थ बताया है। उस समय में और व्यतीपात में दिया हुआ दान अक्षय बताया गया है। उसका कभी नाश नहीं होता। पुत्रोत्पत्ति के समय

* महाराज युधिष्ठिर वेदज्ञ विप्रों से पूछते हैं-हे "श्रेष्ठ विप्रो ! आप यह बतावें कि यह बालक क्या अपने उत्तम यश के द्वारा पुण्य कीर्ति वाले जो अपने पूर्वज राजर्षि महात्मा हुए हैं, उनके पथ का अनुसरण कर सकेगा ?"

कितना हर्ष है, उसे पुत्र परिवार हीन पुरुष अनुभव कर ही नहीं सकता। संसार में आत्मा सबसे प्रिय मानी गई है। वही आत्मा जब जाया के उदर में नवीन होकर—सुन्दर सुकोमल छोटा सा सुहावना रूप रखकर—फिर से पैदा होती है, तो पिता पितामह को अपार हर्ष होता है। बहुत पुत्र होने पर हर्ष की मात्रा कम भी हो जाती है, अथवा धनहीन पुरुष के बहुसंतति होने से उसे हर्ष मिश्रित दुःख भी होता है, किन्तु जो वंश निर्मूल हो रहा हो जिसमें आगे कोई पितरों को पिण्ड पानी देने वाला, पुरुष न रहा हो, उस समृद्धिशाली वंश में यदि वंश बढ़ाने वाला बालक उत्पन्न हो जाय तो उस परिवार की प्रसन्नता का वारापार नहीं रहता।

आज महाराज युधिष्ठिर के महलों में भीतर, नगर और सम्पूर्ण राज्य में भी उसी प्रकार का अपार आनन्द छाया हुआ है। महाराज युधिष्ठिर के बच्चे का भविष्य जानने को बड़े उत्सुक हैं। पुत्र यदि हुआ, और वह वंश के अनुरूप आचरण करने वाला न हुआ, तो उनका होना न होना बराबर ही है। धर्मराज को वंश वृद्धि की उतनी चिन्ता नहीं थी, जितनी कि अपने पूर्वजों की विमल कीर्ति को अक्षुण्ण बनाने रखने की थी। वे चाहते थे—मेरे वंश में सभी भगवत् भक्त हों। भरतवंश की कमनीय कीर्ति में कोई कालिमा न लगा सके। इसीलिये उन्होंने राज्य भरके सभी प्रसिद्ध-प्रसिद्ध भविष्य वक्ता, ज्योतिषी और ग्रहों के फल बताने वाले गणकों को एकत्रित करके उनसे पूछा—"महानुभावो! आप अपनी विद्या के प्रभाव से भूत भविष्य और वर्तमान, तीनों कालों की बातें जान सकते हैं। मेरे यहाँ जो यह पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ है, उसकी लग्न-ग्रहों को देखकर उनका जो फल हो, वह मुझे आप स

क्या यह बालक हमारे वंश के अनुरूप होगा ? जैसे मेरे पितामह, प्रपितामह की संसार में अभी तक ख्याति बनी हुई है क्या यह भी उन्ही की भाँति पुण्य कीर्ति वाला होगा ? सबसे अधिक चिन्ता मुझे इस बात की है,कि यह वैष्णव और ब्राह्मणों का कभी अपकार तो न करेगा ? क्या यह भगवान् और भगवत् भक्तों का कृपापात्र बन सकेगा ?"

महाराज युधिष्ठिर के प्रश्न को सुनकर दैवज्ञ ब्राह्मणो ने नवजात बालक की लग्न निकाली और यथा स्थानों में ग्रहों को रखकर वे उनका फलाफल विचार करने लगे। सब विचार कर वे विप्र वृन्द बोले—' महाराज ! हमने बहुत से बच्चों के लग्न देखे है, किन्तु जितने शुभ ग्रह इनके उदित हुए हैं, उतने शुभ ग्रहो को एक साथ उत्तम स्थानों में हमने आज तक नही देखा।"

ब्राह्मणों की बात सुनकर धर्मराज हृदय से अत्यन्त ही प्रसन्न हुए और गद्गद कण्ठ से कहने लगे—"सम्माननीय विप्रों ! मैं सिर से आप सबको प्रणाम करता हूँ। मैं कुछ ग्रहो के फल सुनना चाहता हूँ। कुछ आप सबकी परीक्षा के निमित्त नही, अपनी उत्सुकता मिटाने के लिये। अपने कुल की वृद्धि के लिये मेरे मनमें बड़ी व्याकुलता है। राजा का सर्वश्रेष्ठ गुण है प्रजा का पुत्र की भाँति पालन करना। जिस राजा में यह गुण नही वह राजा कहलाने के योग्य नही। वह या तो व्यापारी है या दस्यु है। उसका प्रजा हृदय से आदर नही करती और छिद्र पाते ही उसे सिंहासनाच्युत कर देती है।"

ब्राह्मण बोले—"राजन् ! ये प्रजा को इसी तरह प्रिय होंगे जैसे महाराज मनु सबको प्रिय थे। ये अपने पुत्रों में और

प्रजा के पुत्रों में कोई भी भेद भाव न करेंगे। यदि अदण्ड्य होगा, तो शत्रु पुत्र को भी दण्ड न देंगे और यदि दण्ड्य हुआ, तो अपने सगे और सुपुत्र को भी बिना दण्ड दिये न मानेंगे। इनकी प्रजा में जो भी रहेंगे उनका पुत्रवत् पालन करेंगे।"

इस पर धर्मराज बोले—"विप्रो! कुछ धर्महीन दुष्ट जैसे राजा भी होते हैं, जो वेदज्ञ ज्ञानी ब्राह्मणों को अच्युत गोत्री श्री भगवान् के अनन्य भक्तों को जो उनके राज्य मे रहकर तपस्या और भगवत् भक्ति में निरत रहते है—उन्हें भी वे अपनी प्रजा समझते हैं और उनपर भी अपना शासन चलाना चाहते है? इसी से उनका नाश हो जाता है। यह ऐसा तो नही होगा? यह विद्वान् ब्राह्मणो और भक्तो की सेवा तो करेगा? जिससे जिस बात की प्रतिज्ञा कर लेगा, उसे प्राणपन से पूरी तो करेगा?

ब्राह्मणों ने कहा—"महाभाग! इनके शुभ ग्रह बतला रहे हैं, कि जैसे उसी नरदेश के राजा शिवि शरणागतवत्सल और दाता थे वैसे ही ये भी होगे। महाराज शिवि ने अपनी शरण में आये हुए कबूतर के लिये अपने शरीर का मांस भी बाज को दे डाला था। इसी तरह इनकी शरण में चाहे इनका घोर शत्रु ही क्यों न आजाय ये उसकी सब प्रकार से रक्षा करेंगे। किसी के लिये भी कोई वस्तु इनके लिये अदेय न होगी ये कल्पवृक्ष के समान सबकी अभिलाषाओं को पूर्ण करते रहेंगे।"

धर्मराज ने पूछा—"इसके कोई ऐसे ग्रह भी पड़े हैं, पुण्य कर्म करके संसार में यशस्वी होकर अन्त मे अधिकारी हो?"

ब्राह्मण बोले—"हे नरनाथ ! इनकी कुण्डली में एक बड़ा विचित्र गुरु-चान्द्री योग पड़ा है। ज्योतिष शास्त्र का मत है कि ये बृहस्पतिजी तो देवताओं के गुरु हैं और चन्द्रमा ब्राह्मणों के गुरु हैं। ये दोनों शुभ ग्रह जहाँ भी, जिस स्थान में मिलकर भाग्य विधातृत्व स्वीकार कर ले, उस व्यक्ति के सर्व कार्य सिद्ध होते हैं। उसका संसार मे बड़ा यश होता है। वह देवता और ब्राह्मणों का भक्त होता है। इसलिये आपके पूर्वज जैसे महाराजा भरत परम यशस्वी हो गये हैं, जिनके नाम से आज तक आपका वंश भरतवंश कहलाता है, उसी प्रकार ये भी अनेक अश्वमेधादि यज्ञ करके पृथ्वी पर अपने कुल के यश का विस्तार करेंगे।"

धर्मराज ने पूछा—"हे भूदेवो ! राजा के लिये अर्थ, काम के सहित धर्म का सेवन करना चाहिये। यदि यह निरन्तर यज्ञ याग में ही लगा रहा और अस्त्र-शस्त्र का अभ्यास न किया, तो शत्रु दुर्बल समझकर इसके राज्य को छीन लेंगे। इसलिये यशस्वी होने के साथ ही यह कुछ धनुर्वेद का भी ज्ञाता होगा क्या ?"

विप्रो ने कहा—"हे नरेन्द्र! ये सामान्य योद्धा न होंगे। ये अपने पितामह अर्जुन के समान या यदुवंश मे जो परम प्रतापी सहस्रार्जुन हुए है, उनके समान शूर-वीर और धनुर्धर होंगे। जहाँ ये धनुष की टङ्कार करेंगे, वही के सभी शत्रु टङ्कार सुनते ही भयभीत हो जाया करेंगे क्योंकि इनका गुरु-चान्द्री योग दशमेध होकर केन्द्र त्रिकाण में स्थित है, अतः यह प्रबल प्रतापी राजा होंगे। इनको अग्नि की भाँति कोई स्पर्श नही कर सकता। ये बड़े तेजस्वी और प्रभावशाली होंगे। इनके मनोगत

गूढ़ भावों को भली-भाँति कोई समझ न सकेगा, समुद्र के समान शांत गम्भीर और दुस्तर होंगे। जैसे सिंह को देखते ही वन के सभी जीव डर कर इधर-उधर भाग जाते हैं, उसी प्रकार इनके पराक्रम के आगे कोई ठहर न सकेगा।"

धर्मराज बोले—"विप्रो ! यह तो अच्छी बात नहीं हुई, कि कोई इसके प्रभाव को देखकर इसके पास न ठहर सके। जब यह इतना डरावना होगा, तो कोई इसके समीप कैसे रहेगा ?"

ब्राह्मणों ने कहा—"हे शरणागतवत्सल राजन्! पराक्रमी होने पर भी ये हिमालय के समान सभी के लिये सेव्य होंगे। इनका पराक्रम शत्रुओं के लिये होगा। स्वजनों को तो ये गौ के समान सुखदायी और प्रिय होंगे। ये माता के समान अङ्क में बिठाने वाले और पिता के समान पालनकर्ता होंगे। जैसे पृथ्वी अपने ऊपर रहने वाले समस्त जीवों के अपराधों को क्षमा करती है, जैसे माता पिता बालकों के दोषों को क्षमा करते रहते हैं, उसी प्रकार ये अपने आश्रितों के अपराधों को सहिष्णुता और तितिक्षा के कारण क्षमा करते रहेंगे।"

धर्मराज ने कहा—"आश्रितों के अपराधों को क्षमा कर दिया और निरपराध क्षत्रियों को अपना प्रभाव जमाने को सताते रहे, यह भी तो ठीक नहीं है ?"

विप्रों ने कहा—"धर्मावतार! इनके ग्रन्थों के फल से प्रतीत होता है कि ये लोक पितामह जैसे अपने सभी पुत्र-पौत्र देव, दानव, दैत्य, यक्ष राक्षसों को समानभाव से समझते हैं, जिसका जिस कार्य से कल्याण देखते है, उनके लिये वही कार्य करते हैं, उसी प्रकार ये सभी लोगों के साथ समानता व्यवहार करेंगे। दण्ड देने योग्य जो भी होगा समान भ

दण्ड देंगे। अनुग्रह करने योग्य पर शत्रु-मित्र का विना विचार किये अनुग्रह करेंगे।"

महाराज युधिष्ठिरने कहा—"हे शुभाशुभ के ज्ञाता,भूसुरो! बहुत से राजा ऐसे होते हैं,कि उनकी चिरकाल तक सेवा शुश्रूषा करो तब कही जाकर किसी पर प्रसन्न होते हैं, किसी पर नहीं भी होते। यह ऐसा तो न होगा ?"

ब्राह्मण बोले—"राजन्! इनकी लग्न में जो गुरु हैं, वे अपने स्थान से नवें स्थान को पूर्ण दृष्टि से देख रहे हैं, शनि दशम को देख रहे है और मङ्गल आठवें को, इसलिये इनका फल हम क्या बतावें, किसकी उपमा दें? आप यही समझें कि ये शिवजी के समान आशुतोष और रमावल्लभ भगवान् वैकुण्ठ-नाथ के समान सबके आश्रय और सेवनीय होंगे। जिस प्रकार श्रीकृष्ण सम्पूर्ण गुणों के एक मात्र आश्रय हैं वस उसी प्रकार के से ग्रह इनके भी पड़े।"

धर्मराज बोले—"विप्रो! गुणवान होगा, यह तो अच्छा ही है, किन्तु चाहें मनुष्य में करोड़ों गुण क्यो न हों, यदि उनमें उदारता नहीं, उसका हृदय कृपण है, तो उसके सभी गुण व्यर्थ हो जाते हैं। कंजूसी एक ऐसा दुर्गुण है, कि जैसे मनुष्य सर्वाङ्ग सुन्दर देव तुल्य हो, और उसके मुख पर थोड़ा सा कुष्ठ हो, तो जैसे वह थोड़ा सा कुष्ठ सभी सौन्दर्य को नष्ट कर देता है, उसी प्रकार कृपणता सभी सद्गुणों पर पानी फेर देती है। कहीं यह अनुदार, कंजूस तो न होगा ?"

ब्राह्मणों ने कहा—"हे महामना! प्राचीन काल में आपके वंश मे रन्तिदेव नाम के राजर्षि हुए हैं। उन्होने ४८ दिनों उपवास के पश्चात् भी मिले हुए अपने भोजन को उदारता

वश अतिथियों को बाँट दिया। उसी प्रकार ये उदारता होंगे आपके पूर्वज महाराज ययाति बड़े धार्मिक थे। उन्होने समस्त पृथ्वी के अपने राज्य में यह घोषणा करा दी थी, कि जो भगवन्नाम कीर्तन न करेगा उसे प्राण दण्ड दिया जायगा। उनके राज्य में घर घर भगवान् के सुमधुर नामों का कीर्तन होता था सर्वत्र कृष्ण-कथा प्रचार था। एक भी मनुष्य धर्महीन नहीं था। अधर्म के ही कारण जरा, मृत्यु दुःख, आधि व्याधि आदि उपद्रव होते हैं। जब उनकी सम्पूर्ण प्रजा धार्मिक हो गई, तो न तो कोई मरता ही था और न वृद्ध ही होता था। आधि व्याधि रोगों का तो कोई नाम भी नही जानता था। उनकी ऐसी धर्मनिष्ठा देखकर इन्द्र, यम, कुवेर आदि सभी बड़े घबड़ाये और उन्हें छलने को किसी प्रकार षड्यन्त्र रचकर वृद्धावस्था को भेजा। जिस प्रकार महाराज ययाति धार्मिक थे। उसी प्रकार ये भी धार्मिक होंगे। इसके राज्य में सर्वत्र कृष्ण कीर्तन और कृष्ण-कथा का ही गायन होता रहेगा स्वय भी ये नाम संकीर्तन और कृष्ण-कथा के रसिक शिरोमणि होंगे। धैर्य में ये दैत्यराज बलि के समान और प्रह्लाद के समान, श्रीकृष्ण में दृढ़ निष्ठा रखने वाले होंगे ये बहुत अश्वमेध यज्ञ करेंगे, बड़े बूढ़ों की सब प्रकार से सेवा करेंगे और अपने समान ही कई राजर्षि पुत्रों को पैदा करके पितरों के ऋण से उऋण होंगे। जो भी अन्याय करेगा उसी का ये दमन करेंगे। यहाँ तक की धर्म रक्षा के लिये साक्षात् कलियुग का भी निग्रह करेंगे। उसे मारने को ये उद्यत हो जायंगे ?"

धर्मराज ने पूछा—"ये सब तो बड़े शुभ ग्रह हैं, किन्तु मैं यह जानना चाहता हूँ—इसकी अन्तिम गति कैसी है ...
पाट में ही अन्त तक आसक्त तो न बना रहेगा ?

के द्वारा उत्तम लोकों की प्राप्ति के भी कोई योग पड़े हैं, इसकी जन्म लग्न में ?"

विप्रों ने कहा—"राजन् ! कुछ एक गड़बड़ सी बात है, किसी विप्र के शाप से ये राज्य-पाट को छोड़ देंगे।"

धर्मराज घबड़ाये और बोले—"राज्य-पाट छोड़ देंगे, फिर क्या होगा ? मृत्यु कैसे होगी ?"

ब्राह्मणों ने कहा—"ज्योतिष के हिसाब से ऐसा आता है,कि कोई रक्षक नामक का नाग इन्हें डस लेगा।"

धर्मराज का मुख मण्डल फक पड़ गया और दुखी होकर वे बोले—"विप्रो ! यह तो अच्छी बात नहीं हुई। विष खाकर मरने से, पेड़ से गिरकर मरने से, सर्प काटने से अथवा जल मे डूबकर मरने से अपमृत्यु बताई गई है। ऐसे लोगों की सद्गति नहीं होती। इन्हें प्रेतयोनि में जाना पड़ता है। क्या, अन्त में इसकी दुर्गति होगी ? क्या इसे पुण्यलोकों की प्राप्ति न हो सकेगी ?"

ब्राह्मणों ने कहा—"धर्मराज ! आप इस बात की तनिक भी चिन्ता न करें। इनकी दुर्गति तो कभी हो ही नहीं सकती। इनकी जन्मकुण्डली में प्रव्रज्या योग, भक्तियोग—ये दोनों योग उत्तम रीति से साथ ही पड़े हैं। अतः ये शाप की बात सुनते ही राज्य पाट, धन-धान्य, स्त्री, सुन्दर पुत्र सभी का परित्याग करके पुन्यतोया,दुर्गति निवारिणी,भगवती भागीरथी के तटपर जाकर बैठ जायेंगे। वहाँ भक्तियोग के द्वारा श्रीहरि के चरणारविन्दों की शरण लेंगे। उसी समय स्वेच्छा से विचरते हुए आ जायेंगे। उनसे ये आत्मज्ञान की जिज्ञासा करेंगे।"

धर्मराज ने पूछा --"शापित होने पर अल्पकाल मे ही यह आत्मज्ञानी होकर निर्भय पद को कैसे प्राप्त कर सकता है ?"

ब्राह्मणों ने कहा—" हे अच्युतप्रिय ! जिनके ऊपर भगवत् कृपा होती है, जिनके ऊपर साधु महात्मा स्वतः आकर अनुग्रह करते हैं, उनके लिये ससार में दुर्लभ वस्तु कुछ नहीं है । व्यासनन्दन शुक जन्म से ही त्यागी, विरागी और संन्यासी हैं । वे कृपा कर जिसकी ओर एक बार देख दें, वही इस संसार सागर से पार होकर मुक्त हो सकता है । फिर इन्हें तो वे सात दिनों तक दिव्य-दिव्य भागवती कथाओं को सुनायेंगे । इनके सभी संशयों का छेदन करके, इनके सभी जटिल प्रश्नों का उत्तर देंगे । ऋषियों की मण्डली मे, श्रीकृष्ण कथा सुनते-सुनते, भगवन्नाम संकीर्तन करते-करते पुण्यतोया सुरसरि के तीर पर जब ये अपने प्राणो का त्याग करेंगे, तब दुर्गति कैसे हो सकती है ? ये भक्तियोग के द्वारा निस्संदेह निर्भय पद को प्राप्त करेंगे । जहाँ जाकर फिर इस संसार मे पुनः नहीं लौटना पड़ता ।"

ब्राह्मणों की इस अन्तिम बात को सुनकर धर्मराज की चिन्ता दूर हो गई । उन्होंने सोचा---"कोई बात नहीं, यदि विप्र, शाप से कृष्ण कथा सुनने को मिले और अन्त मे निर्भय पद की प्राप्ति हो, तो वह शाप शाप न होकर वरदान ही है । जीवन का एकमात्र फल भगवत् प्राप्ति ही है । भगवत् प्राप्ति हो जाय, तो क्षण भर का ही जीवन बहुत है । यदि भगवत्प्राप्ति न हो और एक अल्प की भी आयु हो तो निरर्थक है । यही सब सोचकर वे बड़े प्रमुदित हुए । उन्होंने उन ज्योतिष के ज्ञाता विप्रों को अनेक वस्त्र, आभूषण तथा रत्न आदि सामग्रियों द्वारा विधिवत् पूजा की ।

इस प्रकार महाराज युधिष्ठिर को बालक परिक्षित् का भविष्य बताकर और उनके द्वारा की हुई पूजा को ग्रहण करके वे जातकर्म के फलों को जानने वाले ब्राह्मण अत्यन्त हर्ष के साथ अपने-अपने घरों को चले गये।

छप्पय

हुगे कृष्ण समान कुलागत काज करिङ्गे।
करि दुष्टनि को दमन, दुखित के दुःख हरिङ्गे॥
क्रोधित बालक विप्र शाप तें शापित हुङ्गे।
सर्व संग निर्मुक्त होंहि हरि कथा सुनिङ्गे॥
श्रीशुक स्वेच्छा तें स्वतः, आकें कथा सुनायेंगे।
मुनि मण्डल में त्यागि तनु, पुण्य परमपद पायगे॥